श्रीमद्बाणभट्टप्रणीता

कादम्बरी

(कथामुखपर्यन्ता)

श्री भानुचन्द्र-सिद्धचन्द्रगणिविरचितया

संस्कृतटीकया संवलिता

हिन्दी भाषानुवादेन चालङकृता

अनुवादक

रतिनाथ झा

मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स (प्रा०) लिमि०

दिल्ली

श्रीमद्बाणभट्ट प्रणीता

कादम्बरी

[कथामुखपर्यन्ता]

श्री भानुचन्द्र-सिद्धचन्द्र-गणिविरचितया
संस्कृतटीकया संवलिता हिन्दीभाषानुवादेन चालङ्कृता

अनुवादकः
रतिनाथ झा

मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स प्रा० लि०
दिल्ली

भूमिका

संस्कृत वाङ्मय अपनी प्राचीनता तथा सर्वाङ्गीणता के कारण विश्व में बिख्यात एवं सम्माननीय है। मानव समाज को सभ्य, शिक्षित तथा नागरिक बनाने में इस साहित्य का अनुपम योगदान है। आध्यात्मिक, आधिभौतिक एवं आधिदैविक शक्तियों को पहचानने की दिव्य दृष्टि इससे मिलती रही है। दैव एवं आसुर भावों के संघर्ष और उनमें पर्यायक्रम से जय-पराजय की गाथा का उल्लेख विश्वजनीन शाश्वत वृत्तियों के विलास का संकेत कर रहा है। परिस्थितियों की गतिशीलता में भी कतिपय तत्त्वों की स्थायिता का निर्देश ही इस साहित्य की अमरता का निदान है।

भावों के वैभव का भव्य विन्यास तथा उसके सहृदय-संवेद्य कलात्मक प्रभाव का मनोरम शब्दचित्र ही काव्य है। परिपक्व भावों की संज्ञा रस ही उसकी आत्मा है। रस की भव्यता तथा आस्वादनीयता में गुण, अलंकार की उपयोगिता आलङ्कारिक मान्यताओं के अनुरूप है। इसीलिये रस-प्रधान काव्यों के निर्माता गुण, अलंकार, छन्द, आदि उपकरणों के यथोचित ललित सन्निवेश में सतत जागरूक रहते हैं।

काव्य लोकवृत्तों का बिम्बग्राही मुकुर है। पर इस दर्पण की विचित्रता यह है कि लौकिक घटनाओं का अननुकूल रूप भी इसमें अनुकूल दिखाई देने लगता है। अप्रिय भी प्रिय बन जाता है। कुत्सित और जघन्य रूप भी अपनी मलिन छाया खो देते हैं। फलतः इसमें प्रतिबिम्बित वृत्त लोकोत्तर बन कर सामने आते हैं। इसीलिये कवि भी एक स्वतन्त्र प्रजापति है। उसकी सृष्टि न नियति से नियन्त्रित है और न दुःख, मोह आदि अनभीप्सित संवेदनों से संश्लिष्ट। उसकी प्रक्रिया भी वैधसी सृष्टि की प्रक्रिया से विलक्षण है। लोक में व्यभिचारियों का संयोग दुःख, अपकर्ष तथा अप्रतिष्ठा का कारण है पर काव्य में व्यभिचारियों के संयोग से 'रसो वै सः' के नाम से वर्णित आनन्दरूप ब्रह्म की निष्पत्ति हो जाती है। यही सब तो इसके अलौकिकत्व के संवाहक हैं। भारतीय कवियों के निर्माण में दुःख का अनुभव पर्यवसान में नहीं होता। ग्लानि, चिन्ता, आकुलता, अशान्ति, विफलता, निराशा आदि के क्रूर थपेड़ों से मर्माहत पात्र भी अन्त में 'प्रसाद' की भूमिका पर आरूढ़ हो ही जाता है। इसीलिये संस्कृत साहित्य आशावादी है, आनन्दवादी है।

मानव के मन पर प्राकृतिक दृश्यों का प्रभाव पड़ता ही है। भारतवर्ष का भूभाग शस्य-श्यामल तो है ही पर्वतमालाओं से अलंकृत तथा नदीनद-निर्झर आदि

की कलकल ध्वनि से संस्तुत एवं वनराजियों से विराजित भी रहा है। ऋतुओं का नियत समय पर आगमन और प्रस्थान तथा उनका प्रकृति-नटी के शृङ्गार में संलग्न रहना किसे ज्ञात नहीं ? इस भारतीय प्रकृति का सौन्दर्य मानव-मन को मुदित बनाता रहा है। यही कारण है कि प्रकृति के प्रांगण में अन्धकार-पूर्ण रात्रि के अवसान में उषा की अरुण झाँकी से जीवमात्र उल्लसित होने लगा। पक्षियों ने उसके स्वागत-गान गाये। मनुष्यों के मन में आशा और उल्लास का अरुणोदय होने लगा। अवसाद भरी रजनी का अन्त हो गया। कान्तदर्शी ऋषि ऋचाओं को सस्वर गाने लगे। उन आरम्भिक ऋचाओं में छन्दों की व्यवस्था, अलंकारों की सज्जा, गुणों की गरिमा तथा भावों की प्रौढ़ता को देखकर ज्ञात होता है कि उषा स्वर्णिमरश्मियों के सहारे 'कविता' धरती पर उतरी होगी। कवियों के गले से लिपट गई होगी और उसने सहृदय श्रोताओं के हृदय को सरस एवं स्निग्ध बना दिया होगा।

वेदों के अध्येता छन्दस्वती वाणी के राग में रँग गये थे। पर, लौकिक संस्कृत में छन्द के दर्शन नहीं हो रहे थे। एक दिन "क्रौञ्चद्वन्द्ववियोगोत्थः शोकः श्लोकत्वमागतः" की घटना घट गई। लोक-विस्मयकारी छन्द आदि कवि के कण्ठ से बिना प्रयास ही निकल पड़ा। तब से लोक में भी अनेकानेक छन्दों की भूमिका में 'कविता' देवी का विहार आरम्भ हो गया। यह है कविता के अवतार का संक्षिप्त इतिहास।

इस कविता का विभाजन विविध रीतियों से किया गया है। उनका सारांश प्रस्तुत कर देना अप्रासंगिक न होगा। इन्द्रियग्राह्यता की दृष्टि से काव्य मूलतः दृश्य और श्रव्य के नाम से द्विविध माना गया है। दृश्य के प्रमुख भेदों—

नाटकं सप्रकरणं भाणः प्रहसनं डिमः।
व्यायोगसमवकारौ वीथ्यङ्केहामृगा इति ॥

दशरूपक १—८

का उल्लेख प्राधान्येन मिलता है। श्रव्य काव्य अर्थ की दृष्टि से त्रिविध है। व्यंग्यार्थ-प्रधान काव्य 'ध्वनि' संज्ञा से प्रसिद्ध है। व्यंग्यार्थापेक्षया वाच्यार्थ की चारुता वाले काव्य को गुणीभूतव्यंग्य कहा गया है। शब्द एवं अर्थ के अलंकारों के संनिवेश से ही काव्य-सौन्दर्य का भान जहाँ होता हो उसे चित्रकाव्य कहते हैं। इन्हें ही क्रमशः उत्तम, मध्यम और अवर नाम से भी कहा जाता है। कतिपय आलंकारिकों ने शब्दालंकार-प्रधान काव्य से अर्थालंकार-प्रधान काव्य को ऊँची श्रेणी में रखकर (१) उत्तमोत्तम (२) उत्तम (३) मध्यम और (४) अधम संज्ञायें प्रदान की हैं। बन्ध के आधार पर भी काव्य का भेद किया जाता है।

(१) निर्बन्ध (२) सबन्ध। पूर्वापर सन्दर्भ शून्य एवं अपने आप में परिपूर्ण काव्य निर्बन्ध कहा जाता है। इसे ही मुक्तक भी कहते हैं। दूसरे में कथातत्त्व के बन्धन के भेद से दो भेद होते हैं (१) महाकाव्य और (२) खण्डकाव्य। महाकाव्य और खण्डकाव्य की परिभाषायें अलंकार-शास्त्र में द्रष्टव्य हैं। शैली की दृष्टि से भी काव्य के भेद किये जाते हैं। (१) पद्य (२) गद्य (३) मिश्र। पद्यात्मक काव्य का बाहुल्य संस्कृत साहित्य में है। गद्य काव्य की विरलता है, पर प्रौढता की सुषमा का अभाव नहीं। गद्य काव्य के भी अनेकानेक भेदों का वर्णन मिलता है। उनमें उपाख्यान, निदर्शन, प्रवह्लिका, मन्थल्लिका, मणिकुल्या, परिकथा, खण्डकथा, सकलकथा, उपकथा, बृहत्कथा, कथानिका, आदि नाम प्रधान है। मिश्र काव्य को ही हम 'चम्पू' नाम से पुकारते हैं। यह हुआ संक्षेप में काव्य का वर्गीकरण।

पद्य में छन्दों की गेयता के कारण संगीत और साहित्य का मणिकाञ्चन योग हो जाता है। साथ ही चारों चरणों में किसी एक के भी पूर्णतः सुन्दर उतर आने पर भव्य रत्न के जड़ देने से साधारण भी भूषण के समान सौन्दर्य उभर आता है। अनावश्यक विशेषणों के घुसने का अवसर रहता है। पादपूरणार्थक अव्ययों की भी उपस्थिति यदा कदा हो ही जाती है। पदों का अन्वय के आधार पर वाक्यार्थबोधनक्षम होना भी एक सौकर्य ही है। पर, गद्य में स्वाभाविकता का साम्राज्य रहता है। पदों के विन्यास में उत्तम शिल्प की आवश्यकता रहती है। ओजस्वी और समास-बहुल पदावली का प्रयोग ही गद्य का जीवित है। साथ ही वर्ण्य विषय के अनुरूप भाषा की गति नितान्त अनिवार्य रहती है। एक भी व्यर्थ विशेषण बन्ध को ढीला बना देता है। नृत्यत्प्राय पदावली का विन्यास भावों की व्यञ्जना में क्षम होता है। मनोवेगों की तरलावस्था में भाषा की तरलता उपादेय रहती है। गद्य काव्य में श्लेष का महत्त्व सर्वाधिक रहता है। वह भी प्रसाद परिपूर्ण। हठात् दुर्बोध श्लेष की अवतारणा से न कविता में चारुता का उल्लास होता है और न पाठकों की मनः स्थिति में प्रसन्नता की उपस्थिति। इसीलिये बाण ने हर्षचरित की भूमिका में—

> नवोऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषोऽक्लिष्टः स्फुटो रसः।
> विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुर्लभम्॥

का उल्लेख किया है। इतनी सामग्रियों का समुचित सन्निवेश ही गद्य काव्य को प्रशंसनीय बनाता है। पर इनका उचित उपनिबन्धन अत्यन्त दुष्कर होता है। इसीलिये 'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति' की प्रसिद्धि चिरकाल से चली आ रही है।

भारतीय संस्कृति का मूलाधार अध्यात्म रहा है। आध्यात्मिक प्रवृत्ति की प्रधानता रहने तक भंगुर संसार की उपाधियों में आसक्ति की कमी रहती है। साथ

ही काल की निरवधिरूपता तथा पृथ्वी की विशालता का तीव्र अनुभव होते रहने से अपने देश, काल, कुल आदि के प्रकाशन में प्राचीन भारतीय मनीषियों की निष्ठा नहीं रही। यही कारण है कि पुरातन साहित्य के निर्माताओं ने अपने परिचय में प्रायः मितभाषिता से ही काम लिया। कुछ ने तो अपना नाम तक नहीं दिया। फलतः प्रसिद्ध आचार्यों, कवियों, शास्त्रकारों आदि के सर्वांगीण परिचय के प्रसंग में हमें सम्भावनाओं का ही सहारा आधिक्येन लेना पड़ता है। परन्तु इस विषय में जो थोड़े से अपवाद हैं उनमें महाकवि बाणभट्ट का नाम गणनीय है। हर्षचरित के आरम्भिक दो उच्छ्वासों में कवि ने अपना इतिवृत्त गुम्फित किया। कादम्बरी के आरम्भ में भी अपने पूर्वजों का परिचय और उनकी प्रातिस्विक विशेषताओं का उल्लेख करके पाठकों की पर्याप्त सहायता कर दे रहे हैं जिससे कवि के सम्बबन्ध में स्पष्ट रूप से जानकारी प्राप्त करने में सौविध्य प्राप्त हो जाता है।

सोन के पावन पुलिन पर प्रीतिकूट नामक ग्राम था। वही इनकी जन्मभूमि है। इस स्थान के विषय में आज दो मत चल रहे हैं। पहला मत तो है शाहाबाद जिले में इस ग्राम की अवस्थिति के विषय में। पर गया जिले के अन्दर भी इस स्थान के विषय में चर्चायें चल रही हैं। ये दोनों स्थान विहार-प्रान्त में हैं। प्राचीन भौगोलिक वर्णनों के अत्यन्त परिस्फुट न होने के कारण सन्देह की समाप्ति तो सम्भव नहीं, पर अभी तक शाहाबाद जिले के भीतर ही इस ग्राम की मान्यता चल रही है।

सम्राट् हर्षवर्धन का शासन काल ६०६ से ६४८ ई० है। महाकवि बाण हर्ष के दरबारी कवि हैं, उनके साहित्यिक सुहृद् हैं, उनकी यशोगाथा के अमर गायक हैं और भारती देवी के कोष में ओजस्वी गद्य काव्य-रत्न का उपहार प्रस्तुत करने वाले महान् कवि हैं। हर्ष के समसामयिक होने के कारण इनका समय सातवीं शताब्दी का पूर्वार्ध है। फलतः इनके देश और काल के विषय में हम अन्धकार में नहीं हैं। साथ ही अपने वात्स्यायन कुल के प्रमुख पूर्वजों का नाम बतलाकर इन्होंने अपने वंशका भी पूरा २ परिचय प्रस्तुत कर दिया है। इस तरह संस्कृत में प्रसिद्ध कवियों के मण्डल में केवल बाणभट्ट का ही परिचय अधिक आलोक में है।

सम्भवतः गद्य का काव्यात्मक रूप हमें मन्दसोर के रुद्रदामन् शिलालेख से उपलब्ध होता है। उसमें केवल काव्यशैली का प्रयोग ही नहीं कुछ साहित्यिक सिद्धान्तों का उल्लेख भी है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि १५० ई० तक साहित्यिक मान्यताओं का उदय हो चुका था और साथ ही उसी के प्रकाश में नव-निर्माण की प्रक्रिया भी प्रारम्भ हो गई थी। उसके बाद 'प्रयाग-प्रशस्ति' में भी गद्य-काव्य के प्रायोगिक स्वरूप की प्राप्ति होती है। ये सामग्रियाँ तो आज भी अपने वास्तविक रूप में उपलब्ध हैं, महाभाष्य में आचार्य पतञ्जलि ने आख्यान और आख्यायिका के उदाहरण में यवक्रीत आदि एवं सुमनोत्तरा तथा वासवदत्ता का उल्लेख किया है जो आज मिलती नहीं। फिर भी इससे इतना तो ज्ञात हो ही जाता है कि ई०

पू० १५० तक आख्यायिकाओं का उल्लेखनीय निर्माण हो चुका था। सम्भवतः गद्य काव्य की विशिष्टशैली का अभिज्ञान हो जाता यदि वे पुस्तकें आज प्राप्त हो जाती। इसके पश्चात् एक महान् व्यवधान है जिसमें न किसी उत्तम एवं परिपूर्ण कृति की उपलब्धि हो रही है और न किसी रचना की चर्चा का विषय ही कर्णगोचर हो रहा है। इतने महान् काल के अनन्तर सुबन्धु की वासवदत्ता सामने आती है। वासवदत्ता गद्य काव्य के सर्वोत्तम कवि बाणभट्ट द्वारा प्रशंसित है। बाणभट्ट ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि जिस प्रकार इन्द्रदत्त शक्ति ने कर्ण के अधिकार में सुरक्षित होने के कारण पाण्डवों के अजेयताभिमान को गला दिया था उसी प्रकार वासवदत्ता के श्रवणगोचर होते ही कवियों का दर्प गल गया।

कवीनामगलद्दर्पो नूनं वासवदत्तया।
शक्त्येव पाण्डुपुत्राणां गतया कर्णगोचरम् ॥ ह० च०

इतनी प्रशंसा करने के बाद भी बाण को वासवदत्ता में कुछ बातें खटक रही थीं। बाण वासवदत्ता की रचना-पद्धति के कौशल से प्रभावित तो थे—पर, इसके फलस्वरूप भी उसके क्लिष्टश्लेष और अस्फुट रस के कारण असन्तुष्ट भी थे। वे प्रत्यक्षरश्लेषमय-प्रबन्ध के निर्माता सुबन्धु की शैली को अनुकरणीय समझते थे क्योंकि बाण ने अपनी अद्वितीय कथा कादम्बरी में कथातत्त्व, संविधान, ग्रथन-कौशल, श्लेषप्रधान शैली, तीव्रवाही रस-निर्झर, नृत्यत्प्रायपदावली के प्रयोग की जागरूकता आदि विषयों को परिष्कृत करके अपना लेने का सफल संकल्प किया है। कथा-साहित्य में जिन उपादेय उपकरणों की चर्चा बाण ने आज से चौदह सौ वर्ष पहले की है आज कथा-प्रधान युग में भी उनकी निःसारता ज्ञापित नहीं हो रही। यह है बाण की निर्मल दृष्टि—जिसके समक्ष चिरन्तन सत्य अपने सौन्दर्य और शिवरूप को आश्लिष्ट करके विराजमान है।

'वासवदत्ता' और कादम्बरी को अगल-बगल रख कर यदि पढ़ें तो आरम्भ से अन्त तक साम्य की छाया का दर्शन होता रहे। आरम्भिक पद्यों में जिन विशेषताओं का चित्र हमें वासवदत्ता में दृष्टिगोचर हो रहा है कादम्बरी में भी उसका ही भव्य दर्शन हो रहा है। बाण ने उससे अधिक अपने वंश का थोड़ा—पर अत्यन्त स्पष्ट चित्रण किया है। यह है विकास का स्वरूप। ठीक इसी प्रकार प्रथम वाक्य के गठन, वस्तुतत्त्व, वर्णन-क्रम, अलंकार-योजना आदि में भी अत्यन्त साम्य दिखाई देता है। शुक का प्रसंग 'वासवदत्ता' की कथा को अग्रसारित करता है कादम्बरी में भी शुक को आलम्बन बना कर ही कवि कथानक को प्रगतिशील बनाता है। पर, इतने साम्य के अन्तराल में भी सुबन्धु से बाण की व्युत्पत्ति, कवित्वशक्ति, कल्पना का अश्रान्त उल्लास, अनुभूति की बहुरंगी सम्पत्ति एवं कला के विलास का वैभव अधिक है। भारवि और माघ के युग्मक की भाँति सुबन्धु और

बाण का जोड़ा है। कुछ ऐतिहासिकों ने बाणवर्णित 'वासवदत्ता' को सुबन्धु की वासवदत्ता से भिन्न महाभाष्यकार द्वारा उदाहृत वासवदत्ता को ही मानकर निर्णय किया है। पर, इन दोनों ग्रन्थों के साम्य और अनुग्राह्यानुग्राहक भाव से यही जँचता है कि सुबन्धु की रचना का ही उल्लेख बाण ने किया है।

बाण ने गद्य में एक आख्यायिका और एक कथा का निर्माण किया है। आख्यायिका और कथा के लक्षण कुछ लक्षण-ग्रन्थों में मिलते हैं। सबका सार यही है कि आख्यायिका ऐतिहासिक वृत्त पर आधृत और 'कथा' कवि-कल्पना से प्रसूत वस्तु पर टिकी रहती है। इसके अनुसार हर्षचरित प्रथम और कादम्बरी द्वितीय भेद का ग्रन्थ है। साथ ही गद्य में विकट अक्षरों का बन्ध आवश्यक होता है। अत एव आख्यायिका में शृङ्गार रस के व्यंग्य रहने पर भी तथा अनुद्धत नायक के वक्ता होने पर भी अधिक सुकुमार वर्णों का प्रयोग अभिमत नहीं रहता। क्योंकि गद्य की शोभा के लिये विकट अक्षर ही अभ्यर्हित हैं इसलिये शृङ्गार, विप्रलम्भ शृङ्गार तथा करुण रस में दीर्घ समास का निषेध है। कथा में तो रौद्ररस के व्यंग्य रहने पर भी अत्यन्त उद्भट वर्णों का प्रयोग नहीं होता।

बाण ने संसार को केवल प्रातिभ नेत्रों से ही नहीं देखा था बल्कि अपने यौवनारम्भ में घुमक्कड़ बन कर प्रकृति के उद्वेजक तथा सलोने दृश्यों का साक्षात्कार किया था। कवि पहले द्रष्टा और बाद में स्रष्टा बनता है। बाण की दृष्टि ने जग के विविध और विचित्र दृश्यों के दर्शन किये थे। इसीलिये उसके वर्णन यथार्थ तथा चित्रोपम शैली में निबद्ध हैं। बाह्य जगत् के पदार्थों का यथोचित सांगोपांग वर्णन बाण की विशेषता है। यदि कोई सफल चित्रकार चित्र निर्माण की भावना से बाण के वर्णनों का अध्ययन आरम्भ करे तो वह अपनी कल्पना पर बल दिये बिना ही वर्ण्य-वस्तु का स्पष्ट और परिपूर्ण चित्र झटिति प्रस्तुत कर सकेगा। साथ ही वर्ण्य-वस्तु यदि विशाल तथा विविध भिन्नताओं का केन्द्र है तो उसका वर्णन विस्तृत तथा वैचित्र्य से ओतप्रोत होगा एवं स्वाभाविकता के धरातल पर उसे उपस्थापित भी किया जा सकेगा। अनुभूति की व्यापकता के साथ-साथ कल्पना का अश्रान्त प्रवाह भी उनकी निजी विशेषता है।

विषय के वर्णन का आरम्भ गम्भीर रीति से होता है, पर गाम्भीर्य के कारण बोध तत्त्व में जो क्लेश अनुभूत होने लगता है उसका वाक्य के पर्यवसान में समापन कर एक सहज गति, प्रसाद तथा वक्रता की मधुर छाया उपस्थित कर देता है। जिससे पाठकों के चढाव-उतार का बौद्धिक व्यायाम खेद की जगह कुतूहल तथा प्रसाद का वातावरण ला देता है। बड़े-बड़े वाक्यों के अध्ययन से जनित श्रान्ति को हटाने के लिये कवि अन्त में प्रसन्नश्लेष, विरोधाभास आदि अलंकारों की योजना करके पाठक के मन में सौरस्य का विकास कर देता है। ऐसे प्रसंगों में वस्तुओं का

परिपूर्ण चित्र प्रस्तुत करने के लिये कवि पौराणिक कथाओं, शास्त्रीय कलाओं तथा लोकविश्रुत जनश्रुतियों का भी संनिवेश कर देता है।* इससे जहाँ एक ओर बाण का व्यापक दृष्टिकोण परिज्ञात होता है वहीं दूसरी ओर बहुश्रुत होने का प्रबल प्रमाण भी मिल जाता है। राजभवन के आस्थान-मण्डप से लेकर गहन अरण्यानी के विपुल-दृश्य तक बड़े कौशल से उपनिबद्ध हैं। जहाँ एक ओर शबर सैनिकों तथा सेनापतियों का भयंकर एवं क्रूर कर्म वर्णित है वहीं सहज कारुणिक तपोधनों के प्रशान्त, उदार तथा लोकसेवा के निश्छल भाव का सुन्दर वर्णन भी देखने को मिलता है। बाण की कल्पना नित्य नूतन वर्णन में सिद्धहस्त है। कविवर दण्डी दशकुमारचरित की पूर्व-पीठिका में वसुमती और अवन्तिसुन्दरी का वर्णन बड़े संनाह के साथ करते हैं पर, दोनों के सौन्दर्य का उपमान एक जैसा है—यहाँ तक कि पदावली के प्रयोग में भी पौनरुक्त्य हो गया है। पर बाण में समान वर्णनीय प्रसंगों में भी असमान वर्णन की विदग्धता का वैशिष्ट्य स्पष्ट ही दृष्टिगोचर हो रहा है।

---

* उदाहरणार्थ—विन्ध्याटवी वर्णन में 'कर्णीसुतकथैव सन्निहितविपुलाचला शशोपगता च—आया है। यहाँ कर्णीसुत या कर्णीपुत्र का उल्लेख है। इसका नाम 'मूलदेव' भी प्रसिद्ध था। यह धूर्ताचार्य, चौर्यशास्त्र प्रवर्तक, काम शास्त्र, मुख्यतः वैशिक तन्त्र का प्रमुख पात्र था। इसके जीवन से सम्बद्ध कथाएँ विभिन्न रूपों में साहित्य में वर्णित हैं। एक स्थान पर निर्देश मिलता है कि इसके विपुल-अचल संज्ञक दो सखा थे और मन्त्री था इसका शश। ऐसा उल्लेख 'बृहत्कथा' से उद्धृत करके भानुचन्द्र प्रस्तुत करते हैं। किन्तु शूद्रक कवि विरचित 'पद्मप्राभृतक' नामक 'भाण' के अनुसार विपुला नाम की कोई गणिका थी जिस पर वह अनुरक्त था। शश नाम के रहस्यमित्र उसके निजी या विट का वहाँ भी उल्लेख मिलता है। यह देवदत्ता नाम की गणिका के प्रति अनुरक्त था जिसकी छोटी बहन थी देवसेना। बाद में वह देवसेना के प्रति मुग्ध हो जाता है। कामसूत्र के वैशिक प्रकरण की 'जयमङ्गला' टीका में मिलता है—'यथा देवदत्ताया अनङ्गसेनयेति, ततो हि समाकृष्य स्पर्धया मूलदेवः कामितः।' शूद्रक ने कर्णीपुत्र को विशेषित करते हुए लिखा है—'अनेकशास्त्राधिगतनिष्पन्द-बुद्धिः, सर्वकलाज्ञानविचक्षणः, व्युत्पन्नयुवतिकायतन्त्रसूत्रधारः।' क्षेमेन्द्र ने भी 'कलाविलास' में कर्णीपुत्र मूलदेव का वृत्तान्त मूल रूप में प्रस्तुत किया है। 'रतिरहस्य' नाम के ग्रन्थ में कर्णीपुत्र के कामशास्त्रीय विचार के प्रकाशक कुछ श्लोक मिलते हैं। हरिभद्र सूरि ने 'धूर्ताख्यान' नाम की रचना मूलदेव कर्णीपुत्र के जीवन को ही आधारभूत बना कर लिखी है। शुकसप्तति की कहानियों में यह वेश सम्बन्धी मामलों के पंच के रूप में वर्णित है।

विषय-सूची

विषयः | पृष्ठम्

कादम्बरी

पूर्वभागः

—:*:—

रजोजुषे जन्मनि सत्त्ववृत्तये स्थितौ प्रजानां प्रलये तमःस्पृशे।
अजाय सर्गस्थितिनाशहेतवे त्रयीमयाय त्रिगुणात्मने नमः॥ १॥

श्रेयः श्रीललनाविलासकुशलः पायादपायात्स वः
श्रीमन्नाभिनरेन्द्रसूनुरमरैः संसेव्यमानान्तिकः।
रेजे यस्य कचावली भुजशिरोदेशे लुठन्ती प्रभो-
र्लग्ना शैवलमञ्जरी भवसरित्पारं प्रयातुः किमु॥ १॥
सर्वेऽन्ये जनतानिषेविततया मानाभिभूता भृशं
मन्यन्ते तृणवत्त्रिलोकमखिलं दुर्बुद्धिबद्धाशयाः।
कृत्स्नैश्वर्यजुषापि येन सुधिया देवेन्द्रसेव्याङ्घ्रिणा
नैवाकारि कदापि गर्वमलिनं चेतः स शान्तिः श्रये[1]॥ २॥

कादम्बिनी कृपायाः कविविद्यायास्तु भाग्यसीमैव।
शशिशेखरस्य वामा श्यामा कामाय भूयान्नः॥

जो अजन्मा होकर भी प्रजाओं के प्रादुर्भाव करने में रजोगुण से प्रीति करता है, उनके पालन करने में सत्त्वमयी वृत्ति को धारण करता है तथा उनके विनाश करने में तमोगुण का स्पर्श करता है, उस सृष्टि, स्थिति तथा प्रलय के कारणभूत त्रयीमय तथा त्रिगुणात्मक ब्रह्म को नमस्कार है।

भारतीय संस्कृति में स्मार्त परम्परा का महत्त्व अत्यधिक रहा है। इस परम्परा में 'सृष्टि' का देवता हिरण्यगर्भ है। वह ब्रह्म का ही रजोगुण के संसर्ग से प्रकटीभूत रूप है। प्रकृति निरपेक्ष ब्रह्म निष्क्रिय है। 'स एकाकी नारमत' इस श्रुति से ज्ञात है कि ब्रह्म की 'रिरंसा' ही सृष्टि का मूलाधार है। 'तदैक्षत एकोऽहं बहु स्यां प्रजायेय' इस संकल्प के होते ही उसकी इच्छाशक्ति के विलास से सृष्टि का शुभारम्भ हो जाता है। प्रकृति त्रिगुणात्मिका है। उसमें रजोगुण क्रियाशीलता का उत्पादक है। ब्रह्म सृष्टि करने की इच्छा से रजोगुण से प्रीति करने लगता है। साधन से प्रीति होना ही साध्य का स्वायत्त होना है। इस अभिप्राय को प्रकट करने के लिए 'रजोजुषे' का प्रयोग कवि ने किया है। 'रजोजुषे' में जकार की पुनरावृत्ति अनुप्रास का साधक तो है ही प्रीति रूप अर्थ के बोधन से सृष्टि-प्रक्रिया का रहस्योद्घाटन करने वाला भी है। 'जुषे' पद 'जुषी प्रीति

पाठान्तरम्—१. 'श्रये' इति पाठश्चिन्त्यः।

वल्कीर्त्तिर्धवलीचकार सहसा ब्रह्माण्डभाण्डोदरं
दाशार्होऽपि तदन्तरा निपतितः सद्यो न संलक्षितः ।
तेनाद्यापि निरीश्वरं जगदिदं जल्पन्ति सांख्यादयः
स श्रीनेमिजिनेश्वरो भवभृतां देयादमन्दां मुदम् ॥ ३ ॥
मूर्ध्नि न्यस्तद्विजिह्वाधिपतिफणगणस्पष्टसंरम्भदम्भा-
द्धत्ते यः सप्तविश्वाद्भुतपरममनोहारिसाम्राज्यलक्ष्मीम् ।
नम्रालुस्वर्गिमौलिप्रकरमणिलसत्कान्तिभिश्चित्रिताङ्घ्रिः
स श्रीपार्श्वाधिराजो भवतु भवभिदे पार्श्वसंसेव्यमानः ॥ ४ ॥
यद्वाचामधिकां विलासपदवीमीहेद् भृशं भारती
यत्सत्त्वैकपरम्परां कलयितुं सिंहोऽङ्कदम्भादियात् ।
यत्सौन्दर्यदिदृक्षयेव समभूदक्ष्णां सहस्रं हरेः
स श्रीवीरविभुर्ददातु भविनां शश्वन्मनोवाञ्छितम् ॥ ५ ॥

सेवनयोः' धातु से कर्त्तरि क्विप् करने से निष्पन्न होता है। सांख्य दर्शन ब्रह्म के प्रकाश से प्रकृति में गुणवैषम्य होना मानता है और गुणों की विषमता ही सृष्टि को जन्म देती है। वहाँ प्रकृति ही चराचर की प्रसविनी है। ब्रह्म केवल अध्यक्ष, उदासीन या प्रकाश वितरक मात्र माना गया है। पर, प्रकृत पद्य में प्राधान्य ब्रह्म का है। प्राकृतिक गुणों का परिग्रह विभिन्न नाम और क्रियाओं का निष्पादक है। इसलिए ब्रह्मनिरपेक्ष प्रकृति जड, स्तब्ध तथा निर्व्यापार है एवं प्रकृति से असम्बद्ध ब्रह्म निर्गुण, निरंजन तथा निष्क्रिय है। अतः दोनों का सामञ्जस्य ही सृष्टि, स्थिति और प्रलय का निदान माना गया है। इसी तरह प्रजाओं के पालन करने में सात्त्विक वृत्तियों का होना परम आवश्यक है। पिण्ड में स्पष्टतया लक्षित होता है कि पालन क्रिया सत्त्वमयी वृत्ति के आने पर ही हो पाती है। सात्त्विक वृत्तियों से संवलित होने के कारण ही माता बच्चों के पालन में अहर्निश दुःसह क्लेशों को सहर्ष सहकर भी अपने काम में संलग्न रहती है। इसी तरह प्राणियों के पालन में नारायण फलासक्ति शून्य होकर सतत जागरूक रहता है। 'वृत्ति' का प्रयोग सत्त्व के साथ सहज और नित्य सम्बन्ध का द्योतक है। कवि की इस सूक्ष्मेक्षिका का महत्त्व असाधारण है। साथ ही प्रलय भी सृष्टि-प्रवाह के लिए अतीव महत्त्वशाली है। तमोगुण विनाश का जनक है। ब्रह्म इस लीला के लिए तमोगुण का भी स्पर्श करता है। तमोगुण के स्पर्श से ही अनन्त वैचित्र्य पूर्ण सृष्टि का प्रलय हो जाता है। अतः मङ्गलापेक्षी मानवों को 'तमस्' से बचने का इंगित भी यहाँ किया गया है। इस तरह एक अद्वितीय, अज कहलाने वाला ब्रह्म प्रकृति के तीनों गुणों के पृथक्-पृथक् परिग्रह कर लेने से ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र के नाम से विख्यात हो जाता है। जिस प्रकार एक ही व्यक्ति कार्य-भेद से चिकित्सक, अध्यापक, व्यापारी, संसत्-सदस्य आदि नामों से पुकारा जाता है उसी तरह एक ही ब्रह्म रजोगुण से प्रेम करने के कारण सृष्टि के हेतुभूत 'प्रजापति' नाम से अभिहित होता है, पालन करने के कारण स्थिति के हेतु स्वरूप 'विष्णु' की आख्या से प्रख्यात होता है एवं प्रलय करने के कारण 'रुद्र' नाम से विश्रुत हो जाता है।

श्रीमत्तपःपक्षसहस्रदीधितिः श्रीहीरसूरिः समभून्महोदयः ।
यद्वक्त्रसौन्दर्यगुणं विलोकयन्त्ययौ सुरौघः किमु निर्निमेषताम् ॥ ६ ॥
अनन्यसौजन्यगुणैर्गरीयान्विशिष्टशिष्टाचरणैर्वरीयान् ।
तत्पट्टपाथोनिधिपूर्णचन्द्रो विराजते श्रीविजयादिसेनः ॥ ७ ॥
तत्पट्टोदयचूलावलम्बिपूर्णेन्दुसंनिभः श्रीमान् ।
श्रीविजयतिलकसूरिर्भूरिगुणैर्भूषितो जयति ॥ ८ ॥
तत्संप्रदाये प्रथितप्रभावो बभूव दानर्षिरतिप्रसिद्धः ।
यदीयवैराग्यकथां प्रवक्तुं प्राप्तो गुरुः किं हरिसंनिधानम् ॥ ९ ॥
तद्दीक्षितानेकविनेयवर्गमुक्तालतामध्यमणिप्रकारः ।
श्रीवाचकेन्द्रः सकलादिचन्द्रो बभूव विश्वाद्भुतवाग्विलासः ॥ १० ॥
श्रीसूरचन्द्रः समभूत्तदीयशिष्याग्रणीर्न्यायविदां वरेण्यः ।
यत्तर्कयुक्त्या त्रिदिवं निषेवे तिरस्कृतश्चित्रशिखण्डिजोऽपि ॥ ११ ॥
तदीयपादाम्बुजचञ्चरीको विराजतेऽद्धा हरिधीसखाभः ।
श्रीवाचकः संप्रति भानुचन्द्रो अकब्बरक्ष्मापतिदत्तमानः ॥ १२ ॥
श्रीशाहिचेतोऽब्जषडङ्घ्रितुल्यः श्रीसिद्धचन्द्रोऽस्ति मदीयशिष्यः ।
कादम्बरीवृत्तिरियं तदीयमनोमुदे तेन मया प्रतन्यते ॥ १३ ॥

इह हि विशिष्टशिष्टाचारानुमितश्रुतिबोधितकर्तव्यताकं प्रारिप्सितविघ्नविघातफलकं हिरण्यगर्भनमस्कारात्मकं मंगलमाचरति—रजोजुष इति । अजाय स्वयंभुवे नम इत्यन्वयः । किंभूताय । प्रजानां जन्मनि सृष्टिकाले रजोजुषे रजोगुणयुक्ताय । पुनः किंविशिष्टाय । प्रजानां स्थितौ स्थितिकाले सत्त्ववृत्तये सत्त्वस्य वृत्तिर्यस्मिन् । सत्त्वगुणयुक्तायेत्यर्थः । पुनः किंलक्षणाय ।

ऋग्, यजुः और साम की त्रिवेणी ही 'त्रयी' नाम से प्रसिद्ध है । वेद ज्ञान के साकार रूप हैं । इन्हीं के साथ तादात्म्य प्राप्त कर ब्रह्म समस्त प्रपञ्चों की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय की लीला का प्रयोग करता रहता है । 'धाता यथापूर्वमकल्पयत्' इस श्रुति से भी ज्ञात होता है कि वेदों के निर्देश से ही ये तीनों देव सृष्टि, स्थिति और प्रलय के महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्वों का निर्वाह करते रहते हैं । प्रकृत अर्थ के अनुगुण 'त्रयी' पद त्रिदेव रूपता का बोधक प्रतीत होता है । इनमें भी हिरण्यगर्भ का प्राथम्य सर्गक्रिया की ज्येष्ठता का परिचायक है । सृष्टि होने पर ही पालन एवं तदनन्तर संहरण की अपेक्षाकृत आवश्यकता सिद्ध हो पाती है । इसीलिए क्रियानुरूप ही देवों के पौर्वापर्य क्रम का निर्देश किया गया है ।

तीनों गुणों के साथ अलग-अलग तीन धातुओं का प्रयोग 'अनवीकृतत्व' नामक दोष से बचने का उद्घोष करता है । त्रिदेवों के नमस्कार करने से तद्विषयक राग व्यञ्जित होता है । अतः देवविषयणी रति की व्यञ्जना से 'भावध्वनि' का स्फुट प्रयोग अनुभूयमान है । रजोजुषे आदि विशेषणों के साभिप्राय होने से परिकर अलंकार है । 'सर्गस्थितिनाशहेतवे' में रजोजुषे आदि पदों का क्रमेण अन्वय होने से यथासंख्यालङ्कार भी है । अनेक वर्णों की पुनरावृत्तियों से

जयन्ति बाणासुरमौलिलालिता दशास्यचूडामणिचक्रचुम्बिनः।
सुरासुराधीशशिखान्तशायिनो भवच्छिदस्त्र्यम्बकपादपांसवः ॥ २ ॥

प्रजानां प्रलये विनाशकाले तमःस्पृशे तमोगुणयुक्ताय। अमीषां च गुणानां लक्षणम् 'सत्त्वं लघु प्रकाशकं च, चलमवष्टम्भकं च रजः। गुर्वावरणं च तमः' इति द्रष्टव्यम्। जन्मनि स्थितौ प्रलये चेति निमित्तसप्तमी वा। पुनः किंविशिष्टाय। सर्गस्थितिनाशहेतवे। प्रजानामित्यस्य सर्वत्रानुषङ्गः। तेन प्रजानां सर्गः स्थितिश्च नाशश्च तेषां हेतवे कारणीभूताय। पुनः किंलक्षणाय। त्रयीमयाय। त्रयी ब्रह्मविष्णुमहेशानाम्। वेदानां वा त्रयी। तन्मयाय तत्स्वरूपाय। पुनः किंविशिष्टाय। त्रिगुणात्मने ब्रह्मविष्णुमहेशात्मकत्वेन तत्तद्गुणयोगात्त्रिगुणात्मकाय। सत्त्वरजस्तमोगुणस्वरूपायेत्यर्थः। तादृशाय पितामहाय नम इति प्राचीनव्याख्या ॥ अत्र च व्याख्याने विधेः सृष्टिमात्रकर्तृत्वेन केवलं रजोगुणस्यैव सम्बन्धात्त्रिगुणात्मकत्वमतिविरुद्धम्। किं च विधेस्तमोगुणवत्त्वे सत्त्वगुणवत्त्वे वा शिवत्वं विष्णुत्वं च व्यपदिश्येत। एतेषां त्रयाणां गुणभेदादेव मूर्तिभेद इति पौराणिकाः। अपि च पूर्वार्धे जन्मस्थितिप्रलयकर्तृत्वस्य रजोजुषे सत्त्ववृत्तये तमःस्पृश इत्यनेन त्रिगुणात्मकत्वस्यापि चोक्तत्वेन पुनरुत्तरार्धे सर्गस्थितिनाशहेतव इति त्रिगुणात्मन इति च पुनरुक्तं स्यादिति प्रकारान्तरेण व्याख्यास्यामः—अजाय कूटस्थनित्याय परब्रह्मणे नम इत्यन्वयः। किंभूताय। प्रजानां सर्गस्थितिनाशहेतवे। प्रजानामित्यनित्यमात्रपदार्थोपलक्षकम्। तेनानित्यपदार्थानां सर्गस्थितिनाशकारणायेत्यर्थः। अनित्यपदार्थानां सृष्टिस्थितिनाशहेतुत्वं च श्रुतिसिद्धम्। 'जगत्कारणं ब्रह्म' इति श्रुतेः। पुनः किंभूताय। त्रयीमयाय। त्रयी वेदानां त्रयी तत्स्वरूपाय। 'वेद एव परं ब्रह्म' इत्युक्तत्वात्। यद्वा। त्रयी ब्रह्मविष्णुमहेशानां त्रयी तत्स्वरूपाय। यथा मृद उत्पन्नेऽपि घटे मृन्मय इति व्यवहारस्तथा ब्रह्मणस्त्रयाणामुत्पादकत्वेऽपि त्रयीमयत्वव्यवहारः समुचितः। ब्रह्मविष्णुमहेशास्त्रयो जीवा एवेति वेदान्तिनः। अत एव त्रिगुणात्मकाय। भेदाभेदविवक्षयेत्यर्थः। तस्य परब्रह्मणः कथं ब्रह्मविष्णुमहेशात्मकत्वमत आह—प्रजानां जन्मनि सृष्टौ रजोजुट् प्रजापतिस्तत्स्वरूपायेत्यर्थः। पुनः प्रजानां स्थितौ सत्त्ववृत्तिर्विष्णुस्तत्स्वरूपाय। पुनः प्रजानां प्रलये तमःस्पृक् शिवस्तत्स्वरूपाय। यथैकस्यैव स्फटिकस्य नीलपीतादिगुणसम्बन्धान्नीलः पीत इति व्यवहारस्तथैकस्यैव परब्रह्मणः सृष्टिकाले रजोगुणसम्बन्धाद् ब्रह्मेति, स्थितिकाले सत्त्वसम्बन्धाद्विष्णुरिति, प्रलये तमःसम्बन्धादीश्वर इति व्यवहारः। तेन परब्रह्मण एवायं नमस्कार इति किं बहुना ॥ १ ॥

जयन्तीति। त्र्यम्बकस्य शिवस्य पादपांसवश्चरणरेणवो जयन्ति। सर्वोत्कर्षेण वर्तन्त इत्यर्थः। कथंभूताः। बाणासुरेति। बाणो बाणनामासुरस्तस्य मौलिना मुकुटेन मस्तकेन वा

अनुप्रास भी स्पष्ट ही है। अतः परस्पर निरपेक्ष अलंकारों की संसृष्टि काव्यगत सौन्दर्य के उन्मेष में निमित्त है। 'जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ' के अनुसार वंशस्थ वृत्त है। 'नमः' पद के योग में रजोजुषे आदि पदों में चतुर्थी विभक्ति है। जन्मनि, स्थितौ और प्रलय में वैषयिक सप्तमी है। प्रजानां पद उत्पद्यमान मात्र का बोधक है। अतः स्थावर जंगमात्मक प्रपञ्च ही यहाँ 'प्रजा' पद से अभिप्रेत है ॥ १ ॥

भगवान् त्रिलोचन के उन चरण रेणुओं की जय हो, जो बाणासुर के किरीट से सहलाये

जयत्युपेन्द्रः स चकार दूरतो बिभित्सया यः क्षणलब्ध[1]लक्ष्यया[2]।
दृशैव कोपारुणया रिपोरुरः स्वयं भयाद्भिन्नमिवास्रपाटलम् ॥ ३ ॥

लालिताः परिचिताः । पुनः किंविशिष्टाः । दशास्येति । दशास्यो रावणस्तस्य चूडामणयः शिरोमणयस्तेषां चक्रं समूहं चुम्बन्ति स्पृशन्तीत्येवंशीलाः । पुनः किंविशिष्टाः । सुरेति । सुराश्चासुराश्च तेषामधीशाः स्वामिनस्तेषां शिखाः चूडास्तासामन्तः प्रान्तस्तत्र शेरत इत्येवंशीलाः । पुनः किंविशिष्टाः । भवच्छिदः । संसारविच्छेदिन इत्यर्थः । अत्र पूर्वविशेषणत्रयेण परमेश्वरचरणरजसः परमैश्वर्यम् , भवच्छिद इत्यनेन च संसारिणां संसारदुःखनिवारकत्वमुक्तमिति ॥ २ ॥

जयतीति । स उपेन्द्रो विष्णुर्नृसिंहावतारी जयति सर्वोत्कृष्टत्वेन वर्तते । स कः । यो

गये हैं, दशानन के समस्त चूडामणियों के स्पर्श करने वाले हैं, देवताओं तथा असुरों के अधीश्वरों के मूर्धन्यभूत उत्तमांगों पर शयन करने वाले हैं तथा संसार के नाशक हैं ।

प्रस्तुत पद्य में त्र्यम्बक के पादपाँसुओं के जय-जयकार की बात कही गई है । त्र्यम्बक की जय न कह कर उनके चरणरेणुओं का जय बोलना अत्यन्त उत्कृष्ट भक्ति का द्योतक है । उसमें भी 'पांसवः' का बहुवचनत्व इस बात का व्यञ्जक है कि चरण से संस्पृष्ट समस्त धूलिकणों की सर्वोत्कृष्टता स्वयं सिद्ध है । अर्थात् धूलि भी जिनके चरणों से स्पृष्ट होने पर सर्वोत्कृष्ट हो जाती है तो प्राणियों और विशेषतः विज्ञजनों को यदि उनके चरणों का सहारा मिल जाय तब उनके महत्त्व का कहना ही क्या ? भवं छिन्दन्तीति भवच्छिदः इसविग्रह से निष्पन्न होनेवाले भवच्छिदः का अभिप्राय है कि यद्यपि छेदन क्रिया किसी मूर्त्त द्रव्य का ही हो सकता है 'भव' का रूप वैसा नहीं है तथापि 'भव' का आशय है सुख-दुःख, जन्म-मरण आदि द्वन्द्वों का कल्पित मूर्तिमान् विग्रह । अतः उसके विदारण का रहस्य है शाश्वत शान्ति का प्रकटीकरण । यदि भव शब्द को जन्म का ही वाचक मानें तब अर्थ होगा कि जन्म के नाशक । मुक्ति तो तभी सम्भव है जब जन्म की क्रिया से छुटकारा मिल सके । अन्यथा मृत्यु तो 'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः' के अनुसार अपरिहार्य होगी । मृत्यु से मुक्ति जन्म के नाश पर ही निर्भर है ।

असुर योनि के अत्यन्त प्रभावशाली बाणासुर तथा दशानन का नामोल्लेख कर कवि ने यह सिद्ध किया है कि शङ्कर केवल सजातीय लोगों में ही पूज्य नहीं बल्कि जाति-विरोध रखने वालों में अग्रगण्य, अत्यन्त प्रभविष्णु, असुराधीश्वरों से भी वन्दित होने के कारण अत्यधिक प्रभावशाली सिद्ध होते हैं । कुछ लोगों का कहना है कि तृतीय चरण के अर्थानुरोध से प्रथम चरण 'जयन्ति देवेश्वरमौलिलालिताः' होना चाहिये, क्योंकि सुराधीश्वरों के मूर्धजों पर शयन करने वाले रेणुओं का उल्लेख तभी सिद्ध होता । पर, कवि का अभिप्राय ऐसा है कि देव जाति से अत्यन्त उग्र विरोध रखनेवाले भी बाणासुर तथा रावण देवाधिदेव शङ्कर के चरण-रेणुओं को अपने सर पर चढ़ाकर अपना प्रभाव बढ़ाने के साथ-साथ महादेव की महत्ता का प्रकाशन भी करते हैं । जिसकी मान्यता विरोधियों के नेताओं के बीच इतनी अधिक हो और साथ ही अपने समाज के अधीशों से भी पूर्णतः पूजित होने के कारण समुन्नत हो तो ऐसी स्थिति में एकाधिक विरोधी नेताओं के

१. बद्ध, २. लक्ष्या ।

नमामि भर्त्सो'श्चरणाम्बुजद्वयं सशेखरैर्मौखरिभिः कृतार्चनम् ।
समस्तसामन्तकिरीटवेदिकाविटङ्कपीठोल्लुठितारुणाङ्गुलि ॥ ४ ॥

नृसिंहो बिभित्सया भेत्तुमिच्छया दूरतो दूरादिव क्षणं लब्धं लक्ष्यमवलोकनैकाग्रत्वं यथा अत एव कोपेन रोषेण अरुणया आरक्तया दृशैव दृष्ट्यैव रिपोः शत्रोर्हिरण्यकशिपोः उरो वक्षःस्थलमस्त्रं रुधिरं तद्वत्पाटलमारक्तं चकार । भयाद्विदारणभीत्या स्वयमेव भिन्नमिवेति कवेरुत्प्रेक्षा ॥ ३ ॥

शश्वद् गुरोर्नमस्कारं कुर्वन्नाह—नमामीति । भत्सुरिति गुरोर्नाम । क्वचित्तु 'भर्त्सुः' इति पाठः । तस्य चरणाम्बुजद्वयं पादकमलयुगलं नमामि नमस्करोमि । किंभूतम् । सशेखरैः समुकुटैर्मौखरिभिः क्षत्रियविशेषैः कृतं विहितमर्चनं पूजनं यस्य तत्तथा । पुनः किंविशिष्टम् । समस्तेति । समस्ताः समग्रा ये सामन्ता विषयान्तरराजास्तेषां किरीटानि कोटीराण्येव वेदिका परिष्कृता भूमिः । विस्तीर्णत्वात्तत्साम्यम् । तस्या विटङ्को मध्य उन्नतप्रदेशः । विटङ्कशब्दस्य कपोताद्याधारभूतकाष्ठवाचित्वेऽप्यत्र लक्षणयोन्नतत्वमात्रवाचित्वम् । विटङ्क एव पीठं स्थलं तत्रोल्लुठिता घृष्टा अत एवारुणा रक्ताः । तत्रत्यरक्तादिसम्बन्धात्स्वभावेन चारुणा अङ्गुलयः करशाखा यस्येति तत्तथा ॥ ४ ॥

सम्मानन का उदाहरण देना प्रभाव-प्रथन का हेतु सिद्ध होता है । अतः उपर्युक्त पाठ की अपेक्षा ग्रन्थकार का ही पाठ अधिक समीचीन प्रतीत होता है । 'चुम्बिनः' और 'शायिनः' पदों की निष्पत्ति 'चुम्बितुं शीलमस्ति एषां तथा शयितुं शीलमस्ति एषां' इन विग्रहों से णिनि प्रत्यय के योग में होती है । इसलिए रावण के मुकुट मणियों का शाश्वत संयोग एवं सुरासुराधीशों के शिखान्त पर शयन करने के स्वभाव वाले रेणुओं का वर्णन उनके लोकोत्तर महत्त्व के परिचायक हैं ।

इस वर्णन से बाण की शिव-भक्ति का प्राधान्य ध्वनित होता है । 'विद्याकामः शिवं भजेत्' के अनुसार ज्ञान की उपलब्धि के लिये शंकर के नमन का व्यंजनया उल्लेख सर्वथा उचित ही प्रतीत होता है । बाणासुर-मौलि-लालितत्व आदि हेतुओं से पादपांसुओं का सर्वोत्कृष्टत्वसिद्ध करने से 'समुच्चय' है । अनुप्रास का विधान तो कर्णपेय है ही । अतः इन शब्दार्थालंकारों की परस्पर निरपेक्षतया अवस्थिति संसृष्टि का सम्पादक है ॥ २ ॥

उस भगवान् उपेन्द्र (विष्णु) की जय हो जिसने भेदन की इच्छा से क्षणमात्र के लिए लक्ष्य को प्राप्त कर लेने वाली, क्रोध से आरक्त दृष्टि से ही शत्रु के अपने आप भय से विदीर्ण वक्षःस्थल को दूर से ही रक्त रञ्जित सा कर दिया ।

वादगोष्ठियों में विपक्षदल पर झटिति विजय प्राप्त करने के लिए नृसिंह की उपासना परम्परा प्राप्त है । तदनुसार कवि भगवान् नृसिंह के लोकोत्तर शौर्य का वर्णन प्रस्तुत पद्य में कर रहा है । दुर्दान्त हिरण्यकशिपु के आतङ्क से समस्त विश्व में खलबली मची हुई थी । अहङ्कार के विग्रह-स्वरूप हिरण्यकशिपु 'राम' के भक्त प्रह्लाद को भी मार डालने के लिए जब खड्गहस्त होकर राम की सत्ता और प्रभुता को चुनौती देने लगा तब भक्त की वाणी को सत्य सिद्ध करने के लिए भगवान् विष्णु ने नर-सिंह की विलक्षण आकृति से स्तम्भ से ही प्रकट होकर हिरण्यकशिपु के संहार का काम किया । इसी आख्यान को काव्यरूप देने वाले कवि ने भगवान् के अलौकिक

१. भर्त्सो ।

अकारणाविष्कृतवैरदारुणादसज्जनात्कस्य भयं न जायते।
विषं महाहेरिव यस्य दुर्वचः सुदुःसहं संनिहितं सदा मुखे॥ ५॥

अकारणेति। असज्जनात्खलात्कस्य साधोर्भयं साध्वसं न जायते न भवति। अपि तु सर्वस्यापि भवतीत्यर्थः। कथंभूतादसज्जनात्। अकारणेत्यादि। अकारणमनिमित्तमेवाविष्कृतं प्रकटीकृतं यद्वैरं विरोधः तेन दारुणात् क्रूरान्निष्ठुरात्। यस्य खलस्य सदा निरन्तरं मुख आनने संनिहितं निकटस्थं दुर्वचो दुष्टवचनं सुदुःसहमत्यन्तोद्वेगजनकं भवति। यथा महाहेर्महोरगस्य विषं गरलं मुखे संनिहितं परमसन्तापकत्वाद् दुःसहमित्युपमा॥ ५॥

तेज और प्रताप को व्यंजित करने के लिए नवीन कल्पना का चित्र अङ्कित किया है। जिस हिरण्यकशिपु के प्रताप की आँच से सारा देवदल दग्ध होता सा रहा वही भगवान् के अरुणवर्ण के नयन कोर से ही ऐसा भीत हो गया कि विना प्रहार के ही उसका हृदय विदीर्ण होकर रक्त रञ्जित-सा हो गया। क्योंकि भगवान् ने विदारण करने इच्छा से ही सारा काम तमाम कर डाला। यह घटना दूर-दूर से ही घटित हो गई। शत्रु के शरीर का स्पर्श एवं वक्षःस्थल का नख से विदारण तो लोकव्यहार की मर्यादा के अनुसार कर दिया। प्रस्तुत वर्णन में भगवान् के सर्वातिशायी तेज का चित्राङ्कन हुआ है।

आचार्य क्षेमेन्द्र ने 'औचित्य' विचार 'चर्चा' में करणौचित्य के प्रत्युदाहरण के रूप में इस पद्य को उद्धृत किया है। उन्होंने शत्रु के हृदय का कोपारुण नेत्र वीक्षण से ही विदीर्ण होने के वर्णन को शत्रु का दौर्बल्य माना है। इससे विपक्ष की अल्पसारता व्यक्त होती है। फलतः ऐसे शत्रु के संहार से भगवान् के शौर्य का लोकोत्तरत्व नहीं सिद्ध होता, प्रत्युत प्रभावहीनता का ही द्योतन होता है। इस विषय में निवेदन है कि हिरण्यकशिपु के उत्कट पराक्रम और प्रताप की प्रसिद्धि तो पूर्णतया लोक में व्याप्त है। ऐसे दुर्जेय शत्रु को विना मारे ही दूरतः क्रोध से आरक्त नेत्रों के घूर्णन से ही विदीर्णहृदय बना देना लोकोत्तर शौर्य का ही द्योतन करता है। यहाँ उत्प्रेक्षा अलङ्कार का विधान अर्थ की चारुता को निखारने का काम कर रहा है।

विभित्सया=भेत्तुमिच्छया—भेदन करने की इच्छा से।

अस्रपाटलम्=रक्तरञ्जितम्—रक्त के समान लाल या रक्त से पाटल।

कुछ व्याख्याकारों ने आरम्भिक तीनों पद्यों को ब्रह्मा, शिव और विष्णु के वर्णन में प्रयुक्त माना है। इसमें दूसरे और तीसरे पद्य के विषय में मतभेद का अवसर नहीं है, पर प्रथम पद्य में हिरण्यगर्भ का वर्णन प्रधानरूपेण है। इस विषय में पर्याप्त मतभेद है, क्योंकि एक ही ब्रह्म विभिन्न गुणों के साहचर्य से विभिन्न क्रियाकारिता को अपनाता है। अतः प्रथम पद्य परब्रह्म के लिए प्रयुक्त मानना संगत है। यदि नाम साम्य से उसे ब्रह्मा का वर्णन मान लें तब वैसी भी व्याख्या हो सकती है॥ ३॥

जिनकी अर्चना राजमुकुट धारण करने वाले मौखरि वंशीय राजा लोग किया करते हैं तथा मौखरिवंशीय राजाओं के अधीन रहने वाले समस्त सामन्तों की किरीट वेदी के मध्योन्नत पीठ पर घर्षित होने के कारण जिनकी अंगुलियाँ अरुण हो गई हैं भगवान् भस्सु के उन युगल चरणारविन्दों को मैं प्रणाम करता हूँ।

कटु क्वणन्तो मलदायकाः खलास्तुदन्त्यलं बन्धनशृङ्खला इव।
मनस्तु साधुध्वनिभिः पदे पदे हरन्ति सन्तो मणिनूपुरा इव ॥ ६ ॥

कट्विति। खला दुर्जनाः साधून्सज्जनानलमत्यर्थं तुदन्ति पीडयन्ति। किं कुर्वन्तः। क्वणन्तो रटन्तः। किम्। कटु। अर्थाद् दुर्वचनमित्यर्थः। पुनः किंविशिष्टाः। मलदायकाः मलो मिथ्याकलङ्कस्तस्य दायकाः। आरोपका इत्यर्थः। क इव। बन्धनशृङ्खला इव। बन्धनं मनुष्यादेस्तदर्थं शृङ्खला लोहनिगडा इव। तेऽपि कटु कुत्सितं शब्दायमाना मलः स्वसम्पर्कात्स्वमालिन्यं तस्यारोपकाः स्वाच्छन्द्येन गतागतावरोधका भवन्तीति। उत्तरार्धेन साधूंस्तौति—सन्तः सुजनास्तु साधुध्वनिभिर्मनोहारिशब्दैर्वचनैः पदे पदे शब्दे शब्दे प्रतिक्षणं वा, मनश्चित्तं हरन्ति गृह्णन्ति। क इव। यथा मणिखचिता नूपुरा मञ्जीराणि पदे पदे। अर्थात्कामिनीनां चरणप्रक्षेपे प्रक्षेपे साधुध्वनिभिर्मञ्जुलसिञ्जितैर्हृदयहारिणो भवन्तीत्युपमा ॥ ६ ॥

देवत्रयी का नमस्कार कर गुरुदेव का नमन प्रस्तुत पद्य में किया गया है। इस वर्णन से प्रतीत होता है कि बाणभट्ट ने उस गुरु से शिक्षा प्राप्त की थी जिसके यहाँ राजकुमारों के अध्ययन क्रम का प्रवर्तन था। अत एव विद्याओं और कलाओं की शिक्षा साथ-साथ चल रही थी। जिसके फलस्वरूप बाणभट्ट समस्त विद्याओं में पारङ्गत तथा सभी कलाओं में निष्णात हो गये थे। कादम्बरी के वर्णन से बाण का विद्याओं तथा कलाओं का नैपुण्य परिलक्षित होता है।

चरणद्वय पर अम्बुज का आरोप उनके सौकुमार्य आदि गुणों का प्रत्यायक है। उसीका विशेषण होने से यह भी प्रतिपाद्य है कि गुरुदेव भत्सु का चरण युगल साधारण पादपीठ पर अधिष्ठित न होकर राजकुमारों के मुकुट के मध्य में उन्नतभाग पर प्रतिष्ठित रहता था। अत्यन्त कोमल होने के कारण उन अंगुलियों को मुकुट की रगड़ से अरुणिम होने का वर्णन स्वाभाविक है। यहाँ 'विटङ्क' पद लक्षणया उन्नत स्थल का बोधक है। इस शब्द का वाच्य अर्थ है कपोतपालिका का उन्नत भाग। मुकुटों के निर्माण साम्य को ध्यान में रखकर कवि ने विटङ्क पीठ से अभेद रूप में वर्णित किया है। प्रस्तुत पद्य में रूपक का सौन्दर्य उत्तम है। गुरुदेव के महत्त्व ख्यापन के व्याज से कवि ने लक्ष्मी को सरस्वती का अनुगमन करने वाली बतलाया है ॥ ४ ॥

अकारण वैर करने के कारण भयंकर रूप धारण करने वाले उस दुर्जन से किसे भय नहीं होता ? जिसके मुख में सुदुःसह दुर्वचन उसी प्रकार सदा सन्निहित रहता है जिस प्रकार महासर्प के मुख में सदा सुदुःसह विष संन्निहित रहता है।

गद्य काव्य की परम्परा में दुर्जन निन्दा तथा सज्जन प्रशंसा का वर्णन होना प्रचलित हो चुका था। तदनुसार कवि प्रस्तुत पद्यमें दुर्जनों का वर्णन करते हैं। यहाँ उपमा का चमत्कार दर्शनीय है। 'असज्जनात्' पद में भयहेतु में पञ्चमी विभक्ति है ॥ ५ ॥

बाँधने की जंजीरें जिस तरह कानों को कटु लगने वाली आवाज करती हैं, बाँधने की जगह को मलिन बना डालती हैं तथा पर्याप्त व्यथा उत्पन्न करने वाली होती हैं उसी तरह खल लोग कटु भाषी, मालिन्य के जनक तथा पर्याप्त पीडा पहुँचाते रहते हैं और अच्छे मणियों के नूपुर की भाँति सज्जन लोग पद-पद पर उत्तम ध्वनियों से मन ही चुरा लेते हैं।

प्रस्तुत पद्य में दुर्जन निन्दा और सज्जन प्रशंसा साथ-साथ की गई है। पूर्वार्ध में दुर्जनों को हथकड़ी और बेड़ी से उपमित करके कवि ने नये उपमान को उपस्थित किया है। पूर्णोपमा

सुभाषितं हारि विशत्यधो गलान्न दुर्जनस्यार्करिपोरिवामृतम् ।
तदेव धत्ते हृदयेन सज्जनो हरिर्महारत्नमिवातिनिर्मलम् ॥ ७ ॥
स्फुरत्कलालापविलासकोमला करोति रागं हृदि कौतुकाधिकम् ।
रसेन शय्यां स्वयमभ्युपागता कथा जनस्याभिनवा वधूरिव ॥ ८ ॥

सुभाषितमिति । सुभाषितं सुकाव्यादि हारि मनोहार्यपि दुर्जनस्य खलस्य गलात् कण्ठान्निगरणादधो न विशति न गच्छति । हृदयशून्यत्वादिति भावः । कस्येव । अर्करिपोः पीयमानममृतं यथा न हृदयं विशति पूर्वोक्तहेतोरेव । तदेव सुभाषितं सज्जनो गुणग्राहको हृदयेन स्वान्तेन धत्ते धारयति । स हृदयगतत्वान्न कदाचिद्विस्मरतीति भावः । यथा हरिः विष्णुर्नारायणो हृदयेन वक्षःस्थलेनातिनिर्मलं स्वच्छं महारत्नं कौस्तुभं दधाति ॥ ७ ॥

स्फुरदिति । अभिनवा कथा गद्यपद्यमयी रसेन शृङ्गारादिना कृत्वा जनस्य सहृदयजनस्य हृद्यन्तःकरणे कौतुकं कुतूहलमधिकं यस्मिंस्तत्कौतुकाधिकम् । कौतुकपूर्णमित्यर्थः । तादृशं रागं प्रीतिं करोति जनयति । किंभूता । स्फुरदिति । स्फुरच्चञ्चत्कलो मधुरो य आलापः शब्दरचना तस्य विलासो माधुर्यं तेन कोमला मृद्वी । अन्यत्रापि कथायामालापादिकं भवत्येवेति ध्वनिः । पुनः किंविशिष्टा । शय्यामभ्युपागता प्राप्ता । 'शय्या तल्पे शब्दगुम्फे' इत्यनेकार्थः । यथाभिनवा नवोढा वधूः रसेन प्रेम्णा स्वयमेव अर्धाङ्गतृ जनस्य शय्यां पल्यङ्कमागता कौतुकमनुरागं च करोति । किंभूता वधूः । स्फुरन् प्रसर्पन्यः कलो मन्द्र आलापविलासो वचनव्यापारस्तेन कोमला सुन्दरा । 'कोमलं मृदु सुन्दरे' इति विश्वः ॥ ८ ॥

की सम्यक् प्रपत्ति अर्थचित्र को इस ढंग से प्रस्तावित करती है जिससे अर्थबोध और सौन्दर्यानुभव का मणिकाञ्चन योग हो जाता है । उत्तरार्ध में सज्जन प्रशंसा के सन्दर्भ में सज्जनों को मणिमंजीर से उपमित किया है । मणिमञ्जीर भी नायिका के प्रत्येक पदन्यास पर मधुर झंकार करके युवजनों के मन को ही चुरा लेते हैं । ठीक इसी तरह प्रत्येक सुबन्त और तिङन्त रूप पद के प्रयोगसौष्ठव से सत्पुरुष लोग श्रोताओं के मन को आकृष्ट कर लेते हैं ॥ ६ ॥

जिस प्रकार राहु के गले से नीचे अमृत नहीं उतर सका उसी प्रकार दुर्जन के गले के नीचे मनोहर सुभाषित नहीं उतरता । परन्तु सज्जन लोग उसी अति निर्मल सुभाषित को हृदय से धारण किये रहते हैं जैसे भगवान् विष्णु अत्यन्त निर्मल कौस्तुभमणि को हृदय से धारण किये रहते हैं ।

इस पद्य में भी दुर्जन और सज्जन के स्वरूप का वर्णन किया गया है । अच्छी बात दुर्जन के गले के नीचे नहीं उतरती । इस प्रकृत अर्थ को स्पष्ट करने के लिए जिस अति प्रसिद्ध उपमान का उपन्यास कवि ने किया है वह इस पद्य के अर्थ की चारुता में चार चाँद लगा देता है । जिसे दुर्जन गले के नीचे नहीं उतरने देता उसे ही सज्जन हृदय से धारण कर लेता है । इसमें भी उपमान बहुत ही ठीक खोज कर रखा गया है । दोनों के स्वभाव में कितनी भिन्नता है ! इसका वर्णन इससे अच्छा कर पाना अत्यन्त कठिन है । प्रस्तुत पद्य उपमा के अनुपम सौन्दर्य से समुद्भासित है । अर्करिपु = राहु । महारत्न = कौतुभमणि ॥ ७ ॥

जैसे नवीन बधू अपने भड़कीले और मधुर वार्तालाप की विदग्धता से कोमल प्रकृति वाली

हरन्ति कं नोज्ज्वलदीपकोपमैर्नवैः पदार्थैरुपपादिताः कथाः ।
निरन्तरश्लेषघनाः सुजातयो महास्रजश्चम्पककुड्मलैरिव ॥ ९ ॥

हरन्तीति । नवैः स्वबुद्ध्यैव रचितैः पदार्थैः पदानां शब्दानामर्थैरभिप्रेयैः उपपादिता निर्मिता रचिताः कथा गद्यपद्यादिप्रबन्धाः कं सहृदयं जनं न हरन्ति न वशीकुर्वन्ति । सर्वस्यापि मनोहारिण्यो भवन्तीति भावः । कीदृशैः पदार्थैः । उज्ज्वलदीपकोपमैरुज्ज्वलः प्रकटो दीपकोऽलंकारविशेष उपमा च येषु ते तथाः तैः । 'शृङ्गारः शुचिरुज्ज्वलः' इत्यमरः । कीदृश्यः कथाः । निरन्तरेति । निरन्तरमव्यवधानं प्रतिपदं वा । उपमानोपमेययोरर्थसाम्यरूपः शब्दसाम्यरूपो वा यः श्लेषस्तेन घना बहुलतराः । पुनः किंभूताः । सुजातय इति । सुष्ठु जातिश्छन्दोविशेषो यासु । यद्वा । सुष्ठु जातिः स्वरूपं यासां ता इव । यथा नवैरम्लानैश्चम्पककुड्मलैर्हेमपुष्पकमुकुलैरुपपादिता महास्रजो महामाला मनो हरन्ति । अत्र यद्यपि कुड्मलैर्मालानिर्माणे नातीव रम्यत्वं तथाप्यग्रिमक्षणे विकासोन्मुखकुड्मलैर्मालानिर्माणे स्वौचित्यमेव । कीदृशैश्चम्पककुड्मलैः । उज्ज्वलो यो दीपकः प्रदीपस्तदुपमैस्तत्तुल्यैः । किंभूताः स्रजः । निरन्तरं सान्द्रतरं यः श्लेषो ग्रथना तेन घना निबिडाः । पुनः किंभूताः । सुष्ठु जातयो जातिपुष्पाणि यासु ताः ॥९॥

होकर तथा प्रेमावेश से नायक द्वारा अधिक अनुनय-विनय की प्रतीक्षा किये विना शय्या पर पहुँचने के कारण नायक के हृदय में कुतूहलपूर्ण अनुराग उत्पन्न कर देती है उसी तरह पात्रों के पारस्परिक संवाद में स्फूर्ति और मनोहारिता के समन्वय से कोमल तथा शृङ्गारादि रसों के व्यञ्जक पद-कदम्ब पर स्वयं उपस्थित होने वाली कथारसिक जनों के हृदय में कुतूहल तत्त्व के अतिरेक से पूर्ण रागात्मिका वृत्ति को पैदा कर देती है ॥ ८ ॥

दीपशिखा के समान सुप्रभ चम्पक की ताजी कलियों की सान्द्र और श्लिष्ट योजना से ग्रथित तथा उत्तम चमेली के फूलों से विभूषित गजरा जैसे सब लोगों को आकृष्ट कर लेता है उसी प्रकार नूतन पदों तथा नव्य अर्थों से सम्पादित, दीपक, उपमा आदि अर्थालंकारों की स्फुट योजना से अलंकृत श्लेष की नैरन्तर्य अवतारणा से प्रौढ एवं मनोहर स्वभावोक्तियों से अगोचर पदार्थों को नयनगोचर सी करने वाली कथायें किसे नहीं आकृष्ट कर लेतीं ?

उपर्युक्त दोनों पद्यों में कथातत्त्व के स्वरूप का निरूपण किया गया है । प्रथम पद्य में अभिनवा वधू तथा द्वितीय पद्य में चम्पा की कलियों से ग्रथित महामाला से कथा को उपमित कर कवि ने काव्य-सौन्दर्य के साथ अनुभूति को तीव्र बनाने का सफल प्रयास किया है । संस्कृत साहित्य में आज से सहस्राधिक वर्षों से पहले ही जिन कथांगों का निरूपण मिलता है उनसे कथा साहित्य की समृद्धि तथा समीक्षा की निर्मल दृष्टि का ज्ञान प्राप्त होता है । यदि उपर्युक्त विवेचनाओं को क्रमबद्ध लिखा जाय तो उनका रूप ऐसा होगा ।

(क) संवादशैली । पात्रों के पारस्परिक कथोपकथन में प्रसंगानुसार फड़फड़ाहट के साथ कोमलता का मंजुल समन्वय । यदि स्फूर्त्ति पर ध्यान अधिक गया तो मर्यादा का भंग होना सम्भावित है; इसी तरह यदि कोमलता का आग्रह हुआ तो सजीवता नष्ट हो जायगी । इसीलिये दोनों गुणों का समुचित सन्निवेश कवि को अभीष्ट है ।

बभूव वात्स्यायनवंशसंभवो द्विजो जगद्गीतगुणोऽग्रणीः सताम्।
अनेकगुप्तार्चितपादपङ्कजः कुबेरनामांश इव स्वयंभुवः॥ १०॥

कीर्त्यनुवृत्त्यर्थं स्ववंश्यानाह—बभूवेति। कुबेरनामा द्विजो ब्राह्मणो बभूवासीत्। कथंभूतः। वात्स्यायन इति। वात्स्यायननामा ऋषिस्तस्यायं वात्स्यायनो वंशोऽन्वयस्तस्मिन्संभवः समुत्पन्नः। वत्सगोत्रीय इत्यर्थः। द्विज इति च द्विजोत्कृष्टत्वसूचनार्थम्। यथा गजमात्रस्य दन्तवत्त्वेऽप्युत्कृष्टदन्ते दन्तीति प्रयोगः। पुनः कीदृशः। जगदिति। जगति विश्वस्मिन्गुद्गीता उच्चप्राबल्येन गानविषयीकृता गुणाः शौर्यादयो यस्य स तथा। पुनः कीदृशाः। सताम् अग्रणीः साधूनामग्रेसरः। किंभूतः। अनेकेति। अनेकेऽसंख्या ये गुप्ता गुप्तनामाङ्किता वैश्यशूद्रादयः। तदुक्तम्—'शर्मान्तं ब्राह्मणस्योक्तं वर्मान्तं क्षत्रियस्य तु। गुप्तदासात्मकं नाम प्रशस्तं वैश्य-शूद्रयोः॥' इति। तैरर्चितं पादपङ्कजं चरणसरोजं यस्य स तथा। पुनः कीदृश इव। स्वयंभुवो ब्रह्मणोंऽशोऽवतार एकदेशरूप इव। अविवैदिकत्वादिति भावः॥ १०॥

(ख) कुतूहल तत्त्व—कथा साहित्य में यदि श्रोता या पाठक को अग्रिम वस्तु के जानने की उत्कण्ठा पूर्णतः न हो सकी तो उसकी योजना में दोष मानना ही होगा। अतः कौतुकतत्त्व को आधिक्येन जगाये रखना आवश्यक माना गया है।

(ग) पदावली के प्रयोग का वैचित्र्य—संस्कृत साहित्य में रस की प्रतिष्ठा सर्वाधिक है, क्योंकि रस प्रक्रिया में औचित्य और लालित्य दोनों का यथोचित सन्निवेश रहता है। कथा साहित्य में भी रसों के निष्पादन पर ध्यान देना आवश्यक है। केवल कुतूहल तत्त्व के परिपोष से औत्सुक्य या रञ्जन को तो जीवन मिल सकेगा, पर हृदय में 'रमण' का स्वारस्य प्राप्त न हो सकेगा। इसलिये रंजन और रमण—दोनों वृत्तियों को समान महत्त्व देने का संकेत कवि कर रहा है। रस की धारा पदविन्यास के आडम्बर में क्षीण न हो जाय इस पर ध्यान रखने के लिये पदशय्या के स्वरूप को ऐसा बनाना चाहिये जिससे रस बिना प्रयास ही प्रवहमाण रहे। अर्थात् रसव्यंजक पदों के उपन्यास से कथा के कलेवर का निर्माण होना चाहिये। इन तत्त्वों के सन्तु-लित प्रयोग से रागात्मिका वृत्ति का परिपोष सुतरां हो जावेगा।

(घ) नूतनपदपदार्थ योजना—नये २ पदों और नये २ पदार्थों की योजना से ही कथा में आकर्षण पैदा किया जा सकता है। घिसे घिसाये पदों और पिटे पिटाये अर्थों के संगुम्फन से कथा में सौन्दर्य का उदय नहीं हो सकता। वर्ण्य के सौन्दर्य को उन्मिषित करने में भव्य स्वभावोक्तियों की योजना पर ध्यान रखना चाहिये। स्वभावोक्ति का भव्य विन्यास चित्रो-पम शैली को जन्म देता है। अतः वर्ण्य वस्तु के ग्रहण में स्वभावोक्ति सर्वाधिक उपयोगी तत्त्व है। इसी प्रकार अर्थों की चारुता के लिए परिस्फुट उपमा, दीपक आदि अलंकारों की योजना आवश्यक है। श्लेष तो कथा का प्राण ही ठहरा। उसका प्रयोग निरन्तर होना चाहिये। श्लेष की प्रतिभा से ही उपमादि अलंकारों का सौन्दर्य निखरता है। अतः श्लेष का स्वातन्त्र्येण एवं इतर अलंकारों के उपस्कारकत्वेन भी प्रचुर प्रयोग अभीष्ट है। इन सभी विषयों को ध्यान में रख कर कवि ने हर्षचरित की भूमिका में—

उवास यस्य श्रुतिशान्तकल्मषे सदा पुरोडाशपवित्रिताधरे।
सरस्वती सोमकषायितोदरे समस्तशास्त्रस्मृतिबन्धुरे मुखे ॥ ११ ॥

उवासेति। यस्य कुबेरद्विजस्य मुख आनने सरस्वती वाग्देव्युवास। वसति स्मेत्यर्थः। किंभूते मुखे। श्रुतीति। श्रुतिभिर्वेदाध्ययनैः शान्तमुपशमितं कल्मषं पापं यस्य तत्तथा। परमपवित्र इत्यर्थः। पुनः कथंभूते। सदेति। सदा सर्वकालं पुरोडाशेनाग्निहोत्रे देवेभ्यो दत्तहविःशेषेण पवित्रितः पावनीकृतोऽधर ओष्ठो यस्य तत्तथा तस्मिन्। पुनः किंविशिष्टे। सोमेति। सोमेन सोमयागे सोमसंज्ञकलतारसेन कषायितं किंचित्कटुकीभूतमुदरं मध्यभागो यस्य तत्तथा तस्मिन्। सोमस्य किंचित्कटुत्वादिति भावः। पुनः कीदृशे। समस्तेति। समस्तानि समग्राणि यानि शास्त्राणि व्यासादिप्रणीतसूत्ररूपाणि स्मृतयश्च मन्वादिप्रणीता धर्मनिबन्धास्तैर्बन्धुरम्। मनोहरमित्यर्थः। तस्मिन् ॥ ११ ॥

'नवोऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषोऽक्लिष्टः स्फुटो रसः।
विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुर्लभम् ॥'

कहा है। विकटाक्षरबन्ध का अभिप्राय है नृत्यत्प्रायपदावली।

इन वर्णनों से कथातत्त्व के उपादान का सम्यक् परिचय प्राप्त हो जाता है ॥ ९ ॥

जिसके गुणों का गीत सारे संसार में गाया जाता था, जो सज्जनों में अग्रगण्य थे, जिसके चरणारविन्द की पूजा अनेक गुप्तवंशीय राजाओं ने की थी तथा जो ब्रह्मा के अंश के समान थे ऐसे वात्स्यायन वंश में उत्पन्न होने वाले कुबेर नामक ब्राह्मण हुये।

अपने वंश के वर्णन में सर्वप्रथम कुबेर का नाम कवि ने लिया है। उनके विशेषणों से ज्ञात होता है कि इनके पूर्वज महान् वैदिक ब्राह्मण थे, अत्यन्त सज्जन थे तथा राजवंश से सम्मानित थे। इससे ज्ञात होता है कि विद्या और वृत्त से इनका कुल अलंकृत था। ब्रह्मा के अंशावतार की चर्चा करने से इनके अद्वितीय वैदिक होने की प्रतीति सम्भावित है ॥ १० ॥

जिसके उस मुख में सरस्वती निवास किया करती थीं जो सदा वेदाभ्यास से निष्पाप था, जिसका अधर निरन्तर अनुष्ठीयमान यज्ञों के पुरोडाश-भक्षण से पवित्र हो चुका था, जिसका अन्तराल सोमरस से कसैला हो चुका था तथा समस्त शास्त्रों के स्मरण से जो मनोहर बन गया था।

उपर्युक्त वर्णन से ज्ञात होता है कि ये अद्वितीय विद्वान् तथा श्रौतयज्ञों के अनुष्ठाता थे। ज्ञान और क्रिया दोनों का समुच्चय दृष्टिगोचर हो रहा है। 'सदा' का अन्वय वेदाभ्यास तथा पुरोडाश भक्षण के साथ देहली दीपक न्यास से होने के कारण उभयत्र सम्बद्ध है ॥ ११ ॥

जगुर्गृहेऽभ्य'स्तसमस्तवाङ्मयैः ससारिकैः पञ्जरवर्तिभिः शुकैः।
निगृह्यमाणा बटवः पदे पदे यजूंषि सामानि च यस्य शङ्किताः॥ १२॥
हिरण्यगर्भो भुवनाण्डकादिव क्षपाकरः क्षीरमहार्णवादिव।
अभूत्सुपर्णो विनतोदरादिव द्विजन्मनामर्थपतिः पतिस्ततः॥ १३॥

जगुरिति। यस्य कुबेरविप्रस्य गृहे बटवः शिष्यभूता ब्रह्मचारिणः शङ्किताः सत्रासाः सन्तो यजूंषि यजुर्वेदान् सामानि सामवेदांश्च जगुः। पठन्ति स्मेत्यर्थः। शङ्कितत्वे बीजमाह— किंभूताः बटवः। निगृह्यमाणा निग्रहो निर्भर्त्सनं तेन त्रास्यमानाः। कस्मिन्। पदे पदे शुद्धपाठकैः शुकैः कीरैः। कथंभूतैस्तैः। ससारिकैः सारिकाभिः सह वर्तमानैः। अनेन सारिकाणामपि विद्यावत्त्वं सूचितम्। पुनः कथंभूतैः पञ्जरवर्तिभिरिति। पंजरो लोहशलाकानिर्मितं पक्षिगृहं तत्र वर्तिभिः। तन्निष्ठैरित्यर्थः। पुनः कीदृशैः। अभ्यस्तेति। अभ्यस्तं जिह्वाग्रवर्ति समस्तं समग्रं चतुर्दशविद्यात्मकं वाङ्मयं येषां ते तथा तैः। समस्तविद्यापारंगतैरित्यर्थः। 'भवद्भिरशुद्धं पठ्यते। वयं गुरुनिकटे कथयित्वा ताडनं कारयिष्यामः।' ईदृशं शुकवचनमाकर्ण्य ते भीताः सन्तः पठन्ति बटवः। यद्गृहे शुकानामप्येतादृशज्ञानमिति तन्महिमोपवर्णनम्॥१२॥

हिरण्येति। ततः कुबेरादर्थपतिनामा पुत्रोऽभूत्। किंभूतः। द्विजन्मनां ब्राह्मणानां पतिः श्रेष्ठः। कः कस्मादिव। यथा भुवनस्याण्डकं ब्रह्माण्डं तस्माद्धिरण्यगर्भः स्वयंभूः। हिरण्यगर्भोपमया वेदपारगत्वं सूचितम्। पुनः कः कस्मादिव। क्षीरमहार्णवाद् दुग्धोदधेः क्षपाकरः शशाङ्कः। क्षीरसमुद्रोत्थचन्द्रोपमया च समस्तजनाह्लादकत्वं सूचितम्। पुनः कः कस्मादिव। विनता पक्षिणी तस्या उदरात्कुक्षेः सुपर्णो गरुड इव। अनेन नारायणपरायणत्वं सूचितम्। गरुडपक्षे द्विजन्मनां पक्षिणाम्। ब्रह्मपक्षे चन्द्रपक्षे च द्विजन्मनां ब्राह्मणानां नक्षत्राणां च पतिरित्यपि योज्यम्॥ १३॥

जिसके घर में सारिकाओं के साथ पिंजड़े में रहने वाले तोते निरन्तर शास्त्रीय चर्चाओं को सुनते २ सम्पूर्ण शास्त्रों को याद कर चुके थे तथा जिनसे उच्चारण में त्रुटि होने पर पद २ पर नियन्त्रित होने वाले ब्रह्मचारी यजुर्वेद और सामवेद का गान सशंक होकर किया करते थे।

तोते और मैनों के पालन का वर्णन इनकी अभिरुचि का ज्ञापक है। ये पक्षी मानवीय भाषा शीघ्र सीख कर अपनी वाणी से सबको चकित कर देते हैं। प्राचीन काल में इनके पालन की प्रथा पूर्णतया थी—यह साहित्य के ग्रन्थों से ज्ञात होता है। शायद इसी पद्य के प्रभाव से शंकरदिग्विजय में मण्डन मिश्र के घर का परिचय देती हुई पनहारिन ने कह दिया था—

'जगद्ध्रुवं स्याद् जगदध्रुवं स्यात् कीरांगना यत्र गिरो गिरन्ति।
द्वारस्थनीडान्तरसंनिरुद्धा जानीहि तन्मण्डनमिश्रधाम'॥ १२॥

भुवनात्मक ब्रह्माण्ड से जैसे ब्रह्मा प्रकट हुए, क्षीर महासागर से जैसे चन्द्रमा उत्पन्न हुये और विनता के गर्भ से जैसे गरुड का प्रादुर्भाव हुआ उसी तरह उस कुबेर से द्विजातियों के पति (पालक) अर्थपति उत्पन्न हुये।

---

१ 'भ्रस्त'

विवृण्वतो यस्य विसारि वाङ्मयं दिने दिने शिष्यगणा नवा नवाः ।
उषःसु लग्ना श्रवणेऽधिकां श्रियं प्रचक्रिरे चन्दनपल्लवा इव ॥ १४ ॥
विधानसंपादितदानशोभितैः स्फुरन्महावीरसनाथमूर्तिभिः ।
मखैरसंख्यैरजयत्सुरालयं सुखेन यो यूपकरैर्गजैरिव ॥ १५ ॥

विवृण्वत इति । नवा नवा नूतनाः । उत्तरोत्तरं बुद्धिशालिन इति यावत् । एतादृशाः शिष्यगणाश्छात्रचया यस्य अर्थपतेर्गुरोरधिकां श्रियं शोभां प्रचक्रिरे वितेनिरे । पुनः किंभूतस्य यस्य । दिने दिन उषःसु प्रातःसमयेषु विसारि विसरणशीलं वाङ्मयं चतुर्दशविद्यात्मकं विवृण्वतः । अध्यापयत इत्यर्थः । किंभूताः शिष्याः । श्रवणे गुरोर्वचनाकर्णने लग्नाः सावधानाः । यद्वा । श्रवणे कर्णे लग्नाः । जगद्विदिता इत्यर्थः । क इव । यथा चन्दनवृक्षस्य मलयजतरोः पल्लवाः किसलयानि नवा नवाः प्रतिदिनमम्लानाः श्रवणे कर्णे लग्नाः सन्तः शोभां कुर्वन्ति । रमण्या इति शेषः ॥ १४ ॥

विधानेति । योऽर्थपतिरसंख्यैरगण्यैर्मखैर्यज्ञैः सुखेनाप्रयासेन सुरालयं स्वर्गमजयत् । आचक्रामेत्यर्थः । किंभूतैर्मखैः । विधानेति । विधानेन विध्युक्तमार्गेण सम्पादितं विहितं यद्दानं ब्राह्मणेभ्यः स्वर्णादिप्रतिपादनं तेन शोभितैः । विशिष्टदक्षिणैरित्यर्थः । पुनः किंभूतैः । स्फुरदिति । स्फुरन्तो ज्वलन्तो ये महावीराः श्रौताग्नयस्तैः सनाथा सहिता मूर्तिः स्वरूपं येषां ते तथा तैः । अग्नित्रयसहितैरित्यर्थः । 'होमग्निस्तु महाज्वालो महावीरः प्रवर्गवत्' इति कोशः । पुनः किंभूतैः । यूपकरैरिति । यूपा यज्ञे पशुबन्धनार्थं स्तम्भविशेषास्त एव करा हस्ता येषां ते तथा तैः । कैरिव गजैरिवेति यज्ञगजयोः शब्दसाम्येनोपमा । किंभूतैर्गजैः । विधानेन मदोद्रेकार्थं गजादीनां दीयमानभक्ष्यविशेषेण । अत एव '···विधानपिण्डस्नेहस्नुतिरनपितबाहुरिभादिराजम्' इति माघे । तेन सम्पादितं निष्पन्नं यद्दानं मदजलं तेन शोभितैः । पुनः पक्षे स्फुरन्तः शूरा ये महावीरा योद्धारस्तैः [सनाथमूर्तिभिः] अधिष्ठितैरित्यर्थः । पुनः पक्षे यूपवद्यज्ञस्तंभवत्करः शुण्डादण्डो येषां ते तथा तैः ॥ १५ ॥

यहाँ ब्रह्मा भी प्रजापति हैं, चन्द्रमा द्विजपति नक्षत्रपति तथा वैनतेय पक्षिपति हैं—इस तरह इन तीनों उपमानों में पतिरूपता रहने से उपमेय अर्थपति का साम्य पूर्णतया प्रतिपाद्य है । मालोपमा अलंकार का विन्यास भव्य है ॥ १३ ॥

जिस प्रकार चन्दन के नये-नये पल्लव ब्राह्ममुहूर्त में श्रवण (कान) में संलग्न होकर उन (श्रवण) की अधिक शोभा बढ़ाते रहे उसी प्रकार दिनानुदिन विस्तृत वाङ्मय की व्याख्या करने वाले गुरुदेव के व्याख्यान सुनने में सबेरे ही संलग्न होने वाले नये-नये शिष्य-गण उनकी (अर्थपति की) अधिक शोभा बढ़ाते रहे ॥ १४ ॥

उस अर्थपति ने विधान पूर्वक दिये गये दान से सुशोभित, देदीप्यमान होमाग्नि से अलंकृत स्वरूप वाले तथा यज्ञस्तम्भ रूपी हाथ वाले असंख्य यज्ञों से स्वर्ग को आसानी से उसी प्रकार जीत लिया था (स्वायत्त कर लिया था) जिस प्रकार कोई राजा समुचित आहार से जनित मदजल से मनोहर, तेजस्वी तथा अत्यन्त बलवान् आकार वाले एवं यज्ञस्तम्भ के समान सूँड़ वाले असंख्य हाथियों से देवलोक को जीत लेते हैं ॥ १५ ॥

स चित्रभानुं तनयं महात्मनां सुतोत्तमानां श्रुतिशास्त्रशालिनाम् ।
अवाप मध्ये स्फटिकोपलोपमं[1] क्रमेण कैलासमिव क्षमाभृताम् ॥ १६ ॥
महात्मनो यस्य सुदूरनिर्गताः कलङ्कमुक्तेन्दुकलामलत्विषः ।
द्विषन्मनः प्राविविशुः कृतान्तरा गुणा नृसिंहस्य नखाङ्कुरा[2] इव ॥ १७ ॥

स इति । सोऽर्थपतिः क्रमेण वंशक्रमेणेत्यर्थः । महात्मनां जितेन्द्रियाणां श्रुतिशास्त्रशालिनां श्रुतिशास्त्राध्यापकानां सुतोत्तमानां पुत्राणां मध्ये चित्रभानुसंज्ञकं पुत्रमवाप । किंभूतम् । स्फटिकेति । स्फटिकोपलः क्षीरतैलस्फटिकास्यामन्यः स्वच्छस्फटिकस्तद्वदुपमा यस्य स तथा तम् । निष्कलङ्कमित्यर्थः । किंभूतानां सुतोत्तमानाम् क्षमाभृतां क्षान्तिमताम् । किंभूतमिव । कैलासमिव । पक्षे क्षमाभृतां भूधराणां मध्ये वरमित्यर्थः । 'क्षितिक्षान्त्योः क्षमा' इत्यमरः । पक्षे स्फटिकाश्मभिर्निर्मितं स्फटिकमयत्वात्कैलासस्येति ॥ १६ ॥

महेति । महात्मनो यस्य चित्रभानोर्गुणाः । अपिशब्दाध्याहारेण पितुः समाना अपि द्विषन्मनः शत्रूणामप्यन्तःकरणं प्राविविशुः प्रवेशं चक्रुः । किं पुनः सज्जनानामिति । किंभूता गुणाः । सुदूरनिर्गताः । दिगन्तं गता इत्यर्थः । पुनः कीदृशाः । कलङ्केति । कलङ्केनाङ्कलक्षणेन मुक्तो वर्जितो य इन्दुश्चन्द्रस्तस्य कला षोडशोंऽशस्तद्वदमला विशदा त्विट् कान्तिर्येषां ते तथा । पुनः कीदृशाः । कृतेति । कृतं निष्पादितमन्तरमवकाशः प्रवेशपद्धतिरिति यावत्, यैस्ते तथा । कस्य क इव । नृसिंहस्य विष्णोर्नखाङ्कुराः पुनर्भवाग्रभागा इव । यथा नृसिंहस्य नखाङ्कुरा द्विषद्धृदयं प्रविष्टास्तथैतेऽपीति भावः ॥ १७ ॥

जिस प्रकार पर्वतों के मध्य में स्फटिक मणिमय कैलास उपलब्ध है उसी प्रकार उस अर्थपति को वेद, शास्त्रों में अभिज्ञ उत्तमोत्तम पुत्रों के मध्य में चित्रभानु नामक पुत्र प्राप्त हुआ ।

अर्थपति के अनेक[3] पुत्र थे । सभी वेदज्ञ एवं शास्त्रों में निष्णात थे । वे सभी सर्वगुण सम्पन्न होने से उत्तम पुत्र कहलाये । उन सभी पुत्रों में अष्टम पुत्र के रूप में महाकवि बाण के पिता चित्रभानु उन्हें प्राप्त हुए । यद्यपि सभी लड़के एक-से-एक बढ़-चढ़ कर थे, पर चित्रभानु उनके बीच में उसी प्रकार उत्कृष्ट थे जैसे विलक्षण पर्वतों के मध्य में रजताद्रि कैलास ॥ १६ ॥

जिस महापुरुष के सुदूर देशों तक फैले हुये निष्कलङ्क चन्द्रमा की कला के समान निर्मल कान्ति वाले गुण शत्रुओं के भी हृदय में जगह बनाकर उस तरह प्रविष्ट हो गये जिस तरह नृसिंह भगवान् के निर्मल चन्द्रकलाके समान वक्र नख हिरण्यकशिपु के हृदय को विदीर्ण कर भीतर प्रविष्ट हो गये थे । पूर्णोपमा ॥ १७ ॥

---

१. 'पलामलं', २. 'नखाङ्कुरा'
३. 'भृगुं, हंसं, शुचिं, कविं, महीदत्तं, धर्मं, जातवेदसं, चित्रभानुं, त्र्यक्षम्, अहिदत्तं. विश्वरूपं चेत्येकादशरुद्रानिव सोमामृतरसशीकरच्छुरितमुखान् पुत्रान्'''सोऽजनयत्'''इत्यादि हर्षचरिते ।

दिशामलीकालकभङ्गतां गतस्त्रयीवधूकर्णतमालपल्लवः ।
चकार यस्याध्वरधूमसंचयो मलीमसः[1] शुक्लतरं निजं यशः ॥ १८ ॥
सरस्वतीपाणिसरोजसंपुटप्रमृष्टहोमश्रमशीकराम्भसः ।
यशोंऽशुशुक्लीकृतसप्तविष्टपात्ततः सुतो बाण इति व्यजायत ॥ १९ ॥

दिशामिति । यस्य चित्रभानोर्मलीमसोऽप्यध्वरधूमसंचयो यज्ञधूमसमूहो निजं स्वकीयं यशः शुक्लतरमतिशयेनोज्ज्वलं चकार विदध इति विशेषोक्तिः । किंविशिष्टोऽध्वरधूमसंचयः । दिशामिति । दिग्वधूनामलीके ललाटदेशेऽलकभङ्गतामलकाश्चूर्णकुन्तलास्तेषां भङ्गो रचनाविशेषस्तस्य भावस्तत्ता तां गतः प्राप्तः । एतेनाजस्रं क्रतुसमूहविधानेन धूमस्य दिगन्तव्यापित्वं सूचितमिति । पुनः किंविशिष्टः । त्रयीति । त्रयी वेदत्रयी सैव वधूस्तस्याः । कर्णे श्रोत्रे तमालपल्लव इव तमालपल्लवः । श्यामत्वसाधर्म्यात्तमालकिसलयेनोपमानम् ॥१८॥

सरस्वतीति । ततश्चित्रभानोर्बाण इति बाणाभिधानः सुतः पुत्रो व्यजायताभवत् । किंविशिष्टात्ततः । सरस्वतीति । सरस्वत्या भारत्याः पाणिसरोजसंपुटेन हस्तकमलयुग्मेन स्वयमेव प्रमृष्टं प्रोञ्छितं होमादिकर्मसम्बन्धि श्रमस्य खेदस्य शीकराम्भः प्रस्वेदजलं यस्य स तथा तस्मात् । पुनः कथंभूतात् । यश इति । यशसः कीर्तेरंशवो दीप्तयस्तैः शुक्लीकृतानि शुभ्रीकृतानि सप्त रवितुरगप्रमितानि विष्टपानि भुवनानि येन स तथा तस्मात् । 'विष्टपं भुवनं जगत्' इत्यमरः ॥ १९ ॥

जिसके यज्ञ का धूमपुंज दिग्वधुओं के ललाट पर बिखरे हुये काले बालों की भंगिमा को प्राप्त हो गये तथा त्रयी रूपी रमणी के कानों में तमाल पल्लव के समान सुशोभित होने लगे—ऐसे वे स्वरूपतः श्यामल भी धूम चित्रभानु के उज्ज्वल यश को और उज्ज्वल बना डाले ।

प्रस्तुत पद्य में काले धूम्र से उज्ज्वल यश को और समुज्ज्वल कहना विरुद्ध है; पर पर्यन्त में यज्ञों के अनुष्ठान से उनका यश और समुज्ज्वल हो गया—इस तात्पर्य से विरोध के परिहृत हो जाने से विरोधाभास अलङ्कार है ॥ १८ ॥

जिसकी होम करने के श्रम से निकली हुई पसीने की बूँदों को सरस्वती अपने कर कमलों से पोंछा करती थीं तथा जिसने अपनी कीर्ति की किरणों से सातों लोकों को शुक्ल बना डाला है उस चित्रभानु से बाण नामक पुत्र पैदा हुआ ।

यज्ञशाला से हवन करके बाहर निकलने पर उनका शरीर पसीने से भींगा रहता था और उसी हालत में सारस्वततत्त्व की दीक्षा देने के लिए विद्यार्थियों के बीच में बैठ जाते थे । पढ़ाते-पढ़ाते ही उनका पसीना सूखता था । इसी तथ्य को कवि ने उपर्युक्त कल्पना से व्यक्त किया है ॥ १९ ॥

---

१. 'मलीयसं'

द्विजेन तेनाक्षतकण्ठकौण्ठ्यया महामनोमोहमलीमसान्धया ।
अलब्धवैदग्ध्यविलासमुग्धया धिया निबद्धेयमतिद्वयी कथा ॥ २० ॥

द्विजेनेति । इदानीं बाणः कथां चिकीर्षुरतितीक्ष्णबुद्धिरप्यहङ्कारं निराकुर्वन्नाह—तेनेति । तेन बाणेन द्विजेनेयं कादम्बरीरूपा कथा धिया बुद्ध्यैव निबद्धा ग्रथिता । पूर्वं बुद्ध्यारूढीकृत्य पश्चाल्लिखितेति भावः । समुद्रसमकादम्बरीकथोपबन्धने धियः सामर्थ्यं ज्ञात्वापि 'मन्दः कवियशःप्रार्थी' इत्यादिवद्धियो मान्द्यमेवारोपयति—अक्षतेति । अक्षतमच्छिन्नं कण्ठे गले कौण्ठ्यं कुण्ठता यस्याः सा तथा तया । कण्ठेऽपि कुण्ठिता किमुत सभायामपीति भावः । पुनः कथंभूतया । महेति । महानुत्कृष्टो यो मनोमोहश्चित्तविकलता तेन मलीमसा मलिना चासावन्धा चेति तया । पुनः कथंभूतया । अलब्धेति । अलब्धोऽप्राप्तो यो वैदग्ध्यविलासश्चातुर्यलीला तेन मुग्धाऽप्रगल्भा तया एतादृश्यपि बुद्ध्या रचिता कथा । अतिद्वयीति विशेषणबलाद्बुद्धेरतितीक्ष्णत्वं फलितम् । द्वयीं बृहत्कथां वासवदत्तां चातिक्रान्तेत्यर्थः ॥ २० ॥

उस बाण नामक द्विज ने बृहत्कथा और वासवदत्ता को मात देने वाली इस कादम्बरी नामक कथा को अपनी उस बुद्धिसे निबद्ध किया जो विद्वज्जनों के वाग्विलास न प्राप्त होने से मुग्ध है, महान् हार्दिक अज्ञान के अन्धकार से जो आवृत है तथा जिसके कण्ठ की कुण्ठा अभी तक मिट नहीं सकी है ॥ २० ॥

प्रस्तुत पद्य में कवि ने विनयपूर्ण वाणी में अपनी बुद्धि को अप्रौढ़ तथा मानसिक विकारों से मलिन कहा है । कथा कहने के लिए जिस साफ गले की आवश्यकता है वह भी पास में नहीं है । इतनी बातों से जहाँ विनय को प्रकट किया है वहीं आगे अतिद्वयी कथा के निर्माण की बात कहकर अपने अद्वितीय कथाकार के रूप को भी व्यञ्जित किया है । इस तरह वैदुष्य के भूषणभूत विनय का साहचर्य एवं प्रौढ़ निर्माण की यथार्थ अभिधा के प्राकट्य से मिश्रित व्यक्तित्व की झाँकी उपस्थित करने में कवि को महती सफलता प्राप्त हुई है ।

महाकवि बाण अपने वंश के वर्णन से स्पष्ट कर रहे हैं कि उनके पूर्वज महान् वैदिक, याज्ञिक तथा अनेकानेक दुर्बोध शास्त्रों के रहस्य-वेत्ता थे । वे अपने घर पर रह कर ही अध्यापन करते थे । उनके वैदुष्य, आचार और अध्यापन कौशल से आकृष्ट होकर नित्य नये-नये विद्यार्थियों का आना जारी रहता था । इस तरह विद्या, आचार और कीर्ति से विमण्डित कुल में उत्पन्न होने के कारण बाण भट्ट में ये सभी गुण रक्त के साथ घुल-मिल गये थे । साथ ही उन्होंने जिस भर्वु या भर्सु नामक गुरु से शिक्षा पाई वे भी राजकुमारों के आचार्य थे । फलतः इनके सहाध्यायी अत्यन्त सम्पन्न, मेधावी और विद्यानुरागी थे । कलाओं का शिक्षण भी शास्त्रों के साथ-साथ चल रहा था । इसीलिए बाण की निर्मिति को ध्यान से देखने पर ज्ञात होता है कि इनके प्रातिभ ज्ञान में शास्त्रों के तत्त्व, कलाओं के नैपुण्य और लोकवृत्तों के रहस्य अनुस्यूत हैं । यही कारण है कि इनकी रचना सभी दृष्टियों से पूर्ण तथा काव्यकला में सर्वातिशायिनी है ।

[कथामुखम्]

आसीदशेषनरपतिशिरःसमभ्यर्चितशासनः पाकशासन इवापरः, चतुरुदधिमालामेखलाया भुवो भर्ता, प्रतापानुरागावनतसमस्तसामन्तचक्रः, चक्रवर्तिलक्षणोपेतः, चक्रधर इव करकमलोपलक्ष्यमाणशङ्खचक्रलाञ्छनः, हर इव जितमन्मथः, गुह इवाप्रतिहतशक्तिः, कमलयोनिरिव विमानीकृतराजहंसमण्डलः, जलधिरिव लक्ष्मी-

---

'प्रसिद्धो वापि वर्ण्यः स्यान्महीपालोऽथवा.................................।।' दशरूपकेऽपि—'प्रख्यातोत्पाद्यमिश्रत्वभेदात्त्रेधापि तत्त्रिधा। प्रख्यातमितिहासादेरुत्पाद्यं कविकल्पितम्। मिश्रं च संकरात्' इत्यादेरुक्तभेदानां काव्यनाटकचम्पूनां मध्ये 'गद्यपद्यमयी चम्पूर्द्विधा श्लेषवती च या। राजवर्णनमादौ स्यान्नगरीवर्णनं ततः। तया चामुकमन्यस्मिन्न तु तन्नृपु कुत्रचित्।।' यथा—'शूलसम्बन्धो देवतायतनेषु न नृपु' इति नलचम्प्वाम्। तथात्रैवाग्रे 'चित्रकर्मसु वर्णसङ्करो न मनुष्येषु' इत्यादि। चम्पूलक्षणयुक्तां कादम्बरीसंज्ञिकां कथामारचयति—आसीदिति। शूद्रको नाम राजासीदिति दूरेणान्वयः। अथ राजानं विशेषयन्नाह—अशेषेति। अशेषाः समग्रा ये नरपतयो राजानस्तेषां शिरांस्युत्तमाङ्गानि तैः समभ्यर्चितं सादरतया गृहीतं शासनमाज्ञा यस्य स तथा। सर्वेषामाज्ञापको न त्वाज्ञाकरः। अत एवापरो भिन्नः पाकशासन इव। इन्द्रसाम्यम्। चतुरिति। चत्वारश्च त उदधयश्च चतुरुदधयस्तेषां माला पङ्क्तिः सैव मेखलावधिर्यस्यास्तादृश्या भुवः पृथिव्या भर्ता नायकः। प्रताप इति। प्रतापः कोशदण्डजं तेजः, अनुरागः स्नेहः ताभ्यामवनतं नम्रीभूतं समस्तं समग्रं सामन्तचक्रं सामन्तमण्डलं स्वदेशपर्यन्तवर्ति राजचक्रं यस्य तथा। अन्यदपि लोहचक्रमग्निप्रतापादवनतं भवतीति ध्वन्यते। चक्रेति। चक्रवर्ती सार्वभौमस्तस्य यानि लक्षणानि सामुद्रिकशास्त्रप्रतिपादितानि तैरुपेतः सहितः। पुनस्तमेव विशेषयन्नाह–चक्रधर इति। करकमले हस्तपद्म उपलक्ष्यमाणं दृश्यमानं शङ्खचक्राकारं च रेखोपरेखास्वरूपं लाञ्छनं चिह्नं यस्य स तथा। क इव। चक्रधर इव विष्णुरिव। सोऽपि शङ्खचक्रायुधलाञ्छितकरः स्यादित्युपमानोपमेयभावः। हर इवेति। जितो निर्जितो मन्मथजनकत्वान्मन्मथानीन्द्रियाणि येन स तथा। क इव। हर इव शंभुरिव। सोऽपि जितमन्मथः स्यादित्युभयोः साम्यम्। गुह इवेति। अप्रतिहताऽकुण्ठिता शक्तिः सामर्थ्यं यस्येति स तथा। क इव। गुह इव कार्तिकेय इव। सोऽप्यप्रतिहतशक्तिः स्यादित्युभयोः साम्यम्। एतत्पक्षे शक्तिरस्त्रविशेषः। अत एव 'षाण्मातुरः शक्तिधरः'

शूद्रक नाम का एक राजा था। जो द्वितीय इन्द्र के समान था, जिसके शासन को सभी राजा लोग शिर झुका कर सम्मान के साथ मानते थे, जो करधनी की लड़ियों के समान चारों समुद्रों से वलयित भूमि का स्वामी था, जिसके प्रताप और प्रेम से सभी सामन्त विनत थे, जो चक्रवर्ती के लक्षणों से युक्त था, जो करकमलों में शंख और चक्र के चिह्नों के उपलक्षित होने से शंखचक्रधारी विष्णु के समान था, जो काम को जीत लेने के कारण शिव के समान था, जो अमोघ शक्ति के कारण कार्तिकेय सा था, जो बड़े २ राजाओं का मान-मर्दन कर देने के कारण राजहंसों को विमान (वाहन) बना लेने वाले ब्रह्मा के समान था, जो लक्ष्मी की जन्म-

प्रसूतिः, गङ्गाप्रवाह इव भगीरथपथप्रवृत्तः, रविरिव प्रतिदिवसोप[1]जायमानोदयः, मेरुरिव सकलोप[2]जीव्यमानपादच्छायः, [3]दिग्गजइवानवरतप्रवृत्तदानार्द्रीकृतकरः, कर्ता महाश्चर्याणाम्, आहर्ता क्रतूनाम्, आदर्शः सर्वशास्त्राणाम्, उत्पत्तिः कलानाम्, कुलभवनं गुणानाम्, आगमः काव्यामृतरसानाम्, उदयशैलो मित्रमण्डलस्य, उत्पात-

इत्यमरः। विगतेति। विगतो मानो दर्पो यस्य तद्विमानं तथा कृतं राजहंसानां श्रेनृष्ठपाणां मण्डलं वृन्दं येन स तथा। क इव। कमलयोनिरिव विधातेव एतत्पक्षे विमानं देवयानं तत्स्वरूपीकृतं राजहंसानां पक्षिविशेषाणां मण्डलं येन स तथा। हंसाधिरूढत्वादिति भावः। 'देवयानं विमानं स्यात्' इत्यमरः। 'राजहंसास्तु ते चञ्चुचरणैरतिलोहितैः' इत्यमरः। जलधीति। लक्ष्मीः संपत्तिः शोभा वा। 'लक्ष्मीश्छाया च शोभायाम्' इति हैमः। तस्याः प्रसूतिरुत्पत्तिस्थानं शोभाया वा। क इव। जलधिरिव समुद्र इव। सोऽपि लक्ष्म्या रमायाः शोभाया वोत्पत्तिस्थानं समुद्रमथनादेव तन्निर्गमात्। तथा च जगद्विभूषितमिति शोभाजनकत्वमिति भावः। गङ्गेति। भगीरथस्य राज्ञः पन्थाः पितृणामुद्धारस्तत्र प्रवृत्तो लग्नः। क इव। गङ्गाप्रवाह इव स्वर्धुनीरय इव। सोऽपि भगीरथपथप्रवृत्तः स्यात्तदनुयायित्वादित्युभयोः साम्यम्। रविरिति। प्रतिदिवसं प्रत्यहम् उपजायमान उत्पद्यमान उदयः संपत्तेरुद्रेको यस्य स तथा। क इव। रविरिव भानुरिव। सोऽपि निरन्तरमुदयाचलाज्जायमानोद्गमः स्यादित्युपमा। मेरुरिति। सकलैः समग्रैरर्थिल्लोकैरुपजीव्यमाना सेव्या पादच्छाया कान्तिर्यस्य स तथा। क इव। मेरुरिव स्वर्णाद्रिरिव। स कथंभूतः। सकलैरर्थाद्देवैः अन्येषां तत्र प्रवेशाभावात्। उपजीव्याः पादाः प्रत्यन्तपर्वतास्तेषां छायाऽऽतपाभावो यस्य स तथा। 'छाया सूर्यप्रिया कान्तिः प्रतिबिम्बमनातपः' इत्यमरः। दिग्गज इति। अनवरतं निरन्तरं प्रवृत्तं कृतं यद्दानं जलसहितं देयद्रव्यं तेनार्द्रीकृतः स्तिमितः करो हस्तो यस्य स तथा। क इव। दिग्गज इव दिङ्नाग इव। एतत्पक्षे निरन्तरप्रवृत्तं प्रचलितं यद्दानं मदः। 'मदो दानं प्रवृत्तिश्च' इति कोशः। तेन स्तिमितः करः शुण्डादण्डो यस्य स तथेत्युपमा। कर्तेति। महाश्चर्याण्यनन्यकृतयुद्धादीनि तेषां कर्त्ता निष्पादकः। आहर्तेति। क्रतूनां यज्ञानामाहर्त्ता कारकः। आदर्श इति सर्वशास्त्राणां समग्रवाङ्मयानामादर्शो मुकुरः। तत्र तेषां प्रतिबिम्बितत्वादिति भावः। उत्पत्तिरिति। कलानामिति द्विसप्ततिप्रमिता याः

भूमि होने के कारण समुद्र के समान था, जो भगीरथ के मार्ग का अनुसरण करने के कारण भगीरथ के रथ के पीछे २ चलने वाले गङ्गा के प्रवाह के समान था, जो दिन-दिन अभ्युदय होने के कारण सूर्य के समान था, जो अपने चरणों की छाया से सभी लोगों को सानन्द रखने के कारण प्रत्यन्त पर्वतों की छाया से देवों को सुखी बनाने वाले सुमेरु पर्वत के समान था, जो निरन्तर दान देने में प्रवृत्त रहने से भींगे हाथों वाला होने के कारण निरन्तर बहते हुए मदजल से भींगे हुये सूँड वाले दिग्गज के समान था, जो बड़े-बड़े आश्चर्यजनक कार्यों का कर्त्ता था, जो यज्ञों का अनुष्ठाता था, जो सभी शास्त्रों का आदर्श था अर्थात् जिसमें सभी शास्त्र प्रतिफलित रहते थे, जो सभी कलाओं का उद्गम-स्थल था,

१ पचीयमानो, २ सकलभुवनो; भुवनतलो, ३ बृहस्पतिरिव सकलशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः,

केतुरहितजनस्य, प्रवर्तयिता गोष्ठीबन्धानाम्, आश्रयो रसिकानाम्, प्रत्यादेशो धनुष्मताम्, धौरेयः साहसिकानाम्, अग्रणीर्विदग्धानाम्, वैनतेय इव विनतानन्दजननः, वैन्य[1] इव चापकोटिसमुत्सारिता[2]रातिकुलाचलो राजा शूद्रको नाम।

नाम्नैव यो निर्भिन्नारातिहृदयो विरचितनारसिंह[3]रूपाडम्बरम्, एकविक्रमा-

---

कलाः शिल्पादिरूपास्तासामुत्पत्तिर्जन्मभूः। गुणानामिति। गुणा गाम्भीर्यादयस्तेषां कुलभवनं परम्परास्थानम्। आगम इति। काव्यामृतेति। काव्यं कविकर्म तत्सम्बन्धिनो येऽमृतरसास्तेषामागम उद्गमरूपः। उदयेति। मित्राणि सुहृदस्तेषां मण्डलं समुदायस्तस्योदयशैलोऽभ्युन्नतेः स्थानम्। पक्षे मित्रमण्डलस्य सूर्यबिम्बस्योदयशैलः उदयाचलः। उत्पातेति। अहितजनस्य। शत्रुलोकस्योत्पातकेतुर्धूमकेतुः। प्रवर्तयितेति। गोष्ठीबन्धानां मधुरकथानां प्रवर्तयिता प्रवर्तकः। आश्रय इति। रसिकानां रसवेत्तॄणामाश्रयः सर्वेषामाज्ञापको आश्रयस्थानम्। प्रत्यादेश इति। धनुष्मतां धनुर्धारिणां प्रत्यादेशो निराकर्ता। 'प्रत्यादेशो निराकृतिः' इति कोशः। सर्वधनुर्धरोत्कृष्ट इत्यर्थः। धौरेय इति। साहसिकानां सत्त्ववतां मध्ये धौरेयो धुर्यः। अग्रणीरिति। विदग्धानां पण्डितानां मध्येऽग्रणीर्मुख्यः। वैनतेय इति। विनतेभ्यः कृतनतिभ्य आनन्दस्य प्रमोदस्य जननः कर्ता। क इव। वैनतेय इव सुपर्ण इव। सोऽपि विनतायाः स्वमातुः प्रमोदकृत्स्यादित्युभयोः साम्यम्। वैन्य इवेति। चापो धनुस्तस्य कोटिरग्रभागस्तेन समुत्सारिता निराकृता अरातय एव शत्रव एव कुलाचलाः कुलपर्वताः क्षेत्रसीमावर्तिपर्वताः येन स तथा। क इव। वैन्य इव पृथुराज इव। एतत्पक्षेऽरातयः कुलाचलाश्चेति द्वन्द्वः। शेषं पूर्ववत्। पृथुना पूर्वं पर्वताकीर्णां धरित्रीं विलोक्य धनुःकोट्या पर्वतानुत्सार्य भूः समीकृतेति पुराणम्।

नाम्नेति। यः शूद्रको वासुदेवं श्रीकृष्णं जहासेव हास्यं चकारेव। कथंभूतः। नाम्नैवाभिधानश्रवणमात्रेणैव निर्भिन्नानि द्वैधीकृतान्यरातीनां शत्रूणां हृदयानि वक्षांसि येन स तथा। कीदृशं वासुदेवम्। विरचितेति। विरचितो विहितो नारसिंहरूपलक्षण एवाडम्बर

जो गुणों का कौलिक भवन था, जो काव्य-पीयूष भूत रसों का आगम था, जो सुहृद्वर्ग स्वरूप मित्र (सूर्य) मण्डल का उदय गिरि था अर्थात् आत्मीय जनों के अभ्युदय का हेतु था, जो शत्रुओं के लिए उत्पात मचानेवाला केतु था, जो विद्वानों, कवियों, कलाकारों आदि की गोष्ठी का आयोजक था, जो रसिकजनों का अवलम्ब था, जो धनुर्धारियों का प्रतिभट था, जो साहसी लोगों में अग्रगण्य था, जो पण्डितों का नेता था, जो विनत जनों को आनन्द देने के कारण अपनी माता विनता को आनन्द देनेवाले वैनतेय (गरुड) के समान था और जो अपने धनुष के कोर से समस्त प्रबल और पर्वताकार शत्रुओं को उखाड़ फेंकने के कारण अपने धनुष की कोटि से सभी कुलाचलों को हटाकर भूमि को समतल बनानेवाले पृथु के समान था।

जो अपने नाम से ही शत्रुओं के हृदय को विदीर्ण कर देने के कारण शत्रु (हिरण्यकशिपु) के हृदय को विदीर्ण करने के लिए नरसिंह का रूप धारण करने वाले विष्णु का तथा

---

१ पृथुः, २ सकलाराति, ३ नरसिंह.

क्रान्तसकलभुवनतलो विक्रमत्रयायासितभुवनत्रयं च जहासेव वासुदेवम्। अतिचिर-काललग्नमतिक्रान्तकुनृपतिसहस्रसम्पर्ककलङ्कमिव क्षालयन्ती यस्य विमले कृपाण-धाराजले चिरमुवास राजलक्ष्मीः। यश्च मनसि धर्मेण, कोपे यमेन, प्रसादे धनदेन, प्रतापे वह्निना, भुजे भुवा, दृशि श्रिया, वाचि सरस्वत्या, मुखे शशिना, बले मरुता,

---

आटोपो येन स तथा तम्। एकेति। एकेनाद्वितीयेन विक्रमेण पराक्रमेणाक्रान्तं व्याप्तं सकलं समग्रं भुवनतलं विष्टपतलं येन स तथा। कथंभूतं वासुदेवम्। विक्रमेति। विक्रमः पादविक्षेप-स्तस्य त्रयं त्रितयं तेनायासितं संप्राप्तखेदम्। 'आसितम्' इति पाठ आसितं स्थितम्। अत्रायं भावः—अस्य राज्ञो नामश्रवणादेव वक्षोविदारणं भवति। वासुदेवेन तु शत्रुवक्षोविदारणे नृसिंहावताराडम्बरं कृतम्। राज्ञा चैकेनैव विक्रमेण पराक्रमेण सर्वं जगदाक्रान्तम्। वासुदेवेन तु भुवनाक्रमणाय विक्रमत्रयं कृतमिति हास्ये हेतुः। अतीति। यस्य कृपाणधाराजले खड्ग-धारारूपे जले चिरं बहुकालं यावल्लक्ष्मीः पद्मोवास वसतिं चक्रे। खड्गबलाल्लक्ष्मीः स्ववशीकृतेति भावः। किं कुर्वतीव। क्षालयन्तीव प्रमार्जयन्तीव। कम्। अतीति। अतिचिर-कालो भूयानतीतः समयस्तेन लग्नं जातम्। पुनः कीदृशम्। अतीति। अतिक्रान्ता व्यतीता ये कुनृपतयः कदर्यनरपतयस्तेषां सहस्रं तेन संपर्कः सम्बन्धस्तेन यः कलङ्कोऽभिज्ञानम्। अन्योऽपि पङ्कादिकं जलादिना क्षालयतीति ध्वनिः। यश्चेति। यः शूद्रको भगवतो नारायणस्या-नुकरोति। 'कृञः प्रतियत्ने' इत्यनेन कृञः कर्मणि षष्ठी। भगवन्तं नारायणं सर्वदेवमयत्वेन विश्वात्मकतया चानुकरोति। तत्तुल्यतां भजतीत्यर्थः। तदेव दर्शयति—मनसि धर्मेणेत्यादि। अत्र वसतेति वसतापदस्य सर्वत्रान्वयो यथालिङ्गम्। मनसि स्वान्ते धर्मेण वृषेण वसता वासं कुर्वता। सदैव धर्मचिन्तनात्। कोपे क्रोधे यमेन कृतान्तेन। तत्कालमेव सापराधानां प्राण-हरणात्। तथा प्रसादे प्रसन्नतायां धनदेन श्रीदेन। सेवाकृत्समीहिताधिकप्रदानात्। प्रतापे पूर्वोक्तलक्षणे वह्निनाग्निना। समग्रशत्रुदाहकत्वात्। भुजे बाहौ भुवा पृथिव्या। राज्यभार-क्षमत्वात्। दृशि चक्षुषि श्रिया लक्ष्म्या। सप्रीतिनिरीक्षणमात्रेणैव तत्सम्भवात्। वाचि वचने सरस्वत्या भारत्या। अनवरतगद्यपद्याद्यनेकप्रबन्धविधानात्। मुखे वदने शशिना चन्द्रेण। तदनुकारित्वाज्जनाह्लादकत्वाच्च। बले सामर्थ्ये मरुता वायुना। अतिबलत्वात्। तथा प्रज्ञायां

एकमात्र विक्रम से समस्त भुवनतल को आक्रान्त कर लेने के कारण तीनों भुवनों को वामनावतार धारण कर तीन डगों में नापने वाले वासुदेव का उपहास-सा करता था।

बहुत लम्बे अरसे से हजारों दुष्ट राजाओं के सम्पर्क से लगे हुये कलंक को धोती हुई ही मानो राजलक्ष्मी जिसके निर्मल खड्ग की धार रूपी जलधारा में चिरकाल तक निवास करती रही।

जिसके मन में धर्म का आवास था, क्रोध में यमराज का निवास था, प्रसन्नता में कुबेर का वास था, प्रताप में अग्नि-देवता की सत्ता थी, भुजपर भूमि का वास था, नयन में लक्ष्मी वसती थी, वाणी में वीणापाणि सरस्वती विराजती थी, मुख में चन्द्रमा का निवास था, बल में

प्रज्ञायां सुरगुरुणा, रूपे मनसिजेन, तेजसि सवित्रा च वसता सर्वदेवमयस्य प्रकटित-विश्वरूपाकृतेरनुकरोति भगवतो नारायणस्य।

यस्य च मदकलकरिकुम्भपीठपाटनं विदधतो[1] लग्नस्थूलमुक्ताफलेन दृढ[2] मुष्टिनिष्पीड[3]नान्निष्ठ्यूतधाराजल[4]बिन्दुदन्तुरेणेव कृपाणेनाकृष्यमाणा, सुभटोरःकपाटविघटित[5]-कवचसहस्रान्धकारमध्यवर्तिनी करिकरट[6]गलितमदजलासारदुर्दिनास्वभिसारिकेव समर-

प्रतिभायां सुरगुरुणा बृहस्पतिना। निःप्रतिमप्रतिभावत्त्वात्। एवंरूपे सौन्दर्ये मनसिजेन कामेन। मानिनीमानहरणात्। तेजसि प्रतापलक्षणे सवित्रा सूर्येण। शत्रूणां दुर्निरीक्ष्यत्वात्। किंविशिष्टस्य नारायणस्य। सर्वेति। सर्वे च ते देवाश्च सर्वदेवास्तत्स्वरूपः सर्वदेवमयः। अत्र 'प्राचुर्यविकारप्राधान्यादिषु' इति सूत्र आदिशब्दात्स्वरूपार्थेऽपि मयड्ग्रहस्तस्य। प्रकटितेति। प्रकटिता प्रकाशिता विश्वरूपा त्रिजगत्स्वरूपाकृतिराकारो येन स तथा तस्य। अनेन राज्ञस्तत्साम्यं सूचितं भवतीति भावः। यस्य चेति। यस्य राज्ञः समरनिशासु संग्रामरात्रिषु राजलक्ष्मी-र्वैरिनृपश्रीरभिसारिकेव ध्वान्ते दत्तसंकेतेव समीपं संनिधिमगादागतवती। सकृदित्येकवारम्। पुनर्न गतेति भावः। यस्य किं कुर्वतः। विदधत आचरतः। किम् मदेति। मदेन दानवारिणा कलं मनोज्ञं यत्करिकुम्भपीठं हस्तिशिरः पिण्डफलकं तस्य पाटनं विदारणम्। अर्थाद्वैरिणा-मित्यर्थः। पुना राजलक्ष्मीं विशेषयन्नाह—आकृष्येति। आकृष्यमाणा समन्तादगृह्यमाणा। केन। कृपाणेन खड्गेन। इतः खड्गं विशिनष्टि—लग्नेति। लग्नानि सम्बद्धानि स्थूलानि स्थविष्ठानि गजसम्बन्धीनि मुक्ताफलानि रसोद्भवानि यस्य स तथा तेन दृढेति। दृढमुष्ट्या यन्निपीडनम्। अत्र दार्ढ्यमात्रविवक्षया न पुंवद्भावनिषेधः। तस्मान्निष्ठ्यूतं निर्गतं धारेव जलमिति रूपकं तस्य ये बिन्दवः पृषताः तैरेव दन्तुरेणोदग्रदशनेनेत्युपमा। 'उदग्रदो दन्तुरः स्यात्' इति कोशः। सुभटोर इति। परस्य ये सुभटा योद्धारस्तेषामुरांस्येव कपाटानि, तेभ्यो विघटितानि विभिन्नानि यानि कवचानि तनुत्राणि तेषां यत्सहस्रं तदेव नैल्यसादृश्यादन्धकारस्त-मिस्रं तन्मध्यवर्तिनी तदन्तःपातिनी। अथ समरनिशां विशेषयन्नाह—करीति। करिणां

मरुत् देवता का आवास था, प्रज्ञा में बृहस्पति निवास करते थे, रूप में कामदेव का आयतन था और तेज में सविता देवता निवास करते थे—इस तरह सर्वदेवमय विश्वरूप के आकार को प्रकट करने वाले भगवान् नारायण का जो अनुकरण करता था।

मदमत्त मतङ्गजों के कुम्भस्थल को फाड़ते समय जिसके कृपाण में बड़े-बड़े मोती संलग्न हो जाते तथा कृपाण की मूँठ को दृढ़ता से दबाने के कारण बहते हुए पसीने की धारा के जल-कणों से दन्तुरित अर्थात् विषम बने से कृपाण से आकृष्ट की जाती हुई, प्रशंसनीय वीरों के वक्षःस्थल रूपी कपाट से खुले हुये सहस्रों कवचों के अन्धकार में रहनेवाली एवं मत वाले हाथियों के कपोल तट से बहते हुये मदजल की मूसलाधार वर्षा के कारण दुर्दिन सी बनी हुई समर निशाओं में राजलक्ष्मी मानो अभिसारिका बनकर जिसके पास बार-बार आती रही और

१. आचरता, २. दृष्ट, ३. निःपीडन, ४. जलदन्तुरेण, ५. बटित, ६. करटतट; करतट,

निशासु समीपं सकृद्[1]गाद्राज[2]लक्ष्मीः। यस्य च हृदि[3]स्थितानपि भर्तॄ[4]न्दिधक्षु[5]रिव प्रतापानलो वियोगिनीनामपि रिपुसुन्दरीणामन्तर्जनितदाघो[6] दिवानिशं जज्वाल।

यस्मिंश्च राजनि जितजगति पालयति[7] महीं चित्रकर्मसु वर्णसंकराः, रतेषु केशग्रहाः, काव्येषु दृढबन्धाः, शास्त्रेषु चिन्ता[8], स्वप्नेषु विप्रलम्भाः, छत्रेषु कनकदण्डाः,

---

गजानां करटानि कपोलानि तेभ्यो गलितं च्युतं यन्मदजलं दानवारि तस्यासारो वेगवान्वर्षस्तेन दुर्दिनं मेघजं तमो यासु तास्तथा तासु। यस्य चेति। यस्य पूर्वोक्तस्य राज्ञः प्रतापः कोशदण्डजं तेजस्तदेवानलो वह्निर्दिवानिशमहोरात्रं जज्वाल प्रदीप्तो बभूव। किं कर्तुमिच्छुरिव। भर्तॄन् दिधक्षुरिव दग्धुमिच्छुरिव। किंविशिष्टान्भर्तॄन्। हृदिस्थितानपि हृदयवर्तिनोऽपीत्यनेन दाहायोग्यत्वं सूचितम्। अथ पूर्वोक्तं प्रतापानलं विशिनष्टि—अन्तरिति। अन्तर्मध्ये जनित उत्पादितो दाघो दग्धिर्येन स तथा। तासाम्। रिपुसुन्दरीणां शत्रुवनितानाम्। कीदृशीनाम्। वियोगिनीनामपि वियुक्तानामपि पूर्वमेव भर्तृव्यापादनात्। एतेन हृदयान्तर्गतं शत्रुगणं यत्प्रतापो न सहत इति तत्प्रतापाधिक्यवर्णनेन राज्ञ आधिक्यवर्णनम्। पुनस्तदाधिक्यं वर्णयन्नाह—यस्मिंश्चेति। यस्मिन्राजनि जितजगति निर्जितविष्टपे महीं पृथ्वीं पालयति शासति सत्येतानि वस्तून्येतेषु स्थलेष्वासन्बभूवुः। न प्रजानामित्यन्वयः। तान्येवाह—चित्रेत्यादि। चित्रकर्मस्वालेख्यक्रियासु वर्णा रक्तपीतादयस्तेषां संकराः परस्परसंबन्धाः चित्रकर्मणि सुवर्णसंकरा इति वा। सुवर्णमिश्रालेख्यानीत्यर्थः। द्वितीयपक्षे वर्णा ब्राह्मणादयस्तेषां संकराः। अन्यतोऽन्योत्पत्तिरित्यर्थः। रतेष्विति। रतेषु मैथुनेषु केशग्रहाः। नान्यत्र कलहेषु। तदभावात्। काव्येष्विति। काव्येषु कविकर्मसु दृढबन्धाः। कठिनबन्धाः। नान्यत्र। अपराधाभावात्। शास्त्रेष्विति। शास्त्रेषु सिद्धान्तेषु चिन्ता चिन्तनम्। नान्यत्र। समग्रवस्तुनः सद्भावात्। स्वप्नेष्विति। स्वप्नदशायां विप्रलम्भा वियोगाः। नान्यत्र। पुरुषायुषजीवित्वा-

---

जिसका प्रतापानल मारे गये शत्रुओं की विधवा पत्नियों के हृदय में स्मृति रूप से भी विराजमान रहने वाले पतियों को जला डालने की इच्छा से ही मानो अन्तःकरण में दाह उत्पन्न कर दिन रात जलता रहता था।

एवं विश्वविजयी जिस राजा के भू-मण्डल के परिपालन में प्रवृत्त होनेपर केवल चित्र निर्माण में वर्णों (रंगों) में सांकर्य (मिश्रण) होता था, कामुकतावश ब्राह्मणादि वर्णों में संकीर्णता नहीं होती थी, केवल सुरत (रतिलीला) में केशों का ग्रहण होता था पारस्परिक कलहों के प्रसंग में नहीं, काव्यों में ही दीर्घसमासादि से दृढ़बन्ध की व्यवस्था होती थी अपराध न करने के कारण किसी के कारागार में दृढ़ता से बन्ध की बात नहीं आती थी, शास्त्रों के विषय में ही लोग चिन्ता करते थे जीवन-यापन के लिए नहीं, स्वप्न में ही वियोग होता था, धर्म-प्रधान शासन होने से किसी को असामयिक वियोग का कष्ट नहीं होता था, छातों में ही सोने के दण्ड की व्यवस्था थी अपराध न करने के कारण किसी को अर्थदण्ड नहीं

---

१. असकृत्, २. आजगाम, ३. हृदय, ४. पतीन्, ५. धक्षु, ६. दाहो, ७. परिपालयति, ८. चिन्ताः।

ध्वजेषु प्रकम्पाः, गीतेषु रागविलसितानि, करिषु मदविकाराः, चापेषु गुणच्छेदाः, गवाक्षेषु जालमार्गाः, शशिकृपाणकवचेषु कलङ्काः, रतिकलहेषु दूतप्रेषणानि[1], सार्यक्षेषु शून्यगृहा; न[2] प्रजानामासन्। यस्य च परलोकाद्भयम्, अन्तः[3]पुरिका[4]कुन्तलेषु भङ्गः,

ज्जनस्येति भावः। छत्रेष्विति। छत्रेष्वातपत्रेषु कनकदण्डाः सुवर्णयष्टयः। नान्यत्र। कनकदण्डाः दण्डेन सुवर्णग्रहणम्। स्वस्वमार्गानतिक्रमेण तासां प्रवर्तनात्। ध्वजेष्विति। ध्वजेषु पताकासु प्रकम्पाः प्रकर्षेण वेल्लनम्। नान्यत्र। भीतेरभावात्। गीतेष्विति। गीतेषु गानेषु रागा वसन्तादयः। शास्त्रीयाः देशीया धनाश्रीप्रभृतयस्तेषां विलसितानि चेष्टितानि। नान्यत्र रागाः क्रोधादयस्तेषां विलसितानि हननादिरूपाणि। तादृग्रागद्वेषाभावात्। करिष्विति। करिषु हस्तिषु मदो दानं तस्य विकारा विकृतयः। नान्यत्र मदोऽहंकारस्तस्य विकारास्तत्तद्चेष्टितानि। मदो रागस्तस्य विकारा इति वा। सर्वदा गुरुवचनामृतास्वादमेदुरितमानसत्वात्। चापेष्विति। चापेषु धनुःषु गुणस्य ज्यारूपस्य छेदः त्रुटनम्। नान्यत्र गुणस्य शौर्यादेर्विच्छेदः। सर्वदा सदाचारित्वात्। गवाक्षेष्विति। गवाक्षेषु वातायनेषु जालमार्गा वातागमनहेतवो जालिकाः। नान्यत्र कुवेणीस्थापनपन्थानः। सर्वदाऽभयदानप्रवृत्तत्वात्। शशीति। शशी चन्द्रः, कृपाणं खड्गम्, कवचः संनाहः, एतेषां द्वन्द्वः। एषु कलङ्काश्चिह्नानि। नान्यत्र कुलमालिन्यादिहेतवो व्यभिचारादिदोषाः। रतिकलहेष्विति। रतिकलहेषु कामकेलिषु विग्रहेषु दूतप्रेषणानि संचारकगमनानि नान्यत्र। सर्वदा प्रबलविरोधिनोऽभावात्। सार्यक्षेष्विति। सारयः खेलिन्यः, अक्षाः पाशकाः, तेषु शून्यगृहाः शून्यस्थानानि। नान्यत्रोद्वसवगृहाणि। राजदेयद्रव्यजनितपीडाभावात्। यस्य चेति। यस्य राज्ञः। अभूदिति क्रिययान्वितम्। कर्मीभूतमाह—भयमिति। परलोकादेव जन्मान्तरादेव तत्। न तु शत्रुलोकात्। तथा यस्य राज्ञः। अन्तःपुरे भवा आन्तःपुरिकाः। भवार्थे ठक्। तासां नायिकानां कुन्तलेषु

मिलता था, पताकाओं में ही कम्पन होता था जनता में भयादि के कारण कम्प की बात नहीं थी, गीतों में ही रागों (वसन्तादि) के विलास होते थे लोक में रागवश मर्यादाभंग करने के लिए कोई विलास नहीं करता था, हाथियों में ही मद के विकार दिखाई देते थे लोगों में अहङ्कार का विकार लक्षित नहीं होता था, धनुषों में ही गुणों (डोरियों) के टूटने की घटना होती थी प्रजाओं में दया, दाक्षिण्य आदि गुणों के भंग होने की बात नहीं होती थी, खिड़कियों में ही जाल (रन्ध्र) के रास्ते बनाये जाते थे लोक में जाल-फरेब का नाम तक नहीं था, चन्द्रमा, कृपाण और कवच में ही कलङ्क दीखता था सदाचारी होने के कारण प्रजाओं में नहीं, प्रणय-कलहों में ही दूतों के प्रेषण की आवश्यकता आती थी, सन्धि-विग्रह आदि के लिए दूतों के भेजने की जरूरत नहीं रह गई थी, जूआ के खेल में ही सूने घर दिखाई देते थे कभी किसी प्रजा का समृद्धि आदि से घर सूना नहीं होता था। एवं जिसे परलोक से ही भय होता था किसी व्यक्ति से नहीं, जिसके शासन में टेढ़ापन केवल अन्तःपुर की रमणियों के बालों

१. संप्रेषणानि, २. प्रजानां, ३. यस्यान्तःपुरिका, ४. अलकेषु,

नूपुरेषु मुखरता, विवाहेषु करग्रहणम्[1], अनवरत[2]मखाग्निधूमेनाश्रुपातः, तुरङ्गेषु[3] कशाभिघातः, मकरध्वजे चापध्वनिरभूत्।

तस्य च राज्ञः कलिकालभयपुञ्जीभूतकृतयुगानुकारिणी,[4] त्रिभुवनप्रसवभूमिरिव विस्तीर्णा, मज्जन्मालवविलासिनीकुचतटास्फालनजर्जरितोर्मिमालया जलाव-

---

केशेषु भङ्गो वक्रता। नान्यत्र तथा नूपुरेषु हंसकेषु मुखरतानुरणनरूपा। न तु प्रजासु मौखर्यं वाचालत्वम्। विवाहेष्विति। विवाहेषूपयामेषु करग्रहणं हस्तग्रहणम्। न तु प्रजासु करो राजदेयद्रव्यं तद्ग्रहः। अनवरतेति। अनवरतं निरन्तरं मखाग्निधूमेन यज्ञाग्निधूमेनाश्रुपातो नेत्रजलच्युतिः। न तु शोकादिना। तुरङ्गेति। तुरङ्गेष्वश्वेषु कशा चर्मदण्डस्तस्याभिघातः प्रहारः। नान्यत्र। मकर इति। मकरध्वजे कंदर्पे चापस्य धनुषो ध्वनिः। अन्यत्र न भयाभावात्तदारोपणमिति भावः।

तस्येति। तस्य च राज्ञो राजधान्यासीदित्यन्वयः। तां विशेषयन्नाह—कलीति। कलिकालाद्यद्भयं त्रासस्तस्मात्पुञ्जीभूतं समुदायीभूतं यत्कृतयुगं सत्ययुगं तदनुकरोतीत्येवंशीला या सा। विस्तीर्णेति। विस्तीर्णा विपुला। केव। त्रिभुवनेति। त्रयाणां भुवनानां समाहारस्त्रिभुवनं तस्य प्रसवभूमिरुत्पत्तिस्थलं धरित्री तद्वदिव। परीति। परिगता संगता। कया। वेत्रवत्या नद्या। अथ नदीं विशिनष्टि—मज्जन्निति। मज्जन्त्यः स्नान्त्यो या मालवविलासिन्योऽवन्तिकामिन्यस्तासां यानि कुचतटानि पयोधरस्थलानि तेषामास्फालनेनाघातेन जर्जरिताः क्षीणा ऊर्मिमालाः कल्लोलपङ्क्तयो यस्याः सा तथा तया। अत्र कुचानामतिकाठिन्यं व्यङ्ग्यम्। जलेति। जलं पानीयं तस्यावगाहनमवलोडनं तदर्थमागताः समायाता जयकुञ्जराः परदलदलनसमर्था हस्तिनस्तेषां कुम्भाः शिरःपिण्डाः तेषु शोभाकृद्यत्सिन्दूरं नागजं तेन संध्यायमानं

में था अन्यत्र नहीं, नूपुरों में ही वाचालता थी अन्यत्र नहीं, विवाह में ही कर-ग्रहण होता था अतिरिक्त कर (टैक्स) ग्रहण नहीं होता था, सतत होने वाले यज्ञों के धूम लगने से ही अश्रुपात होता था किसी विपत्ति से नहीं, घोड़ों पर ही कोड़ों का आघात होता था दुष्टों पर नहीं (क्योंकि कोई दुष्ट था ही नहीं), कामदेव में ही धनुष के टंकार की बात थी युद्धाभाव के कारण अन्यत्र नहीं।

उपर्युक्त गद्य खण्ड में परिसंख्या अलंकार का भव्य विन्यास है।

उस राजा शूद्रक की राजधानी विदिशा नगरी थी। जहाँ के निवासी ऐसे धार्मिक लगते थे मानो कलिकाल के भय से सत्ययुग ही पुंजीभूत बनकर यहीं रह रहा हो। जो आकार से इतनी विशाल थी कि मालूम होता था त्रिभुवन की जन्म भूमि यही है। यह विदिशा वेत्रवती (बेतवा) नदी से घिरी है। जहाँ स्नान करने वाली मालव देश की सुन्दरियों के स्तनतटों की टकराहट से बेतवा की तरंगावलियाँ बिखर जाती थीं, जिसके जल में अवगाहन (स्नान)

---

१. करपीडनम्, २. अनवरतप्रवृत्त, ३. तुरगेषु, ४. अनुसारिणी,

गाहनागत[1]जयकुञ्जरकुम्भसिन्दूरसंध्यायमानसलिलयोन्मदकलहंसकुलकोलाहलमुखरी[2]-कृतकूलया वेत्रवत्या[3]परिगता विदिशा[4]भिधाना नगरी राजधान्यासीत्।

स तस्या[5]मवजिताशेषभुवनमण्डलतया विगतराज्यचिन्ताभारनिर्वृतः, द्वीपान्तरागतानेकभूमिपालमौलिमालालालितचरणयुगलो वलयमिव लीलया भुजेन भुवनभारमुद्वहन्, अमरगुरुमपि प्रज्ञयोपहसद्भिरनेककुलक्रमागतैरसकृदालोचितनीतिशास्त्र-

सन्ध्यावदारक्तं सलिलं जलं यस्याः सा तथा तया। उन्मदेति। उन्मदानां प्रबलमदानां कलहंसानां कादम्बानां यानि कुलानि तेषां यः कोलाहलोऽनभिव्यक्तध्वनिस्तेन मुखरीकृतं प्रतिध्वनियुक्तं कूलं सैकतं यस्याः सा तथा तया। अत्र विस्तृतकमलस्वच्छपानीयादि व्यङ्ग्यम्। किमभिधाना राजधानीत्याशयेनाह—विदिशेति। विदिशेत्यभिधानं यस्याः सा तथा।

स तस्यामिति। तस्यां नगर्यां स राजातिचिरं बहुकालं प्रथम आद्ये वयस्यवस्थायां सुखं सातं यथा स्यात्तथोवास वासं चक्र इत्यन्वयः। अथ राजानं विशेषयन्नाह—विगतेति। विगतो दूरीभूतो यो राज्यचिन्ताभारस्तेन निर्वृतो निष्पन्नप्रयोजनः। तत्र हेतुमाह—अवजितेति। अवजितानि स्वायत्तीकृतान्यशेषाणि समग्राणि भुवनमण्डलानि येन तस्य भावस्तत्ता तया। द्वीपेति। एकस्माद्द्वीपादन्ये द्वीपा द्वीपान्तराणि तेभ्य आगताः समायाता येऽनेके बहवो भूमिपाला राजानस्तेषां मौलयः किरीटानि शिरांसि वा तेषां मालाः स्रजः पङ्क्तयो वा ताभिर्लालितं क्रीडितं चरणयुगलं पादयुग्मं यस्य स तथा। किं कुर्वन्। उद्वहन्नुत्पाटयन् (?) किम्। भुवनभारं जगद्धीवधम्। केन। भुजेन बाहुना। किमिव। वलयमिव। बाहुभूषणमिव। कया। लीलया क्रीडया। स्वल्पप्रयासेनेत्यर्थः। किंविशिष्टः सः। परीति। परिवृतः परिवेष्टितः। कैः। अमात्यैर्मन्त्रिभिः। 'अमात्यः सचिवो मन्त्री धीसखः' इति कोशः। किं कुर्वद्भिस्तैर्मन्त्रिभिः। उपहसद्भिरुपहासं कुर्वद्भिः। कम्। अमरगुरुमपि बृहस्पतिमपि कया। प्रज्ञया बुद्ध्या। अथ मन्त्रिणो विशिनष्टि—अनेकेति। अनेके च ते कुलक्रमागताश्चानेककुलक्रमागताः। कुलपारम्पर्यागतैर्न त्वाधुनिकैरित्यर्थः। असकृदिति। असकृन्निरन्तरमालोचितं निदिध्या-

करने के लिए उतरे हुए विजयी हाथियों के मस्तक पर लगे सिन्दूर के धुल जाने से जल सन्ध्या के समान अरुणिम हो जाता था एवं जिसका तट मद से मस्त कलहंसों के कोलाहल से मुखर होता रहता था।

वह राजा (शूद्रक) उस राजधानी में समस्त देशों को जीत लेने के कारण राज्य की चिन्ता के बोझ से मुक्त होकर सानन्द चिरकाल तक निवास कर रहा था। उसके दोनों चरणों को दूसरे-दूसरे द्वीपों से समागत भूपाल लोग अपने किरीटों से सहलाते रहते थे। कंगन की तरह बिना आयास के ही वह भुवनों के संरक्षण का भार भुजाओं से ढोह रहा था। अपनी प्रौढ़ प्रज्ञा से वाचस्पति का उपहास करने वाले, वंश-परम्परा से मन्त्रित्व का दायित्व सँभालने वाले, सतत नीतिविद्या का आलोचन करते रहने से निर्मल हृदय वाले, लोभशून्य, स्निग्ध तथा

१. अवतारित, २. मुखरित, ३. वेत्रवत्या सत्या वेत्रवत्या सरिता, ४. महिला, ५. च विजिता,

निर्मलमनोभिरलुब्धैः स्निग्धैः प्रबुद्धैश्चामात्यैः परिवृतः, समानवयोविद्यालङ्कारैरनेक-मूर्धाभिषिक्तपार्थिवकुलोद्गतै[1]रखिलकलाकलापालोचनकठोरमतिभिरतिप्रगल्भैः काल-विद्भिः प्रभावा[2]नुरक्तहृदयैरग्राम्योपहास[3]कुशलैरिङ्गिताकारवेदिभिः काव्यनाटकाख्यान-काख्या[4]यिकालेख्यव्याख्यानादिक्रियानिपुणैरतिकठिनपीवरस्कन्धोरुबाहुभिरसकृदव - दलितसमदरिपुगजघटापीठबन्धैः केसरिकिसोरकैरिव विक्रमैकरसैरपि विनयव्यवहारि-

सितं यन्नीतिशास्त्रं नृपोचिताचारबोधको ग्रन्थस्तेन निर्मलानि स्वच्छानि मनांसि येषां ते तथा तैः। अलुब्धैरिति। अलुब्धैः। अलोलुपैः स्निग्धैर्वत्सलैः। 'स्निग्धस्तु वत्सलः' इति कोशः। प्रबुद्धैः पण्डितैः! पुनः किं कुर्वाणो नृपतिः। राजपुत्रैर्नृपतनयैः सह रममाणः क्रीडां कुर्वाणः। इतो राजपुत्रान्विशेषयन्नाह—आत्मन इति। आत्मनः स्वकीयस्य प्रतिबिम्बैरिव। प्रतिच्छायैरिव। सर्वदा तदनुयायित्वात्। समानैरिति। समानाः सदृशाः वयोवस्थाविशेषाः विद्याश्चतुर्दश प्रतीताः। अलंकारा विभूषणानि येषां ते तथा तैः। अनेकेति। अनेके सहस्रशो ये मूर्धाभिषिक्ताः कृताभिषेका पार्थिवा राजानस्तेषां कुलानि वंशास्तेभ्य उद्गतैः प्रभवैः। अखिलेति। अखिलाः समग्रा याः कला विज्ञानानि तासां कलापाः समुदायास्तेषां यदालोचनं विमर्शनं तेन कठोरा शास्त्रे दृढा मतिर्बुद्धिर्येषां ते तथा तैः। एतेन मन्त्रदार्ढ्यं सूचितम्। अतीति। अतिप्रगल्भैः प्रतिभान्वितैः। 'प्रगल्भः प्रति-भान्विते' इति कोशः। कालेति। कालविद्भिः समयज्ञैः। अवसरज्ञैरिति यावत्। प्रभावेति। प्रभावो माहात्म्यं तेनानुरक्तान्यासक्तानि हृदयानि चेतांसि येषां ते तथा। अग्राम्येति। अग्राम्यो नागरिको य उपहासो नर्मवचोविलासस्तत्र कुशलैश्चतुरैः। 'कुशलश्चतुरोऽभिज्ञः—' इति कोशः। इङ्गितेति। इङ्गितं चेष्टाविशेषः आकार आकृतिः तौ विदन्तीत्येवंशीलास्ते तथा तैः। काव्येति। काव्यं निपुणकविकर्म, अवस्थानुकृतिर्नाटकम्, आख्यानकानि चूर्णकानि, आख्यायिका वासवदत्तादिः, आलेख्यानि चित्रकर्माणि, व्याख्यानान्यर्थनिर्वचनानि, इत्यादिका याः क्रियाः कार्याणि तेषु निपुणैर्दक्षैः। 'निष्णातो निपुणो दक्षः' इति कोशः। अतीति। अतिकठिना अतिकठोराः पीवराः पुष्टाः स्कन्धा बाहुशिरांस्युरवो विस्तीर्णा बाहवश्च येषां ते तथा तैः। असकृदिति। असकृन्निरन्तरमवदलिता मर्दिताः समदा मदयुक्ता या रिपुगजघटाः

प्रबुद्ध मन्त्रियों से वह घिरा रहता था, एवं अपने ही समान वय, विद्या और अलंकार पहनने वाले अनेक क्षत्रिय राजाओं के वंशज उन राजकुमारों के साथ खेलता रहता था, जो सभी कलाओं के आलोचन-प्रत्यालोचन में प्रौढमति थे, जो अत्यन्त प्रगल्भ (ढीठ) थे, समय के पारखी थे, जो शूद्रक के प्रभाव से अनुराग रखते थे, जो शिष्टजनोचित हास-परिहास में कुशल थे, जो इंगित और चेष्टित को ठीक-ठीक समझने वाले थे, जो काव्य, नाटक, कथा, कहानी, चित्रकला एवं व्याख्यान आदि में प्रवीण थे, जिनकी गर्दन, जंघायें और भुजायें अत्यन्त कठोर तथा पुष्ट थीं, शेर के बच्चों की भाँति जो शत्रुओं के मतवाले मतंगजों के शिर को चीर डालने वाले थे, जो सतत पराक्रम के रस में सरावोर रहने पर भी विनय का व्यवहार करते

१. कुलोद्भूतैः, २. प्रेमा; प्रेमभावा, ३. परिहास, ४. आख्यानकालेख्य,

भिरात्मनः प्रतिबिम्बैरिव राजपुत्रैः सह रममाणः प्रथमे वयसि सुखमतिचिरमुवास। तस्य चातिविजिगीषुतया महासत्त्वतया च तृणमिव लघुवृत्ति स्त्रैणमाकलयतः प्रथमे वयसि वर्तमानस्यापि[1] रूपवतोऽपि सन्तानार्थिभिरमात्यैरपेक्षितस्यापि सुरतसुखस्योपरि द्वेष इवासीत् सत्यपि रूपविलासोपहसितरतिविभ्रमे लावण्यवति विनयवत्य[2]-

शत्रुद्विपपङ्क्तयस्ता एव पीठबन्धाः स्थलविशेषा यैस्ते तथा तैः। केसरीति। केसरिणां सिंहानां किशोरकैरिव बालैरिव। अत्र किशोरशब्दोऽल्पवयसि सामान्येन प्रयुक्तः। 'किशोरोऽल्पवया हयः' इति तु विशेषो ग्रन्थकृता नाश्रितः। विक्रमैरिति। विक्रम एव पराक्रम एवैकोऽद्वितीयो रसो येषां ते तथैवंविधैरपि। विनयेन प्रश्रयेण व्यवहारो व्यवहरणं विद्यते येषां ते तथा तैः। एतेन शक्तौ सत्यामपि विनयाधिक्यं सूचितम्। अन्वयस्तु प्रागेवोक्तः। तस्य चेति। तस्य राज्ञः प्रथमे वयसि वर्तमानस्यापि। अत्र वृद्धत्वापेक्षया वयसः प्राथम्यं ज्ञेयम्। अन्यथाग्रेतनेनान्वयानुपपत्तिः। एवंविधेऽवरोधजने सत्यपि सुरतसुखस्योपरि निधुवनसातस्योपरि द्वेष इव मत्सर इवासीद्बभूव। किं कुर्वतो राज्ञः। आकलयतः सम्भावयतः। किम्। स्त्रैणं स्त्रीसमूहम्। तदेव विशिनष्टि—लध्विति। लघु तुच्छा वृत्तिर्वर्तनं यस्य तत्। किमिव। तृणमिव यवसमिव। एतेन तासामकिंचित्करत्वं सूचितम्। कया हेतुभूतया। अतीति। अतिशयेन विजेतुमिच्छुर्विजिगीषुस्तस्य भावस्तत्ता तया। तद्रसाक्षिप्तचेतस्कत्वेन कामोत्पत्तेरसम्भवात्। पुनर्हेत्वन्तरं प्रतिपादयन्नाह—महेति। महासत्त्वमतिशायि धैर्यं तस्य भावस्तत्ता तया। प्रायशो महासत्त्वस्य सिंहवत्स्वल्प एव कामः स्यात्। किंविशिष्टस्य राज्ञः। रूपवतोऽपि सौन्दर्यवतोऽपि। एतेन युवतिमनो (न उ) न्मादकत्वेऽपि तदभिलाषाभाव इति विभवानोक्तिः। अत्रापिशब्दो विरोधालंकारद्योतनार्थः। एतादृशोऽपि विषयसुखोपरत इति विरोधः। पुनरेव राजानं विशेषयन्नाह—संतानार्थिभिरिति। सन्तानमपत्यं तदेवार्थः प्रयोजनं विद्यते येषां ते तथा तैरमात्यैः सचिवैरपेक्षितस्यापि वाञ्छितस्यापि। एतेन सचिवानुकूल्यं दर्शितम्। अथावरोधजनं विशेषयन्नाह—रूपेति। रूपं सौन्दर्यम्, विलासा विलसनानि तैरुपहसिता हास्यास्पदीकृता रतेः कामस्त्रियो विभ्रमा भ्रूसमुद्भवा येन स तथा तस्मिन्। लावण्येति। लावण्यं लवणिमा तद्वति। विनयेति। विनयोऽभ्युत्थानादिरूपस्तद्युक्ते। एतेन तदानुकूल्यं सूचितम्। अन्वयेति। अन्वयो वंशः स विद्यते यस्य स तथा तस्मिन्। अत्रास्त्यर्थे वतुः। सुवंशज

रहते थे ऐसे अपने ही प्रतिबिम्ब की भाँति रहने वाले उन राजकुमारों के साथ उस शूद्रक ने अपनी जवानी का अधिक भाग सुख के साथ खेलते हुये बिता डाला।

उसकी विजय की इच्छा प्रबल थी तथा वह महान् पराक्रमी था इसलिये वह स्त्रियों को तिनके के समान अत्यन्त तुच्छ समझता था। यद्यपि वह तरुण था, रूपवान् था एवं उसके अमात्यों की इच्छा थी कि राजा को सन्तान हो फिर भी उसे स्त्रियों का सहवास नापसन्द था। यद्यपि उसके अन्तःपुर में अपने सौन्दर्य और रति-विलास से काम की प्रिया रति का भी उपहास करने वाली रमणियाँ थीं, जो लोकोत्तर सुषमा से सम्पन्न थीं, विनय से युक्त थीं, सत्कुल में

१. अतिरूपवतोऽपि, २. अन्वयवत्यभिजनवति,

न्वयवति हृदयहारिणि चावरोधजने। स कदाचिदनवरतदोलायमानरत्नवलयो घर्घरिकास्फालनप्रकम्पझणझणायमानमणिकर्णपूरः स्वयमारब्धमृदङ्गवाद्यः संगीतकप्रसङ्गेन, कदाचिदविरलविमुक्तशरासारशून्यीकृतकाननो मृगयाव्यापारेण, कदाचिदाबद्धविदग्धमण्डलः काव्यप्रबन्धरचनेन कदाचिच्छास्त्रालापेन, कदाचिदाख्यानकाख्यायिकेतिहासपुराणाकर्णनेन, कदाचिदालेख्यविनोदेन, कदाचिद्वीणया, कदाचिद्दर्शनागतमुनिजनचरणशुश्रूषया कदाचिदक्षरच्युतकमात्राच्युतकबिन्दुमतीगूढचतुर्थपाद-

---

इत्यर्थः। अत्र प्रौढकुलोत्पन्नत्वेन रूपलावण्यातिशयत्वं व्यङ्ग्यम्। हृदयेति। हृदयस्य चित्तस्य हारिण्याक्षेपके। अनेन सर्वजनस्पृहणीयत्वं व्यंग्यं सूचितम्। स कदाचिदिति। स राजा दिवसमनैषीन्निनायेति सर्वत्र सम्बध्यते। कदेति। कदाचित्कस्मिंश्चित्प्रस्तावे। गीतनृत्यवाद्यत्रयंप्रेक्षणार्थे कृतं सङ्गीतकमुच्यते तत्प्रसंगेन तत्सम्बन्धेनेत्यर्थः। इतो राजानं विशेषयन्नाह—अनवरतेति। अनवरतं निरन्तरं दोलायमानं कम्पमानं रत्नवलयं कङ्कणं यस्य स तथा। घर्घरिकेति। घर्घरिका वाद्यविशेषस्तस्या आस्फालनं वादनं तेन यः प्रकम्पश्चलनं तेन झणझणायमानो झणझणीति शब्दं कुर्वाणो मणिकर्णपूरो मणिखचितः कर्णालंकारो यस्य स तथा। स्वयमिति। स्वयमात्मनैवारब्धं विहितं मृदङ्गवद्वाद्यं वादित्रं येन स तथा। उभयहस्ताभ्यां तद्वादनादिति भावः। पुनः कदाचित्। मृगयेति। मृगयाखेटकस्तस्या व्यापारेण व्या-(पृत्या)। अविरलेति। अविरलमविच्छिन्नं विमुक्ताः क्षिप्ता ये शरा बाणास्तेषामासारो वेगेन वर्षस्तेन शून्यीकृतं काननं वनं येन स तथा। अत्र समग्रवनचारिव्यापादनं व्यंग्यम्। आवद्धेति। आबद्धमारचितं विदग्धानां प्रेक्षावतां मण्डलं येन स तथा। कदेति। काव्यं पूर्वव्यावर्णितस्वरूपं, प्रबन्धाः कथास्तेषां रचनेन ग्रथनेन। एतेन राज्ञोऽपि पण्डितजनानुरागित्वं प्रेक्षावत्त्वं च सूचितम्। पुनः केन। शास्त्रेति। शास्त्राणां न्यायादीनामालापेनापृच्छनेन। 'आपृच्छालापः संभाषः' इति कोशः। पुनः केन। आख्यानकेति। आख्यानकं व्यक्तकथा, आख्यायिका वासवदत्तादिका, इतिहासः पुरावृत्तम्, पुराणं मत्स्यादि, तेषामाकर्णनेन श्रवणेन। कदाचिदिति। आलेख्यं चित्रकर्म तस्य विनोदेन क्रीडयेत्यर्थः। पुनः केन। वीणयेति। वीणा विपञ्ची तद्वादनेन तच्छ्रवणेन चेत्यर्थः। पुनः केन। दर्शनेति। दर्शनार्थं

उत्पन्न हुई थीं तथा हृदय को हरण में करने समर्थ थीं। वह कभी-कभी संगीत का आयोजन करके अपने आप मृदंग बजाने लगता था जिससे मणिमय कंकण सतत आन्दोलित होते रहते थे; कभी घर्घरिका (वाद्य-विशेष) बजाने में इतना तन्मय हो जाता कि झूमने लगता जिससे उसके मणि निर्मित कर्णफूल झनझनाने लगते थे। कभी शिकार खेलने के प्रसंग में निरन्तर बाणों की वर्षा करके जंगल को पशुओं से रहित बना डालता था। कभी विद्वद्गोष्ठी का आयोजन कर काव्यरचना में रम जाता था, कभी कथा, कहानी, इतिहास और पुराणों के सुनने में रस लेने लगता था, कभी चित्र निर्माण में प्रवृत्त हो जाता था, कभी वीणा के वादन में जम जाता, कभी भेंट करने के लिए आये हुये मुनि जनों के चरणों की सेवा में संलग्न हो जाता था और कभी अक्षरच्युतक (अमुक अक्षर को निकाल लेनेपर काव्य का ऐसा रूप होना चाहिये) कभी

प्रहेलिकाप्रदानादिभिर्वनितासंभोगसुखपराङ्मुखः सुहृत्परिवृतो दिवसमनैषीत् । यथैव च दिवसमेवमारब्धविविधक्रीडापरिहासचतुरैः[1] सुहृद्भिरुपेतो निशामनैषीत् ।

विलोकनार्थमागताः प्राप्ता ये मुनिजनाः साधुलोकास्तेषां चरणशुश्रूषा पादसपर्या तया । पुनः केन । अक्षरेति । अक्षरस्य वर्णस्य च्युतिर्यत्र तदक्षरच्युतकम् । यथा—'कुर्वन्दिवाकराश्लेषं दधच्चरणडम्बरम् । देव यौष्माकसेनायाः करेणुः प्रसरत्यसौ ॥' इति । अत्र करेणुपदात्ककारच्युतौ द्वितीयार्थप्रतीतिः । मात्रायाश्च्युतिर्यत्र तन्मात्राच्युतकम् । यथा—'मूलस्थितिमधः कुर्वन्पात्रैर्जुष्टो गताक्षरैः । विटः सेव्यः कुलीनस्य तिष्ठतः पथिकस्य सः ॥' इति । विटपदादिकारमात्राच्युतौ वटस्यार्थस्य प्रतीतिः । पञ्चवर्णसंख्यया बिन्दुमात्रव्यवस्थापनेन तद्वर्णोपलब्धिः । बिन्दुमतीति यथा—'—'ि॰ ॰ ॰ ॰ ॰ ॰ ॰ ॰ ॰ॢ । ॰ ॰ ि ॰ ॰ ि ॰ ॰ ॰ा: ॰ ॰ ॰ ॰ा ॰ ॰: । ॰ ॰ ॰ ॰ ॰ ि॰ ॰ ॰ ॰ा ॰ ॰ ॰ ॰ ॰ ॰ा ॰ ॰ ॰ा ॰ ॰ ॰ ॰ : ॥' इति । एतत्पद्यं यथा—'त्रिनयनचूडारत्नं मित्रं सिन्धोः कुमुद्वतीबन्धुः । अयमुदयति घुसृणारुणरमणीवदनोपमश्चन्द्रः ॥' गूढो गुम्फश्चतुर्थः पादो यस्य तद्गूढचतुर्थपादं चित्रम् । एतदुदाहरणं विदग्धमुखमण्डनादवसेयम् । प्रहेलिका प्रवह्लिका । सा शाब्दी, आर्थी च । आद्योदाहरणं यथा—'पयस्विनीनां धेनूनां ब्राह्मणः प्राप्य विंशतिम् । ताभ्योऽष्टादश विक्रीय गृहीत्वैकां गृहं गतः ॥' अत्र धेन्वा ऊना धेनूना तां धेनूनामिति विंशतेर्विशेषणेनार्थावगमः सुगमः । आर्थी यथा—'जइ सासुआइ भणिआ पिअवासगरंमि दीवयं देसु । ता कीस मुद्धडमुही हिययंमि निवेसए दिट्ठिम् ॥' एतेन सर्वदा मम हृदयान्तर्वर्तित्वेन मम हृदयमेव भर्तुर्वासगृहम् । तेन तत्र दीपककरणानर्हत्वमिति ज्ञापितम् । एतासां प्रदानं समर्पणम् । आदिशब्दात्स्वात्मना तन्निर्माणं च तैः । अथ नृपं विशेषयन्नाह—वनितेति । वनितानां योषितां यः संभोग उपभोगस्तज्जनितं यत्सुखं सातं तस्मात्पराङ्मुखोऽनभिमुखः । सुहृद्भिः सज्जनैर्मित्रैर्वा परिवृतः परिवेष्टितः । यथैवेति । यथा येन प्रकारेण दिवसं वासरमनैषीत् । एवं तथैव निशां त्रियामामपि । सुहृद्भिर्मित्रैरुपेतः संयुतः । कीदृशैः । आरब्धेति । आरब्धाः प्रारब्धा ये विविधक्रीडासु परिहासास्तेषु चतुरैर्दक्षैः अनैषीदगमयदिति संबन्धः ।

मात्राच्युतक (मात्रा को निकाल देने पर पद्य-स्वरूप पर विमर्श) कभी बिन्दुमती (अक्षरों के स्थान पर बिन्दुओं को रखकर उसे भरने का कुतूहल कभी गूढ़ चतुर्थपाद जिस पद्य के चतुर्थ चरण के अक्षर उपर्युक्त तीन चरणों में छिपे पड़े हों) और कभी पहेलिकाओं के बुझौवल में रस लेने लगता था—इस तरह स्त्री-सहवास के सुख से वह विमुख रहता था एवं मित्रों से घिर कर वह दिन बिता लेता था, जिस तरह विविध आयोजनों में आसक्त होकर वह दिन बिता लेता था उसी तरह अनेक प्रकार की क्रीड़ा और हंसी-दिल्लगी में चतुर मित्रों से युक्त रहकर रात भी काट लेता था ।

---

१. चतुरः,

एकदा तु नातिदूरोदिते नवनलिनदलसंपुटभिदि किंचिन्मुक्त[1]-पाटलिम्नि भगवति[2] सहस्रमरीचिमालिनि राजानमास्थानमण्डपगतमङ्गनाजनविरुद्धेन वामपार्श्वा-वलम्बिना कौक्षेयकेण संनिहितविषधरेव चन्दनलता भीषणरमणीयाकृतिः, अविरल-[3]मलयजानुलेपनधवलितस्तनतटोन्मज्जदैरावतकुम्भमण्डलेव मन्दाकिनी, चूडामणि-

---

एकदेति। एकस्मिन्समये प्रतीहारी द्वारदेशे नियुक्ता स्त्री समुपसृत्य निकटदेशमागत्य राजानं सविनयमब्रवीदित्यन्वयः। विनयेन सह वर्तमानमवोचदित्यर्थः। सूर्यवर्णनाव्याज उक्त्यव-सरमाह—भगवतीति। श्रीसूर्ये सतीत्यर्थः। इतः सूर्यं विशेषयन्नाह—सहस्रेति। सहस्रसंख्या ये मरीचयः किरणास्तैर्मालते शोभते तन्धारयतीति वा यः स तथा तस्मिन्। नेति। नातिदूरं स्वल्पकालीनमुदितमुद्गमनं यस्य स तथा तस्मिन्। नवेति। नवानि प्रत्यग्राणि यानि नलिनानि तेषां दलानि पत्त्राणि तेषां यः संपुटो मुकुलस्तं भिनत्तीति स तथा तस्मिन्। किंचिदिति। किंचिदीषन्मुक्तः परित्यक्तः पाटलिमा श्वेतरक्तत्वं येन स तथा तस्मिन्। दूरोदितेत्यारभ्य त्रिभि-र्विशेषणैः प्रत्यूषसमयो व्यज्यते। कीदृशं राजानम्। आस्थानेति। आस्थानमण्डप उपवेशन-स्थलं तत्र गतं प्राप्तम्। प्रतीहारीं विशेषयन्नाह—भीषणेति। भीषणा भयानका रमणीया मनोज्ञाऽऽकृतिराकारो यस्याः सा तथा। रमणीयत्वे दृष्टान्तमाह—चन्दनलतेवेति। यथा चन्दनलता वस्तुस्वभावादेव रमणीया तथेयमपीत्यर्थः। लताया भीषणत्वे हेतुमाह—संनिहितेति। संनिहिताः पार्श्ववर्तिनो विषधराः सर्पा यस्याः सा तथेत्यर्थः। अस्या भीषणत्व आगन्तुकहेतु-माह—वामेति। वामपार्श्वे सव्यप्रदेशेऽवलम्बतेऽवतिष्ठत इत्येवंशीलेन कौक्षेयकेन खड्गेन। 'तरवारिर्मण्डलाग्रः खड्गकौक्षेयकौ' इति कोशः। खड्गं विशिनष्टि—अङ्गनेति। अङ्गनाजनः प्रमदावर्गस्तस्य विरुद्धेन। त्रपोत्पादकेनेत्यर्थः। यथा चन्दनलताया निसर्गतो रमणीयत्वेऽपि संनिहितविषधरत्वेन भीषणत्वं तथैतस्या अपि स्वभावतो बन्धुरत्वेऽपि वामपार्श्ववर्तिनि-स्त्रिंशत्वेन भीषणत्वमित्यभिप्रायः। अत प्रतीहारीं विशिनष्टि—अविरलेति। अविरलं घनतरं यन्मलयजस्य चन्दनस्यानुलेपनमुद्वर्तनं तेन धवलितं शुक्लीकृतं स्तनतटं कुचतटं यस्याः सा तथा। तत्र दृष्टान्तमाह—मन्दाकिनीव स्वर्धुनीव। इतो गङ्गां विशेषयन्नाह—

एक दिन कमल की नई पंखुड़ियों को प्रस्फुटित करने वाले भगवान् भास्कर जब उदित होकर क्षितिज के कुछ ऊपर आये ही थे और उनकी रक्तिमा जब घटने लगी थी तभी सभा मण्डप में विराजमान महाराज शूद्रक के पास प्रतीहारी आई; जो सहज सुन्दर होने पर भी लटकते हुए साँपों के कारण जैसे चन्दनलता रमणीय और भयंकर दीखती है उसी प्रकार स्त्री-जन के विरुद्ध बाईं ओर लटकने वाली तलवार से भयंकर एवं स्वरूप से रमणीय थी। जिसके स्तनतट मलयज चन्दन के विलेपन से धवल होने के कारण ऐसा प्रतीत होता था कि जल में डुबकी लगाने के बाद धीरे-धीरे निकलते हुए ऐरावत के कुम्भस्थल के सहित मन्दाकिनी आ गई हो। उपस्थित समस्त राजाओं के चूड़ामणि में प्रतिबिम्बित होने के कारण लगता था जैसे शरीर

---

१ उन्मुक्त २ भगवति मरीचि, ३ चन्दना, नुलेप,

प्रतिबिम्ब[1]च्छलेन राजाज्ञेव मूर्तिमती राजभिः शिरोभिरुह्यमाना, शरदिव कलहंस-धवलाऽम्बरा, जामदग्न्यपरशुधारेव वशीकृतसकलराजमण्डला, विन्ध्यवनभूमिरिव वेत्रलतावती, राज्याधिदेवतेव विग्रहिणी प्रतीहारी समुपसृत्य[2] क्षितितलनिहितजानु-करकमला[3] सविनयमब्रवीत्—

देव, द्वार[4]स्थिता सुरलोकमारोहतस्त्रिशङ्कोरिव कुपितशतमखहुङ्कारनिपातिता[5]

उन्मज्जदिति। उन्मज्जन्स्नानं कुर्वन्य ऐरावतो हस्तिमल्लस्तस्य कुम्भमण्डलं शिरः पिण्ड-चक्रवालं यस्यां सा तया। चन्दनशुभ्रकुम्भोपमानेन कुचतटस्य काठिन्यं व्यज्यते। केव। मूर्तीति। मूर्तिमती विग्रहवती राजाज्ञेव नृपशिष्टिरिव। ननु राजाज्ञा संनिहितराजशिरोभि-रुह्यमाना भवेत्। इयं तु तथा न भवतीत्यत आह—चूडेति। अर्थात्संनिहितराजमस्त-केषु चूडामणयस्तेषु यः प्रतिबिम्बः प्रतिच्छायस्तस्य छलं मिषं तेन। राजभिर्नृपैः शिरोभिरुत्तमाङ्गैरुह्यमाना वहमाना। पुनः केव। शरदिव घनात्यय इव। उभयत्र विशेषण-साम्यमाह—कलहंसेति। कलहंसा एव कलहंस इव वा धवलं शुभ्रमम्बरं वस्त्रं यस्या सा तथा पुनः केव। जामदग्न्येति। जमदग्नेर्गोत्रापत्यं जामदग्न्यः परशुरामस्तस्य परशुः कुठार-स्तस्य धारा प्रान्तप्रदेशस्तद्वदिव। उभयविशेषणसाम्यमाह—वशीति। वशीकृतं स्वायत्तीकृतं क्रूरत्वेन व्यामोहेन वा सकलराज्ञां समग्रभूपतीनां मण्डलं चक्रं यया सा तथा। पुनः केव। विन्ध्यस्येति। विन्ध्यस्य जलबालकस्य वनमरण्यं तस्य भूमिः पृथिवीव तत्सदृशीव। उभयत्र साम्यमाह—वेत्रेति। वेत्राणां वेतसानां लताः सरलवृक्षा यत्र। पक्षे वेत्रस्य लता यष्टिः। हस्त इति शेषः। यस्याः सा तथा। पुनः केव। राज्येति। राज्यस्याधिपत्यस्याधिष्ठात्री सान्निध्यकारिणी देवतेव सू (सु) रीवेत्युत्प्रेक्षा। अपूर्वेति शेषः। अतएव विग्रहिणी शरी-रिणी। पुनस्तामेव विशेषयन्नाह—क्षितीति। क्षितितले भूमितले निहितौ स्थापितौ जानू तलकीलौ, अथ च करौ तावेव कमले यया सा तादृशी। सविनयं विनयेन सह वर्तमानम्। किमब्रवीत्तदाह—देवेति। हे देव हे स्वामिन्, द्वारे स्थिता चाण्डालानां दिवाकीर्तीनां कन्यका कुमारी पञ्जरे पक्षिणामाश्रये स्थितं शुकं कीरमादाय गृहीत्वा देवं स्वामिनं विज्ञापयति स्वरहस्यं निवेदयतीत्यर्थः। केव। सुरेति। सुराणां देवानां लोकं स्वर्गमारोहत आरोहणं कुर्वतस्त्रिशङ्कोर-

धारण करके राजाज्ञा ही आ गई हो, जिसे सभी राजा लोग सर से ढो रहे थे। जो शरद् ऋतु के समान दीख पड़ती थी। शरद में आकाश कलहंसों के उड़ने से धवल हो जाता है और यह कलहंस के समान धवल वस्त्र धारण किये हुये थी। जो परशुराम के परशु की धारा के समान थी। परशु की धारा ने समस्त राजाओं को अपने वश में कर रखा था इसने भी सभी राजाओं को स्वायत्त कर लिया था। वह विन्ध्य की जंगली भूमि-सी दीख पड़ती थी। वहाँ बेंत की लतायें रहती थीं और यह बेंत की लता (छड़ी) लिये हुये थी। इस तरह शरीर धारण किये हुए राज्य के अधिदेवता की भाँति वह प्रतीहारी राजा के पास पहुँच कर धरती पर टेहुने और हाथ को टेक कर सविनय बोली—

महाराज, सुरलोक में आरोहण करते हुए त्रिशंकु की राजलक्ष्मी जैसे क्रुद्ध इन्द्र के हुंकार

१ चूडामणिसंक्रान्तप्रतिबिम्ब २ समुपासृत्य, ३ कमलं, ४ द्वारि, ५ निपतिता,

राजलक्ष्मीर्दक्षिणापथादागता चाण्डालकन्यका[1] पञ्जरस्थं शुकमादाय देवं विज्ञापयति[2]—'सकलभुवनतलरत्नाना[3]मुदधिरिवैकभाजनं देवः। विहङ्गमश्चाय-माश्चर्यभूतो[4]निखिलभुवनतलरत्नमिति कृत्वा देवपादमूल[5]मादायाऽऽगताहमिच्छामि देवदर्शनसुखमनुभवितुम्' इति। एतदाकर्ण्य 'देवः प्रमाणम्' इत्युक्त्वा विरराम। उपजातकुतूहलस्तु राजा समीपवर्तिनां राज्ञामालोक्य[6] मुखानि 'को दोषः, प्रवेश्यताम्' इत्यादिदेश।

याज्यस्य राजलक्ष्मीरिव। तामेव विशेषयन्नाह—कुपितेति। त्रिशङ्कोरयाज्यस्य देवयागास्स्वर्गे वासो न भवतीत्यतः कुपितः क्रुद्धो यः शतमख इन्द्रस्तस्य हुंकारः कोपध्वनिस्तेन निपातिताधः-क्षिप्ता। कीदृशी चाण्डालकन्यका। दक्षिणेति। दक्षिणापथाद्दक्षिणमार्गादागता प्राप्ता। प्रतीहारी चाण्डालकन्यकायाः सामान्यतो विज्ञापनाविषयमाह—सकलेति। चाण्डालकन्यकायास्त्वियं विज्ञापना। देवेति। हे देव, इति कृत्वा तं शुकमादाय देवस्य राज्ञः पादमूलं चरणमूलमह-मागता देवदर्शनसुखं महाराजस्यावलोकनसातमनुभवितुमनुभवविषयीकर्तुमिच्छामि समीहे। इतिशब्दवाच्यमाह—सकलेति। सकलानि समग्राणि यानि भुवनतलानि तेषु यानि रत्नानि तेषामेकं भाजनमुत्कर्षस्थानम्। क इव। उदधिरिव समुद्र इव। यथोदधिः सर्वरत्नानां भाजनं तथा देवो भवानपीत्यर्थः। अयं विहङ्गमः पक्षी शुक आश्चर्यभूत इत्यद्भुतप्रेक्षणविषयः अतस्ता-दृशोक्तविशेषत्वादेव निखिलानि यानि भुवनतलानि तेषां रत्नमुत्कृष्टम्। 'जातौ जातौ यदुत्कृष्टं तद्रत्नमभिधीयते' इति। आदाय गृहीत्वा। देवः प्रमाणमिति। यदेवास्य राज्ञोऽनुशासनं तदेव मया विधेयमित्युक्त्वा विरराम तूष्णीं बभूवेत्यन्वयः। प्रतीहार्युक्तं चाण्डालकन्यका-विज्ञापनावाक्यं सर्वं नृपेणाकर्ण्य राजमन्त्रिवैमत्यं निराकुर्वन्प्रतीहारीं प्रतीत्यादिदेश। को दोषः, प्रवेश्यतामिति। स्पष्टम्। कीदृशो राजा। उपेति। उपजातमुत्पन्नं कुतूहलं कौतुकं यस्य स तथा। किं कृत्वा। समीपवर्तिनां निकटस्थानां राज्ञां मन्त्रिणां च मुखानि वदनान्यालोक्य। निरीक्ष्येत्यर्थः। तेषामपि तद्दिदृक्षेति ज्ञात्वेत्यर्थः।

से गिरी हुई हो ऐसी एक चाण्डाल की लड़की जो दक्षिण पथ से आई हुई है वह पिंजड़े में बन्द एक तोते को ली हुई श्रीमान् को सूचित कर रही है कि 'आप समुद्र के समान समस्त भुवन-मण्डल के रत्नों के एकमात्र पात्र हैं। यह पक्षी आश्चर्य स्वरूप है, फलतः सम्पूर्ण विश्व का यह श्रेष्ठरत्न है, ऐसा समझ कर श्रीमान् के चरणों के पास इसे लेकर मैं आई हूँ और चाहती हूँ आपके दर्शन का सुखानुभव करना'। 'इसके बाद महाराज की जैसी आज्ञा हो' इतना कहकर प्रतीहारी चुप हो गई। उपर्युक्त सन्देश सुनने के बाद तोते को देखने के लिए राजाने उत्कण्ठित होकर समीपवर्त्ती राजाओं की ओर देखकर आज्ञा दी कि कोई हर्ज नहीं है उसे लिवा लाओ।

---

१ चण्डालकन्यका काचित्, २ विज्ञपयति, ३ तलसर्वरत्नानां ४ भूत, ५ मूलमेनम्, ६ अवलोक्य,

अथ प्रतीहारी नरपतिकथना[1]नन्तरमुत्थाय तां मातङ्गकुमारीं प्रावेशयत्। प्रविश्य च सा नरपतिसहस्रमध्यवर्तिनमशनिभयपुञ्जितकुलशैलमध्यगतमिव कनकशिखरिणम्, अनेकरत्नाभरणकिरणजालकान्तरितावयवमिन्द्रायुधसहस्रसंछादिताष्टदिग्भागमिव जलधरदिवसम्[2], अवलम्बित[3]स्थूलमुक्ताकलापस्य कनकश्रृङ्खलानियमितमणिदण्डिकाचतुष्टयस्य गगनसिन्धुफेनपटलपाण्डुरस्य[4] नातिमहतो दुकूलवितानस्याधस्तादिन्दुकान्तपर्य[5]ङ्किकानिषण्णम्, उद्धूयमानसु[6]वर्णदण्डचामरकलापम्, उन्मयूख-

---

अथेति। अथ नरपतिकथनानन्तरमुत्थायोत्थानं कृत्वा प्रतीहारी तां मातङ्गकुमारीं प्रावेशयत्प्रवेशमकारयत्। प्रविश्य चेति। प्रविश्य प्रवेशं कृत्वा सा चाण्डालकुमारी राजानमद्राक्षीत्। अपश्यदित्यर्थः। 'दृशिर् प्रेक्षणे' इत्यस्य लुङि रूपम्। राजानं विशेषयन्नाह—नरपतीति। नरपतीनां राज्ञां यत्सहस्रं तन्मध्यवर्तिनम्। तदन्तरालस्थितमित्यर्थः। कमिव कनकशिखरिणमिव मेरुमिव। कीदृशं मेरुम्। अशनीति। अशनेरिन्द्रायुधाद्वज्राद्यद्भयमातङ्कस्तेन पुञ्जिता एकत्रीभूता ये कुलशैलाः क्षेत्रसीमाकारिपर्वतास्तेषु मध्यगतं तदन्तःस्थितम्। पुनर्नृपं विशिनष्टि—अनेकेति। अनेकानि विविधानि यानि रत्नाभरणानि मणिखचितभूषणानि तेषां यानि किरणजालकानि। जालान्येव जालकानि। स्वार्थे कप्। मरीचिमण्डलानि तैरन्तरिता आच्छादिता अवयवा अपघना यस्य स तम्। नीलपीतादिवर्णयोगात्। तत्रोपमानमाह—इन्द्रेति। इन्द्रायुधानां हरिकार्मुकाणां यत्सहस्रं तेन संछादितास्तिरोहिता अष्टौ दिग्भागाः ककुभां प्रदेशा यस्मिंस्तथाभूतं जलधरदिवसमिव प्रावृड्दिनमिव। पुनस्तमेव नृपं विशिनष्टि—नातीति। नातिमहतः स्थानोचितप्रमाणस्य दुकूलं क्षौमं तस्य वितानमुल्लोचः। 'उल्लोचो वितानं कदकोऽपि' इत्यभिधानचिन्तामणिः। तस्याधस्तात्तदधःप्रदेश इन्दुकान्तानां चन्द्रकान्तमणीनां या पर्यङ्किका मञ्चिका तस्यां निषण्णमुपविष्टम्। अथ वितानं विशेषयन्नाह—अवेति। अवलम्बित आश्रितः स्थूलानां स्वचिष्ठानां मुक्तानां रसोद्भवानां कलापो जालं येन स तथा। कस्य तस्य। कनकेति। कनकं सुवर्णं तस्य या श्रृङ्खला बन्धनरश्मयस्तैर्नियमिता निबद्धा मणिदण्डिका रत्नखचिता यष्टयस्तासां चतुष्टयं यस्मिन्स तथा तस्य। गगनेति। गगनसिन्धोः स्वर्णद्याः फेनो डिण्डीरः। 'डिण्डीरोऽब्धिकफः फेनः' इत्यभिधान-

---

महाराज की आज्ञा पाते ही प्रतीहारी ने उठकर उस चाण्डाल कन्या को सभा-मण्डप में प्रविष्ट करा दिया। सभा-मण्डप में प्रवेश करके उस मातङ्गकुमारी ने राजा को देखा—जो हजारों राजाओं के मध्य में इस तरह विराजमान था जैसे इन्द्र के वज्र से डरकर एकत्रित कुल-पर्वतों के मध्य में सुमेरु पर्वत हो। अनेक रत्नों से बने हुये अलंकारों की किरणावली से उसके आठों अङ्गों के ढके होने से लगता था जैसे हजारों इन्द्रधनुषों से आच्छादित आठों दिग्विभागों वाला बरसाती दिन हो। चन्द्रकान्त मणि के जिस पलङ्ग पर राजा बैठा हुआ था, उस पलङ्ग पर बड़े २ मोतियों की झालरें लटक रही थीं, उसके चारों पायों पर रत्नों के दण्ड

---

१ वचना २, जलधरसमय, ३. आलम्बित, ४, पाण्डरस्य, ५. इन्दुकान्तमणि, ६, कनक

मुखकान्तिविजयपराभव[1]प्रणते शशिनीव स्फटिक[2]पादपीठे विन्यस्तवामपादम्, इन्द्रनीलमणिकुट्टिमप्रभासंपर्कश्यामायमानैः प्रणतरिपुनिःश्वासमलिनीकृतैरिव चरण-नखमयूखजालै[3]रुपशोभमानम्, आसनोल्लसितपद्मरागकिरणपाटलीकृतेनाचिरमृदित-मधुकैटभरुधिरारुणेन हरिमिवोरुयुगलेन विराजमानम्, अमृतफेनधवले गोरोचना-

चिन्तामणिः। तस्य पटलं समूहस्तद्वत्पाण्डुरं शुभ्रं तस्य। पुनर्नृपं विशिनष्टि—उद्धूयेति। उद्धूयमानो व्यज्यमानः सुवर्णस्य काञ्चनस्य दण्डोऽवलम्बनयष्टिर्येष्वेतादृशानि चामराणि प्रकीर्णकानि तेषां कलापः समूहो यस्य स तम्। स्फटिकेति। स्फटिकानां स्वच्छमणीनां यत्पादपीठं चरणस्थापनस्थलं तत्र विन्यस्तः स्थापितो वामपादः सव्यचरणो येन स तथा तम्। पादपीठं विशेषयन्नाह—शशिनीति। शशिनीव चन्द्रमसीव। अथ शशिनं विशेषयन्नाह—उन्मयूखेति। उदूर्ध्वं मयूखाः किरणा यस्मिंस्तत्तादृशं यन्मुखं तस्य या कान्तिर्दीप्तिस्तया यो विजयो जयस्तेन यः पराभवस्तिरस्कारस्तेन प्रणते पादसंलग्ने। पुनर्नृपं विशेषयन्नाह—चरणेति। चरणानां पादानां ये नखाः पुनर्भवास्तेषां मयूखाः किरणास्तेषां जालानि समूहास्तै-रुपशोभमानं भासमानम्। मयूखजालं विशेषयन्नाह—इन्द्रेति। इन्द्रनीलमणीनामिन्द्रमणीनां या कुट्टिमप्रभा बद्धभूमिकान्तिस्तस्याः संपर्को मिश्रभावस्तेन श्यामायमानैः श्यामवदाचरमाणैः। कीदृशैरिव। प्रणतेति। प्रणता नता ये रिपवः शत्रवस्तेषां ये निश्वासाश्चेतनाः तैर्मलिनीकृतैर्मालिन्यं प्राप्तैरिव। पुनर्नृपं विशेषयन्नाह—ऊरू इति। ऊरू सक्थी तयोर्युगलं तेन विराजमानं शोभमानम्। ऊरुयुगलं विशिनष्टि—आसनेति। आसन उपवेशनस्थल उल्लसिता देदीप्यमाना ये पद्मरागा लोहितमणयस्तेषां ये किरणा मयूखास्तैः पाटलीकृतेन। श्वेतरक्तीकृतेनेत्यर्थः। 'श्वेतरक्तस्तु पाटलः' इति कोशः। कमिव। अचिरेति। अचिरं त्वरितं मृदितो मर्दितो यो मधुकैटभौ दैत्यविशेषस्तस्य यद्रुधिरं रक्तं तेनारुणेन रक्तेनोरुयुगलेन विराज-मानं हरिमिव कृष्णमिव। पुनः किं कुर्वाणं नृपम्। वसानम् दधानम्। किम्। दुकूले क्षीरोद-वस्त्रे। अथैते विशिनष्टि—अमृतेति। अमृतस्य सुधायाः फेनस्तद्वद्धवले शुभ्रे। गोरोचनेति। गोरोचना गोपित्तं तेन लिखितानि यानि हंसमिथुनानि सितच्छदयुग्मानि तैः सनाथः सहितः पर्यन्तः

सोने की जंजीरों से बँधे हुये थे, उस पर मझोला रेशमी चँदोवा तना हुआ था जो स्वर्गङ्गा के फेन-पुंज के समान धवल था जिसके नीचे राजा बैठा हुआ था सोने के दण्डे वाले चँवर डुलाये जा रहे थे, स्फटिक मणि के पादपीठ (पीढ़ा) पर वह अपना बाँया पैर रखे हुआ था लग रहा था कि उत्तम किरणों वाले राजमुख की कान्ति से पराजित होकर चन्द्रमा ही मानों प्रणत हो गया हो। सिंहासन में खचित पद्मराग मणि की किरणों से लाल बनायी गई जाँघों से वह ऐसा विराजमान था जैसे मधु और कैटभ नामक दैत्यों को सद्यः मारने से रक्त-रञ्जित जाँघ वाले विष्णु हों (भगवान् विष्णु ने मधु-कैटभ का प्रलय काल में अपनी जाँघों पर लिटा कर चक्र से सिर काट लिया था—यह मार्कण्डेय पुराण में कथा है)।

१. उन्मयूखकान्तिनिचयपराभव; उन्मयूखमुखविजयपराभव; उन्मयूखमुखकान्तिवि-जिते पराभव, २. स्फाटिके, ३. जालकैः

लिखितहंसमिथुनसनाथपर्यन्ते चारुचामरवायुप्रनर्तिता'न्तदेशे[2] दुकूले वसानम्, अतिसुरभिचन्दनानुलेपनधवलितोरःस्थलम्, उपरिविन्यस्तकुङ्कुमस्थासकमन्तरान्तरा-निपतित[3]बालातपच्छेदमिव कैलासशिखरिणम्, अपरशशिशङ्कया नक्षत्रमालयेव हारलतया कृतमुखपरिवेषम्, अतिचपलराज्यलक्ष्मीबन्धनिगडकटकशङ्का[4]मुपजनय-तेन्द्रमणि[5]केयूरयुग्मेन[6]मलयजरसगन्धलुब्धेन भुजङ्गद्वयेनेव वेष्टितबाहुयुगलम्[7]

प्रान्तदेशो ययोस्ते। चार्विति। चारुणी च ते चामरे च चारुचामरे तयोर्वायुना समीरणेन प्रनर्तिता आन्दोलिता अन्तदेशाः प्रान्तदेशा ययोस्ते। पुनर्नृपं विशेषयन्नाह–अतीति। अतिसुरभि अतिसुगन्धि यच्चन्दनं मलयजं तस्यानुलेपनमङ्गरागस्तेन धवलितं शुभ्रीकृतमुरःस्थलं वक्षःस्थलं यस्य स तथा तम्। उपरीति। उपरि अर्थाद्वक्षसः विन्यस्ता विहिताः कुङ्कुमस्य केसरस्य स्थासका हस्तबिम्बा यस्य स तम्। 'स्थासकस्तु हस्तबिम्बम्' इति कोशः। कमिव। अन्तरेति। अन्तरान्तरा मध्ये मध्ये निपतिताः पर्यस्ता बालातपस्य नवीनालोकस्य छेदाः खण्डा यस्मिन्ने-तादृशं कैलासशिखरिणमिव रजताद्रिमिव। पुनः प्रकारान्तरेण तमेव नृपं विशेषयन्नाह—अपरेति। अपरोऽन्यो यः शशी चन्द्रस्तस्य या शङ्का भ्रान्तिस्तया नक्षत्राणि तारास्तासामाली (सां माला) श्रेणी तद्रूपयैव हारलतया। 'हारो मुक्तान्तप्रालम्बस्रक्कलापावली लता' इति कोशः। तेन कृतो विहितो मुखस्याननस्य परिवेषः परिधिर्यस्य स तम्। अनेन हारलताया अत्यन्तनैर्मल्यं मुखस्य च चन्द्रसाम्यं सूचितम्। 'परिधिः परिवेषश्च' इति कोषः। अतीति। अतिचपलातिचञ्चला या राज्यलक्ष्मीराधिपत्यश्रीस्तस्या बन्धो नियमनं तत्र निगडोऽन्दुकस्तस्य यत्कटकं वलयं तस्य शङ्कामा-रेकामुपजनयता कुर्वता। एवं भूतेनेन्द्रमणियुक्तमिन्द्रनीलमणिखचितं यत्केयूरयुग्ममङ्गदद्वन्द्वं तेन वेष्टितं परिक्षिप्तं बाहुयुगलं भुजद्वितयं यस्य स तथा तम् यद्यपि समस्तवेष्टितपदस्य बाहुपदान्वितस्य विभक्त्यन्तरबद्धेनान्वयस्तथापि विशेषे क्वचित् 'मानेन जितेन्द्रियः' इत्यादौ तथा दृष्टत्वाददोषो द्रष्टव्यः। केनेव। मलयेति। मलयजश्चन्दनसक्तो यो रसो द्रवस्तस्य गन्धे परिमले लुब्धेनासक्तेन

वह दो रेशमी वस्त्र (धौतोत्तरीय) धारण किये हुये था जो अमृत-फेन के समान धवल थे, जिनके किनारे गोरोचना से छपे हुए हंसों के जोड़े से अलंकृत थे, तथा जिनके छोर सुन्दर चँवर के पवन से हिल-डुल रहे थे। अत्यन्त सुगन्धित चन्दन के अनुलेपन से उसका वक्षःस्थल धवल हो उठा था और उस चन्दन लेप पर हाथ के पंजे से चिह्नित कुंकम की बनी विरल रेखाओं से ऐसा प्रतीत होता था जैसे रजतगिरि पर बालारुण सूर्य की विरल किरणें पड़ रही हों। गले में पड़ी हुई मौक्तिक माला की आभा उसके मुख के चतुर्दिक् एक मण्डल-सा बनाये हुयी थी लगता था राजमुख को द्वितीय चन्द्र समझ कर नक्षत्रों की माला ने उसे घेर लिया हो। राजा की भुजाओं में इन्द्रनील मणि के केयूर (बिजायठ) युगल ऐसे लगते थे मानों अतीव चंचल राजलक्ष्मी को बाँधने के लिए पाश-शृंखला हो तथा मलय पर प्रसूत चन्दन

१. पवननर्तित, २. अन्तर्देशे ३ अन्तरानिपतित; अन्तरान्तरानिपतित, ४ राज्यलक्ष्मी बन्धननिगडशङ्कां, ५ इन्द्रनीलमणि, ६ युगलेन, ७ शिखरम्.

ईषदालम्बि[1] कर्णोत्पलम्, उन्नतघोणं, उत्फुल्लपुण्डरीकनेत्रम्[2] अमलकलधौतपट्टायत[3] मष्टमीचन्द्रशकलाकारमशेषभुवनराज्याभिषेकपूत[4]मूर्णासनाथं ललाटदेशमुद्वहन्तम्, आमोदिमालतीकुसुमशेखरमुषसि शिखरपर्यस्ततारकापुञ्जमिव पश्चिमाचलम्, आभरण-प्रभापिशङ्गिताङ्गतया[5] लग्नहरहुताशमिव मकरध्वजम्, आसन्नवर्तिनीभिः सर्वतः

भुजङ्गद्वयेनेव सर्पयुग्मेनेव। ईषदिति। ईषत्किंचिदालम्बि लम्बमानं कर्णोत्पलं श्रवणपङ्कजं यस्य स तथा तम्। उन्नतेति। उन्नतोच्चा घोणा नासिका यस्य स तम्। उत्फुल्लेति। उत्फुल्लं विकसितं यत्पुण्डरीकं सिताम्भोजं तद्वन्नेत्रे लोचने यस्य स तम्। किं कुर्वन्तं नृपम्। ललाटदेशमलिकप्रदेशमुद्वहन्तं धारयन्तम्। अथवालीकं विशेषयन्नाह—अमलेति। अमलं निर्मलं यत्कलधौतं सुवर्णं तस्य यः पट्टस्तद्वदायतं विस्तीर्णम्। 'अयनम्' इति पाठे सुवर्णतिल-कस्थानम्। 'अयनं सरणिर्मार्गः' इति कोशः। अष्टमीति। अष्टम्यां यच्चन्द्रशकलं तदधोभागस्तद्व-दाकार आकृतिर्यस्य तत्तथा। उभयोः पक्षयोरष्टम्यामष्टावेव कला इत्यर्धचन्द्रः। अतोऽष्टमी-ग्रहणं युक्तमेवेति भावः। अशेषेति। अशेषाणि समग्राणि यानि भुवनानि तेषां राज्यमाधिपत्यं तस्याभिषेको मङ्गलस्नानं तेन पूतं पवित्रम्। ऊर्णेति। ऊर्णा भ्रुवोरन्तरावर्तस्तेन सनाथं सहितम्। "ऊर्णा मेषादिलोम्नि स्यादावर्तस्व (र्ते चा) न्तरा भ्रुवोः' इत्यमरः। स च चक्रवर्तिप्रभृतीनामेव नान्यजनस्य। तदुक्तम्—भ्रूद्वयमध्ये मृणालतन्तुसूक्ष्मं शुभ्रायतमेकं प्रशस्तावर्तं महापुरुष-लक्षणम्' इति पुनरेव नृपं विशेषयन्नाह—आमोदीति। आमोदीनि सुगन्धीनि यानि मालतीकुसुमानि जातीपुष्पाणि तेषां शेखरश्चूडाभूषणं यस्य स तथा तम्। कमिव। पश्चिमाचलमिवास्ताद्रिमिव। कीदृशम्। उषसीति। उषसि प्रभाते शिखरे सानुनि पर्यस्ताः पतितास्तारकाणां नक्षत्राणां पुञ्जाः समूहा यस्मिन्स तम्। अत्र शैलशिखरनृपो-त्तमाङ्गयोः पुष्पपुञ्जतारकयोश्चोपमानोपमेयभावः। मकरेति। मकरस्य जलजन्तुविशेषस्य ध्वजोऽङ्को यस्य तमिव। मदनसादृश्यं प्रदर्शयन्नाह—आभरणेति। आभरणानां भूषणानां या प्रभा कान्तिस्तया पिशङ्गितं पीतरक्तीकृतमङ्गं यस्य तस्य भावस्तत्ता तया कृत्वा लग्न आसक्तो हरस्येश्वरस्य हुताशोऽग्निर्यस्य स तम्। अत्राभरणदीप्तिहरनेत्रोद्भववह्न्यो राजमकरध्वजयोश्चोपमानोपमेयभावो दर्शितः। आसन्नेति। आसन्नवर्तिनीभिर्निकट-

के रस की सुरभि के लोभी दो भुंजगम ही लिपट गये हों। राजा के कानों में कुछ-कुछ लटके हुये कमल विराजमान थे, उसकी नासिका ऊँची थी, खिले हुये उज्ज्वल कमल के सदृश उसके नयन थे, निर्मल सुवर्ण की पट्टिका के समान उसका भाल था जो अष्टमी तिथि के चन्द्रमा के आकार के समान था एवं समस्त भुवनों के राज्याभिषेक से परिपूत और परस्पर मिले हुये भौंहों से वह विराजमान था। उसका सिर सौरभ-सम्पन्न मालती के फूलों के मुकुट से ऐसा लगता था मानों उषाकाल में शिखर पर पुंजीभूत तारों से विभूषित अस्ताचल हो। अलंकारों की प्रभा से उसके सिताभ अंग के हो जाने से ऐसा लगता था मानों शङ्कर के कोपानल की ज्वाला से संश्लिष्ट कामदेव हो। समीप में रहने वाली सभी दिशाओं से सेवा के लिए आई हुई दिग्वधुओं के

१ आलम्बित, २ लोचनम् ३ पट्टायित,; पट्टायमान, ४ सलिलपूत, ५ अङ्गरागतया,

सेवार्थमागता[1]भिरिव दिग्वधूभिर्वारविलासिनीभिः परिवृतम्, अमलमणिकुट्टिमसं[2]क्रान्तसकलदेहप्रतिबिम्बतया पतिप्रेम्णा वसुंधरया हृदयेनेवोह्यमानम्, अशेषजन-भोग्यतामुपनीतयाप्यसाधारणया राजलक्ष्म्या[3]समालिङ्गितदेहम्, अपरिमितपरिवार-जनमप्यद्वितीयम्, अनन्तगजतुरगसाधनमपि खड्गमात्रसहायम्, एकदेशस्थितमपि व्याप्तभुवनमण्डलम्, [4]आसने स्थितमपि धनुषि निषण्णम्, उत्सादितद्विषदिन्धनमपि

स्थायिनीभिः सर्वतो विश्वतः सेवार्थं सपर्यार्थमागताभिः प्राप्ताभिर्विलासिनीभिर्वाराङ्गनाभिः। काभिरिव। व्यापकत्वाद्दिश एव वध्वः स्त्रियो दिग्वध्वस्ताभिरिव। अत्र दिग्वधूवारविलासिन्योः साम्यं सूचितम्। ताभिः परिवृतं परिवेष्टितम्। अमलेति। अमलाः स्वच्छा ये मणयश्चन्द्र-कान्ताद्यास्तेषां कुट्टिमं बद्धभूस्तस्मिन्संक्रान्तं यत्सकलदेहप्रतिबिम्बं समग्रशरीरप्रतिच्छायस्तस्य भावस्तत्ता तया। हेत्वर्थे तृतीया। पतिः स्वामी तस्य प्रेम प्रीतिस्तेन च वसुन्धरया पृथिव्या स्वान्तेनेवोह्यमानं वह्यमानम् (नीयमानम्)। अशेषेति। अशेषाः समग्रा ये जना लोकास्तेषां भोग्यतां भोगयोग्यतामुपनीतया प्राप्तयापि। सर्वसाधारणयेत्यर्थः। असाधारणया च तथा हृदयेनेव स्वान्येषामेतादृशी राजलक्ष्मीर्नास्तीत्यपकर्षोत्कर्षाभ्यां साधारणासाधारणया च राजलक्ष्म्या समा-लिङ्गितमुपगूहितं देहं शरीरं यस्य स तथा तम्। अत्र विरोधाभासोऽलंकारः। साधारणासाधारण-योर्विरुद्धधर्मत्वात्। तत्परिहारपक्षेऽसाधारणया। सर्वोत्कृष्टयेत्यर्थः। अपरिमितेति। अपरिमितोऽ-संख्येयः परिवारजनः परिच्छदजनो यस्य स तम्। एवं बहुजनत्वेऽप्यद्वितीयं न द्वितीयो जनो यस्येति विरोधः। तत्परिहारपक्षेऽद्वितीय इत्यस्य सर्वोत्कृष्ट इत्यर्थः। अनन्तेति। अनन्तान्य-संख्यानि गजा हस्तिनस्तुरगा अश्वास्तेषां साधनान्युपकरणानि सहाया यस्य 'निर्वर्तनोपकरणानु-व्रज्यासु च साधनम्' इत्यमरः। एवं च बहुसहायवत्त्वेऽपि केवलं खड्गः खड्गमात्रं सहायो यस्येति विरोधः। तत्परिहारपक्षे खड्गमात्रसहायमित्यस्य युद्धे तदन्यानपेक्षत्वमित्यर्थः। एकदेशस्थितमिति। एकदेशः सभामण्डपादिः, जनपदो वा। तत्र स्थितमपि निषण्णमपि व्याप्तं समाक्रान्तं भुवनमण्डलं जगन्मण्डलं येनेति विरोधः। परिहारपक्षे व्याप्तं ख्यातं भुवनमण्डले यमिति विग्रहः। विशेषेणाप्तं व्याप्तमिति वार्थः। 'व्याप्तं ख्याते समाक्रान्ते' इति विश्वः। आसने स्थितमिति। आसने भद्रासने स्थितमप्युपविष्टमपि धनुषि कार्मुके

समान वारांगनाओं से वह घिरा हुआ था। निर्मल मणियोंके बने हुए फर्श में समस्त शरीर के प्रतिबिम्बित हो जाने के कारण ऐसा लगता था कि पृथ्वी पति-प्रेम से अपने हृदय पर उसे बिठाये हुए हो। सभी लोगों द्वारा उपभोग्य होने पर भी असाधारण (जो सब की न हो सके) राजलक्ष्मी से उसकी देह भलीभाँति आलिंगित थी। अपरिमित परिवार से युक्त रहने पर भी वह अद्वितीय अर्थात् अकेला था (बेजोड़ था)। अनन्त हाथी, घोड़ों के साधन रहने पर भी एक-मात्र अपनी तलवार का उसे भरोसा था। एक जगह रहकर भी समस्त भुवन-मण्डल में व्याप्त था अर्थात् उसका प्रताप सर्वत्र फैला हुआ था। आसन पर बैठा रहकर भी वह धनुष पर ही बैठा रहता था अर्थात् जरूरत पड़ते ही धनुष उठा लेनेमें उसे विलम्ब नहीं होता था। शत्रुरूपी

१ सेवासंगता २. संक्रान्तप्रतिबिम्ब; संक्रान्तदेहप्रतिबिम्ब, ३. समालिङ्गितम्, ४. आसनस्थितम्; आसनगतम्,

ज्वलत्प्रतापानलम्, आयतलोचनमपि सूक्ष्मदर्शनम्[2], महादोषमपि सकलगुणाधिष्ठानम्, कुपतिमपि कलत्र[3]वल्लभम्, अविरतप्रवृत्तदानमप्यमदम्, अत्यन्तशुद्ध[4]स्वभावमपि कृष्णचरितम्, अकरमपि हस्तस्थितभुवनतलं[5] राजानमद्राक्षीत्।

निषण्णं स्थितमिति विरोधः। परिहारपक्षे धनुःसंज्ञा तस्मिन्स्थितमित्यर्थः। नामश्रवणेन विपक्षाणां साक्षादागत इव इति भयोत्पत्तेः। 'धनुःसंज्ञा प्रियालद्रौ' इति विश्वः। उत्सादितेति। उत्सादितं व्यापादितं क्षिपन्त एवेन्धनमेधो येन। एवंभूतमपि ज्वलत्प्रतापानलमिति विरोधः। परिहारपक्षे ज्वलदित्यस्य दीप्यदित्यर्थः। आयतेति। आयते विस्तीर्णे लोचने यस्यैवंभूतमपि सूक्ष्ममविपुलं दर्शनं लोचनं यस्येति विरोधः। परिहारपक्षे सूक्ष्ममध्यात्मविषयं दर्शनं ज्ञानं यस्येत्यर्थः। 'सूक्ष्मं स्यात्कैतवेऽध्यात्मेऽप्यणौ' इति विश्वः। 'दर्शनं नयनस्वप्नबुद्धिधर्मोपलब्धिषु' इति विश्वः। महादोषमिति। महान्दोषो यस्मिन्नेवंभूतमपि सकलगुणाधिष्ठानं समग्रगुणस्थानमिति विरोधः। परिहारपक्षे महती दोषा बाहुर्यस्येत्यर्थः। 'दोषा रात्रौ भुजेऽपि च' इति विश्वलोचनः। कुपतिमिति। कुत्सितश्चासौ पतिश्च कुपतिरेवंभूतमपि कलत्रवल्लभं स्त्रीजनप्रियमिति विरोधः। तत्परिहारपक्षे कुः पृथिवी तस्याः पतिः। स्वामीत्यर्थः। एतादृशस्त्रिप्रियः स्यादिति न विरोधः। अविरतमिति। अविरतं संततं प्रवृत्तं दानं यस्यैवंभूतमप्यमदं दानरहितमिति विरोधः। तत्परिहारस्त्वेवम् अविरतं प्रवृत्तं दानं त्यागो यस्यैवंभूतमप्यमदम्। गर्वरहितमित्यर्थः। 'दानं गजमदे त्यागे पालनच्छेदशुद्धिषु' इति विश्वः। अत्यन्तेति। अत्यन्तमतिशयेन शुद्धो निर्मलः स्वभावः प्रकृतिर्यस्यैवंभूतमपि कृष्णं श्यामं चरितमाचारो यस्येति विरोधः। परिहारपक्षे कृष्णः केशवोऽर्जुनो वा तद्वच्चरितं यस्येत्यर्थः। 'कृष्णस्तु केशवे। व्यासेऽर्जुने कोकिले च' इति विश्वः। अकरमिति। न विद्यते करो हस्तो यस्यैवंभूतमपि हस्ते करे स्थितं भुवनतलं यस्येति विरोधः। तत्परिहारपक्षे न विद्यते करो दण्डो यस्येति विग्रहः। 'बलिः करो भागधेयः' इति कोशः।

इन्धनों को जला चुकने पर भी उसका प्रतापानल धधक रहा था—इन्धनों के समाप्त हो जाने पर आग में लपट नहीं रहती पर यहाँ उसके प्रताप की आग में ज्वाला दीख रही है अर्थात् शत्रु लोग उसके अभिभव की बात सोच नहीं पाते। विशाल नयनों से सुशोभित होने पर भी छोटी आँख थी—(परिहार) सूक्ष्मदर्शी था। महान् दोषों वाला होने पर भी सभी गुणों का आश्रय था—यहाँ दोष का अर्थ बाहु है विशाल-बाहु था वह, कुत्सित पति होने पर भी वह पत्नियों का प्रिय था—कुपति पृथ्वीपति अर्थ करने से विरोध का परिहार है। निरन्तर मदजल के बहते रहने पर भी वह मतवाला नहीं था—विरोध का परिहार—दान देने में सतत संलग्न रहता था, पर उसे उसका अभिमान नहीं था। अत्यन्त निर्मल स्वभाव का होने पर भी उसका चरित काला था—कृष्ण भगवान् के समान आचरण करता था। हाथ न होने पर भी सारे भुवन तल को हाथ पर उठाये हुये था। अर्थात् कर (टैक्स) की अधिक व्यवस्था किये बिना ही सारे जगत् के पालन पोषण की व्यवस्था का भार हाथों पर उठाये हुए था—ऐसे राजा को देखा।

---

१. अशेषद्विषत्, २. दर्शिनम्, ३. कलत्रचय, ४. अतिशुद्ध, ५. सकलभुवन,

आलोक्य च सा दूरस्थितैव प्रचलितरत्नवलयेन रक्तकुवलयदलकोमलेन पाणिना जर्जरितमुखभागां वेणुलतामादाय नरपतिप्रतिबोधनार्थं[1] सकृत्स[2]भाकुट्टिममाजघान, येन सकलमेव तद्राज[3]कमेकपदे वनकरियूथमिव तालशब्देन युगपदा[4]-वलितवदनमवनिपालमुखादाकृष्य चक्षुस्तदभिमुखमासीत् ।

आलोक्य चेति । राजानमालोक्य वीक्ष्य सा चाण्डालकन्यका सहसैव नृपसंनिधौ गमनमनभिज्ञलक्षणमिति दूरस्थितैव दविष्ठप्रदेशस्थैव वेणुलतां वंशयष्टिमादाय गृहीत्वा । नरेति । नरपते राज्ञः प्रतिबोधनं संमुखीकरणं तदर्थं सभाकुट्टिमं परिषद्बद्धभूमिं सकृदेकवारं पाणिना हस्तेनाजघान ताडयामास । अथ पाणिं विशेषयन्नाह—प्रचलितमिति । प्रचलितं प्रकम्पितं रत्नवलयं मणिखचितकङ्कणं यस्मात्स तथा तेन । रक्तमिति । रक्तं यत्कुवलयं कुवेलं तस्य दलानि पत्राणि तद्वत्कोमलेन सुकुमारेण । अनेन लक्षणोपेतत्वं हस्तस्य सूचितम् । वेणुयष्टिं विशेषयन्नाह—जर्जरितेति । जर्जरितो जर्जरीभूतो मुखभागोऽग्रभागो यस्याः सा तथा ताम् । अग्रभागदलनाच्छब्दविशेषो जायत इति प्रसिद्धेः । येनेति । येन ध्वनिना सकलमेव तद्राजकं राजसमूहः । युगपदिति । युगपत्समकालमावलितं परावर्तितं वदनं मुखं येनैवंभूतं तदभिमुखं तस्याः संमुखमासीदभवत् । किं कृत्वा । आकृष्याकर्षणं कृत्वा । कस्मात् । अवनिपालमुखाद्राजवदनात् । किम् । चक्षुर्नेत्रम् । तत्रोपमानम् । किमिव । वनकरिणामरण्यहस्तिनां यूथमिव समूहमिव । केन । तालशब्देन तालो वाद्यविशेषस्तस्य शब्देन तदुत्थध्वनिना एकपद एककालम् । एकश्रेणीभूतत्वमात्रे दृष्टान्तः ।

विशेष—प्रस्तुत गद्य-खण्ड में अशेषजन भोग्यता....से अन्त तक विरोधाभास अलंकार की अनुपम छटा है । विरोधाभास में आरम्भ में तो विरोध का ज्ञान होता है पर अन्त में अर्थ का विरोध परिहृत हो जाता है । इसीलिए ऐसे स्थलों में श्लेष के चमत्कार का सहायक होकर रहना आवश्यक हो जाता है । परिसंख्या और विरोधाभास अलंकारों के प्रयोग में कवि को कमाल हासिल है । उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि अलंकार भी यथास्थान अर्थों की चारुता का सम्पादन करते ही हैं । इस तरह अलंकार योजना अर्थ को हृदयंगम बनाने तथा प्रतीति को मधुर करने में नितान्त उपयोगी होकर कवि के वाक्य-कदम्ब में व्यवस्थित है ।

दूर खड़ी रह कर ही राजा को देख कर उस मातंगकुमारी ने हिलते हुये रत्न के कंगनों वाले तथा लाल कमल के समान कोमल हाथ से बाँस की उस छड़ी को—जिसका अग्रभाग जर्जर हो गया था राजा को सावधान करने के लिये एक बार सभा मण्डप के फर्श पर पटका जिससे सभी राजा लोग एक साथ ही महाराज शूद्रक के मुखावलोकन से मुड़ कर उसकी (चाण्डाल कन्यका की) ओर इस तरह देखने लगे जैसे ताल के शब्द को सुनकर जंगली हाथियों का झुण्ड उसी ओर देखने लगता है ।

---

१. प्रबोधनार्थम्, २. असकृत, ३. राजन्यकं, ४. तेन वेणुलताध्वनिना युगपत्,

अवनिपतिस्तु 'दूरादालोकय' इत्यभिधाय प्रतीहार्या निर्दिश्यमानां तां वयः-परिणामशुभ्र[1]शिरसा रक्तराजीवने[2]त्रापाङ्गेनानवरतकृतव्यायामतया यौवनापगमेऽप्य-शिथिलशरीरसंधिना सत्यपि मातङ्गत्वे नातिनृशंसाकृतिनानुगृहीतार्यवेषेण शुभ्र[3]वाससा पुरुषेणाधिष्ठितपुरोभागाम्, आकुलाकुलकाकपक्षधारिणा कनकशलाकानिर्मितमप्यन्त-र्गतशुकप्रभाश्यामायमानं मरकतमयमिव पञ्जरमुद्वहता चाण्डालदारकेणानुगम्यमानाम्,

अवनीति। अवनिपती राजा तु तामनिमिषे निमेषोन्मेषवर्जिते लोचने यस्यैवंभूतो ददर्शेत्यन्वयः। कथंभूतां ताम्। निर्दिश्यमानां लोचनविषयीक्रियमाणाम्। कया। प्रतीहार्या द्वाररक्षानियुक्तया। किं कृत्वा। अभिधाय कथयित्वा। किम्। दूरादालोकयेति दूरादेव प्रेक्ष-स्वेति। राज्ञ इति शेषः। इतश्चाण्डालकन्यकां विशेषयन्नाह—अधीति। अधिष्ठित आश्रितः पुरोभागो यस्याः सा तथा ताम्। केन। पुरुषेण पुंसा। तमेव पुरुषं विशेषयन्नाह—वय इति। वयसः परिणामेन वार्धक्येन शुभ्रं श्वेतम्। आधाराधेययोरभेदोपचारात्। शिरो मौलिर्यस्य स तथा तेन। रक्तेति। रक्तं लोहितं यद्राजीवं कमलं तद्वन्नेत्रापाङ्गो लोचनप्रान्तौ यस्य स तथा तेन। अनवरतेति। अनवरतं निरन्तरं कृतो विहितो व्यायामः परिश्रमः (येन सः) तस्य भावस्तत्ता तया यौवनापगमेऽपि तारुण्यनिवृत्तावपि न शिथिलाः श्लथाः शरीरस्य संधयो धातू-नामस्थ्यादीनां च बन्धा यस्य स तथा तेन। सत्यपीति। सत्यपि विद्यमानेऽपि मातङ्गत्वे चाण्डालत्वे नातिनृशंसातिक्रूराकृतिराकारो यस्य स तथा तेन। अन्विति। अनुगृहीतः स्वीकृत आर्यस्य सभ्यस्य वेषो नेपथ्यं येन स तथा तेन। शुभ्रमिति। शुभ्रं श्वेतं वासो वस्त्रं यस्य स तथा तेन। पुनस्तां किं क्रियमाणाम्। अनुगम्यमानामनुव्रज्यमानाम्। केन। चाण्डालदारकेणा-न्त्यजसूनुना। तमेव विशिनष्टि—आकुलेति। आकुलाकुल इतस्ततः संलग्नो यः काकपक्षः शिखा तां धत्त इत्येवंशीलस्तथा तेन। 'सा बालानां काकपक्षः शिखण्डकशिखाण्डकौ' इति कोशः। किं कुर्वता तेन। उद्वहता धारयता। किम्। पञ्जरं पक्षिरक्षणस्थलम्। अथ पञ्जरं विशेषयन्नाह—कनकेति। कनकस्य सुवर्णस्य याः शलाका इषीकास्ताभिर्निर्मितं रचितम्। कनकस्य पीतत्वाद्बहिःपीतमपि तदन्तर्गतः शुकः कीरस्तस्य प्रभा कान्तिस्तया श्यामायमानं श्याममिव दृश्यमानम्। किमिव। मरकतमयमिव मरकतमश्मगर्भं तन्निष्पन्नमिव।

दूर से ही महाराज का दर्शन करो—ऐसा निर्देश प्रतीहारी ने किया और महाराज शूद्रक ने भी उसे अपलक नयनों से देखा। उसके आगे एक बूढ़ा व्यक्ति था जिसके सिर के बाल बुढ़ापे के कारण सफेद हो गये थे, रक्त कमल के समान जिसके लोचन अरुण थे, जवानी के ढलजाने पर भी निरन्तर कसरत करते रहने से जिसके शरीर की कसावट में कमी नहीं आ पाई थी, चाण्डाल होने पर भी जिसकी आकृति अधिक क्रूर नहीं थी, वह जो सभ्य वेष में था तथा उजले कपड़े पहने हुये था। उसके पीछे एक चाण्डाल जाति का ही लड़का था, जिसके सिर पर बिखरे हुये बाल थे और मयूर के पंखों की टोपी थी, वह हाथ में सोने के तारों से बने रहने पर भी भीतर विराजमान तोते की श्यामल प्रभा से मरकत मणि से बनाये हुए

१. पाण्डुर, २. ईक्षणा, ३. धवल,

असुरगृहीतामृतापहरणकृतकपटपटुविलासिनी[1]वेषस्य[2] श्यामतया भगवतो हरेरिवानुकुर्वतीम्, संचारिणीमिवेन्द्र[3]नीलमणिपुत्रिकाम्[4], गुल्फावलम्बिनील[5]कञ्चुकेनावच्छन्नशरीराम्, उपरिरक्तांशुकरचितावगुण्ठनाम्, नीलोत्पलस्थलीमिव निपतितसंध्यातपाम्, एककर्णावसक्त[6]दन्तपत्रप्रभाधवलितकपोलमण्डलाम्, उद्यदिन्दु[7]किरणच्छुरितमुखीमिव विभावरीम्, आकपिलगोरोचनारचिततिलकतृतीयलोचनामीशानरचितानु[8]रचित-

---

किं कुर्वतीम्। अनुकुर्वतीं सादृश्यमनुभवन्तीम्। कस्य। भगवत ऐश्वर्यवतो हरेरिव कृष्णस्येव, कया। श्यामतया। कृष्णत्वेनेत्यर्थः। कीदृशस्य हरेः। असुरेति। असुरैर्दैत्यैर्गृहीतं यदमृतं तस्य यदपहरणमपहृतिस्तत्र कृतो विहितो यः कपटेन कैतवेन पटुः प्रकटो विलासिनी मोहिनी स्त्री तस्या वेष आकृतिर्येन स तथा तस्य। तदुक्तम्—'हरिस्त्वामाराध्य प्रणतजनसौभाग्यजननीं पुरा नारी भूत्वा पुररिपुमपि क्षोभमनयत्' इति। पुनस्तामेव विशेषयन्नाह—संचारेति। संचारिणीं संचरणशीलां जङ्गमप्राणिरूपामिन्द्रनीलमणिपुत्रिकामिवेन्द्रमणिपाञ्चालिकामिव। गुल्फेति। गुल्फावलम्बी घुटिकावलम्बी यो नीलकञ्चुको हरित्कूर्पासकस्तेनावच्छन्नमाच्छादितं शरीरं देहो यस्याः सा तथा ताम्। उपरीति। उपर्यूर्ध्वप्रदेशे रक्तांशुकस्य लोहितवाससो रचितं कृतमवगुण्ठनं मुखाच्छादनं यया सा तथा ताम्। पुनः प्रकारान्तरेण तामेव विशिनष्टि—नीलोत्पलेति। निपतित उपरिप्राप्तः संध्यासम्बन्धी सायंकालसक्त आतपो घर्मो यस्यामेतादृशीं नीलानामुत्पलानां कुवलयानां स्थलयकृत्रिमा तामिव। 'जानपद'—इति ङीष्। एकेति। एकस्मिन्कर्णपर्यन्तेऽवसक्तं लग्नं यद्दन्तपत्रं कर्णाभरणविशेषस्तस्य या प्रभा कान्तिस्तया धवलितं शुभ्रीकृतं कपोलमण्डलं गल्लात्परप्रदेशो यस्याः सा तथा ताम्। अनेनावलोकनचातुरीविशेषः सूचितः। उद्यदिन्द्विति। उद्यन्नुदयमासादयन्य इन्दुश्चन्द्रस्तस्य किरणैर्दीधितिभिश्छुरितं ध्वान्तनिवृत्या सप्रकाशं मुखं यस्यास्तादृशीं विभावरीं रात्रिमिव। एतेन रात्रिनायिकयोर्दन्तपत्रचन्द्रयोश्च साम्यं सूचितम्। आकपिलेति। आ ईषत्कपिलं पीतरक्तं यद्गोरोचनं गोपित्तं तेन रचितं निर्मितं यत्तिलकं पुण्ड्रं तदेव तृतीयं लोचनं यस्याः सा तथा ताम्। कामिव।

जैसे पींजड़े को लिये हुये था। वह असुरों द्वारा छीने गये अमृत को वापस ले लेने के लिये कपट पूर्ण मोहिनी रूप धारण करने वाले भगवान् विष्णु के रूप का अनुकरण करने वाली थी, श्यामल वह इन्द्रनील मणि की बनी हुई जंगम पुतली सी थी, नीले रंग के लहङे से एड़ी तक उसका शरीर ढका हुआ था, ऊपर लाल रंग की ओढ़नी ओढ़े हुये थी—इस वेष से वह लगती थी कि नील कमल की स्थली पर सन्ध्या के अरुण आतप आ पड़े हों। उसके एक कान में लटकने वाले हाथी के दाँतों से निर्मित कर्णाभरण की उज्ज्वल प्रभा से उसका गाल गौरवर्ण का प्रतीत हो रहा था, फलतः उगते हुये चन्द्रमा की किरणों से धवलित रात्रि के मुख अर्थात् प्रारम्भिक भाग जैसा वह प्रतीत हो रहा था। वह किञ्चित् पीत वर्ण की गोरोचना

---

१. कपटविलासिनी, २. वेषश्यामलतया, ३. संचारिणीमिन्द्र, ४. पुत्रिकामिव, ५ आगुल्फावलम्बिना, ६. अवमुक्त, ७. इन्दुबिम्ब, ८. ईशानरञ्जनोनुरचित; ईशानुरचित; ईशानाचरितानुरचित,

किरातवेषामिव भवानीम्, उरःस्थलनिवाससंक्रान्तनारायणदेहप्रभाश्यामलिता[1]मिव श्रियम्, कुपितहरहुताशनदह्यमानमदनधूममलिनीकृतामिव रतिम्, उन्मद[2]हलिहला[3]-कर्षण[4]भयपलायितामिव[5]कालिन्दीम्, अतिबहलपिण्डालक्तकरसरागपल्लवितपाद-पङ्कजामचिरमृदितमहिषासुररुधिररक्तचरणामिव कात्यायनीम् आलोहिताङ्गुलिप्रभा-पाटलितनखमयूखाम्, अतिकठिनमणिकुट्टिमस्पर्शमसहमानां क्षितितले पल्लवभङ्गानिव

ईशानेन महादेवेन रचितो विहितस्तदनु यो रचितः किरात्या भिल्ल्या वेषो नेपथ्यं यया सैवंभूता भवानी पार्वती तामिव। श्रियमिति। श्रियं लक्ष्मीमिव। अथ लक्ष्मीं विशिनष्टि—उरःस्थलेति। उरःस्थले वक्षसि यो निवासो निवसनं तेन संक्रान्तः प्रतिबिम्बितो यो नारायणस्य श्रीकृष्णस्य देहः शरीरं तस्य या प्रभा तया श्यामलितां श्यामतां प्राप्ताम्। एतेन लक्ष्मीचाण्डाल-कन्यकयोः साम्यं ध्वनितम्। रतिमिति। रतिः कामस्त्री तामिव। कीदृशीम्। कुपित इति। कुपितः क्रोधं प्राप्तो यो हर ईश्वरस्तस्य हुताशनस्तृतीयलोचनोद्गतो वह्निस्तेन दह्यमानो ज्वाल्य-मानो यो मदनो जराभीरुस्तस्य धूमो दहनकेतुस्तेन मलिनीकृतां मालिन्यं प्राप्ताम्। पुनः कामिव। कालिन्दीमिति। कालिन्दी यमुना तामिव। यमुनां विशेषयन्नाह—उन्मदेति। उन्मदस्य प्रबलगर्वस्य हलिनो बलभद्रस्य यद्धलं लाङ्गलं तेन यदाकर्षणमाकृष्टिस्तस्माद्भयं साध्वसं तस्मात्पलायितां नष्टाम्। अतीति। अतिबहलोऽतिप्रचुरो यः पिण्डालक्तकः पिण्डीकृतो यावकस्तस्य रसो द्रवस्तस्य रागो रक्तिमा तेन पल्लवितं संजातकिसलयं पादपङ्कजं यस्याः सा तथा ताम्। कामिव। अचिरेति। अचिरं तत्कालं मृदितो मर्दितो यो महिषासुरो दैत्यस्तस्य यद्रुधिरमास्नेयं तेनारक्तौ लोहितौ चरणौ पादौ यस्या एवंविधां कात्यायनीं दुर्गामिव। आलोहितेति। आलोहिता आरक्ता या अङ्गुलयः करशाखास्तासां प्रभा दीप्तिस्तया पाटलिताः श्वेतरक्तीकृता नखमयूखाः पुनर्भवदीप्तयो यस्याः सा तथा ताम्। यद्यपि नखानां स्वत एवारुण्यात्पाटलत्वमस्त्येव, तथापि मिथो मिश्रीभाव एव पाटलत्वं बोध्यम्। चरणयोः पल्लववर्णनप्रयोजनमाह—अतीति। अतिकठिनमतिकर्कशं यन्मणिकुट्टिमं मणिबद्धभूस्तस्य स्पर्शं संश्लेषमसहमानामक्षममानाम्। क्षितीति। क्षितितले धरणीतले पल्लवभङ्गानिव

का तिलक लगाने से ऐसी ज्ञात होती थी कि भगवान् शंकर के किरात वेष का अनुकरण करने वाली तीन नेत्रों से युक्त भवानी हो। वह प्रतीत होती थी कि हृदय में श्यामल देह धारी भगवान् नारायण को धारण करने से उनकी शरीर प्रभा से साँवली बनी हुई लक्ष्मी हो, वह लगती थी कि क्रुद्ध शंकर के नेत्रानल में जलते हुए काम के शरीर से उत्थित धूम से मलिन बनाई गई रति हो, मदमत्त बलराम के हल से खींच लेने के डर से भगी हुई जैसे यमुना हो, वह अत्यन्त गाढ़े अलक्तक के लाल रंग से निर्मित पल्लव आदि के चित्रों से चित्रित पदारविन्द वाली थी मालूम होता था कि तत्काल मारे गये महिषासुर के रक्त से रंजित चरणों वाली कात्यायनी हो, उसके नख की कान्ति आरक्त अंगुलियों की आभा से रंजित थी, ऐसा भासित होता था कि अत्यन्त कठोर रत्नों से निर्मित फर्श के स्पर्श को सहन न कर सकने के कारण

१. श्यामलतां, २. उन्मत्त, ३. हलापकर्षण, ४. कर्षणप्रपलायिताम्, ५. ममुनाम्

निधाय संचरन्तीम्, आपिञ्जरेणोत्सर्पिणा नूपुरमणीनां प्रभाजालेन[1] रञ्जितशरीरतया पावकेनेव भगवता रूप[2] एव पक्षपातिना प्रजापतिमप्रमाणीकुर्वता जातिसंशोधनार्थमालिङ्गितदेहाम्, अनङ्गवारणशिरोनक्षत्रमालायमानेन रोमराजिलतालवालकेन रशनादाम्ना[3] परिगतजघनाम्[4], अतिस्थूलमुक्ताफलघटितेन शुचिना[5] हारेण गङ्गास्रोतसेव कालिन्दीशङ्कया कृतकण्ठग्रहाम्, शरदमिव विकसितपुण्डरीकलोचनाम्, प्रावृषमिव घनकेश-

---

किसलयखण्डानिव निधाय स्थापयित्वा संचरन्तीं चलनं कुर्वतीमित्युत्प्रेक्षा। आलिङ्गित इति। आलिङ्गित आश्लिष्टो देहः शरीरं यस्याः सा तथा ताम्। केन भगवता माहात्म्यवता पावकेन वह्निना। अथ पावकं विशेषयन्नाह—रूपे सौन्दर्ये एव पक्षपातिनानुरक्तचित्तेन प्रजापतिं ब्रह्माणमप्रमाणीकुर्वता। तदङ्गीकारादिति भावः। कथा। आपिञ्जरेति। आपिञ्जरेण पीतरक्तेन। 'पीतरक्तस्तु पिञ्जरः' इत्यभिधानचिन्तामणिः। उत्सर्पिणा सर्वतः प्रसारिणा नूपुरस्य हंसकस्य मणयो रत्नानि तेषां प्रभास्त्विषस्तासां जालेन समूहेन रञ्जितं यच्छरीरं तस्य भावस्तत्ता तया हेतुभूतया। एतेन नूपुरमणिप्रभावह्न्योः परस्परमुपमानोपमेयभावः सूचितः। तदालिङ्गनप्रयोजनमाह—जातीति। विधात्रा चाण्डालजात्याक्रान्ता निर्मिता। सा च सर्वथाऽस्पृश्यैवाशुचित्वात्। अशुचिर्वह्निना शुचिः स्यादिति तदालिङ्गने प्रयोजनमिति भावः। रशनेति। रशना कटिमेखला सैव दाम बन्धनरज्जुस्तेन परिगतं समन्ताद्व्याप्तं जघनं कट्याः पुरोभागो यस्याः सा ताम्। 'कट्याः क्लीबे तु जघनं पुरः' इत्यमरः। मेखलादाम विशेषयन्नाह—अनङ्गेति। अनङ्ग एव वारणो गजस्तस्य शिरसि शोभार्थं नक्षत्रमालावदाचरमाणेन। रोमेति। रोमराजिरेव लता वल्ली तस्य आलवालकेनावापेनेति रूपकम्। अतीति। अतिस्थूलानि यानि मुक्ताफलानि तैर्घटितो निष्पादितस्तेन शुचिना विशदेन हारेण चतुःषष्टिलतेन। 'चतुःषष्टिलतो हारः' इत्यमरः। अत एव विशदत्वम्। गङ्गास्रोतसेव गङ्गाप्रवाहेणेव। चाण्डालकन्यकायाः श्यामत्वात् कालिन्दीशङ्कया यमुनाभ्रान्त्या कृतः कण्ठग्रहो गलसंश्लेषो यस्याः सा तथा ताम्। पुनः कामिव। शरदमिव वर्षात्ययमिव। उभयोः शब्दसाम्यं प्रदर्शयन्नाह—विकसितेति। विकसितानि पुण्डरीकाण्येव लोचनानि यस्याः सा तथेति विग्रहः। शरदि सर्वत्रापि कमलाना-

---

भूतल पर मानों पल्लवों के टुकड़ों को—जो उसके चरणों में महावर से बनाये जाने से प्रतिबिम्बित हो रहे थे—रख २ कर चल रही हो, किंचित् पीत और ऊपर उठने वाली नूपुर में जटित पीत रत्नों की किरणों से शरीर के रँग जाने से ऐसा लगता था कि रूप के पक्षपाती भगवान् पावक विधाता के निर्माण को अप्रामाणिक बनाने के लिये उसकी जाति के संशोधनार्थ उसके शरीर का आलिंगन किये हों, उसका नितम्ब उन मेखला की लड़ियों से घिरा था जो कामदेव रूपी हाथी के मस्तक पर नक्षत्र माला की भाँति थी तथा जो रोमावली रूपी लता के आलवाल (क्यारी) के समान भासित होती थी। बड़े २ मोती के दानों से निर्मित उज्ज्वल हार को गले में पहनने से मालूम होती थी कि श्यामल वर्ण होने से उसे यमुना समझ कर उज्ज्वल

---

१ जालकेनानुरञ्जित, २ रूपैकपक्षपातिना; रूपपक्षपातिना, ३ मेखला, ४ जघनस्थलाम्, ५ शुचिहारेण,

जालाम्, मलयमेखलामिव चन्दनपल्लवावतंसाम्, नक्षत्रमालामिव चित्रश्रवणाभरण-भूषिताम्, श्रियमिव हस्तस्थितकमलशोभाम्, मूर्च्छामिव मनोहारिणीम्[1], अरण्यभूमिमिव रूपसंपन्नाम्[2] दिव्ययोषितमिवाकुलीनाम्, निद्रामिव लोचनग्राहिणीम्, अरण्यकमलि-

मुन्निद्रत्वेन तथा संभवात्। पक्षे विकसितपुण्डरीकवल्लोचने यस्याः सा तथेति विग्रहः। पुनः कमिव। प्रावृषमिव। वर्षाकालमिव। उभयोर्विशेषणसाम्यमाह—घनेति। घना निबिडा ये केशास्तेषां जालानि यस्याम्। पक्षे घना एव केशजालानि यस्यामिति विग्रहः। मलयेति। मलयस्य पर्वतस्य मेखला मध्यभागस्तमिव। उभयोः सादृश्यमाह—चन्दनेति। चन्दनस्य पल्लवाः किसला (लया) नि तेषामवतंसा यस्यां सा ताम्। पक्षे चन्दनपल्लवास्त एवावतंसः शेखरो यस्यामिति विग्रहः। नक्षत्रेति। नक्षत्राणामुडूनां माला पंक्तिस्तामिव। उभयोः सादृश्य-माह—चित्रेति। चित्राणि विविधप्रकाराणि श्रवणे कर्णे आभरणानि भूषणानि यस्याः सा ताम्। पक्षे चित्राश्रवणावेव आभरणे ताभ्यां भूषितेति विग्रहः। श्रियमिति। श्रीर्लक्ष्मीस्तामिव। उभयोः साम्यं प्रदर्शयन्नाह—हस्तेति। हस्ते पाणौ स्थिता कमलस्य पद्मस्य शोभा श्रीर्यस्याः सा ताम्। पक्षे हस्ते स्थितं यत्कमलं तेन शोभा यस्या इति विग्रहः। मूर्छेति मूर्च्छा मोहस्तामिव। एतयोः साम्यमाह—मनोहारिणीमिति। सुन्दराकृतित्वेन मनोहरामित्यर्थः। पक्षे नष्टचेतनात्मकत्वेन मनोहारिणीमिति भावः। अरण्येति। अरण्यमटवी तस्य भूमिः क्षितिस्तामिव। उभयोः सादृश्यमाह—रूपेति। रूपमाकृतिविशेषस्तेन संपन्नां सहिताम्। पक्षे रूपाः पशवस्तैः संपन्नां संगताम्। 'रूपं तु श्लोकशब्दयोः। पशावाकारे सौन्दर्ये' इत्यनेकार्थः। दिव्येति। दिव्या देवसम्बन्धिनी योषित्स्त्री तामिव। उभयोः सादृश्य-माह—अकुलीनामिति। अकुलीनामकुलोत्पन्नाम्। 'कुलात्खः'। खस्येनादेशः। पक्षे न कौ पृथिव्यां लीनां स्थिताम्। निद्रेति। निद्रा प्रमीला तामिव। उभयोः सादृश्यं प्रदर्शयन्नाह—लोचनेति। अत्यद्भुतरूपवशात्कामिजनानां लोचनग्राहिणीं नेत्राकर्षिणीम्। पक्षे निमेषोन्मेष-सहिते लोचने ग्रहीतुं शीलमस्या इति शीले णिनिः। नान्तत्वान्ङीप्। अरण्येति। अरण्यं वनं

धारा वाली गंगा इसके गले से लिपट गई हो। खिले हुये उज्ज्वल कमल के समान लोचनों के कारण वह शरद के समान मालूम होती थी, वह सघन केशों के कारण घन (बादल) रूपी केश पाश वाली वर्षा ऋतु प्रतीत होती थी। चन्दन के पल्लवों का आभूषण धारण करने के कारण मलयाचल की मध्यभूमि जैसी दिखती थी। वह चित्रा, श्रवण, भरणी आदि से विभूषित नक्षत्रमाला की भाँति विचित्र कर्णालंकारों से अलंकृत थी। हाथ में विराजमान कमल की शोभा से वह लक्ष्मी जैसी मालूम पड़ती थी। चेतना को हर लेने के कारण वह मूर्छा के समान भासित होती थी। अकृत्रिम शोभा से सम्पन्न होने के कारण वह जंगली भूमि सी लगती थी। कुलीनता के अभाव में वह स्वर्गीय रमणीय (अप्सरा) की भाँति प्रतीत होती थी। आँखों को पकड़ लेने (आकृष्ट कर लेने) से वह निद्रा जैसी लगती थी।

१ मनोहराम्, २ अक्षतरूपसंपन्नाम्; अन्याक्षतबहुशोभिरूपाम्,

नीमिव मातङ्गकुलदूषिताम्, अमूर्तामिव स्पर्शवर्जिताम्, आलेख्यगतामि व दर्शनमात्र-फलाम्, मधुमासकुसुमसमृद्धिमिवाजातिम्[१], अनङ्गकुसुमचापलेखामिव मुष्टिग्राह्यमध्याम्, यक्षाधिपलक्ष्मीमिवालकोद्भासिनीम्, अचिरोपारूढ[२] यौवनाम्, अतिशयरूपाकृतिमनिमिष[३]लोचनो ददर्श।

[४]समुपजातविस्मयस्या[५]भून्मनसि महीपतेः—'अहो विधातुरस्थाने सौन्दर्य-निष्पादनप्रयत्नः[६]। तथा हि—यदि नामेयमात्मरूपोपहसिताशेषरूपसंपदुत्पादिता,

---

तस्य या कमलिनी तामिव। उभयोः सादृश्यमाह। मातंगेति। मातङ्गश्चाण्डालस्तस्य कुल-मन्वयस्तेन दूषितां मलिनीकृताम्। पक्षे मातङ्गकुलेन हस्तिसमुदायेन दूषिताम्। मर्दितामित्यर्थः। अमूर्तेति। अमूर्तेयत्तावच्छिन्नपरिमाणशून्या बुद्धिस्तामिव। उभयोस्तुल्यत्वमाह—स्पर्श इति। स्पर्शः संश्लेषः शिष्टानां तेन वर्जितां रहिताम्। अकुलीनत्वादेव। पक्षे स्पर्शो गुणस्तद्वर्जितां रहिताम्। अमूर्तत्वादेव। आलेख्येति। आलेख्यं चित्रं तत्र गतां प्राप्तां पुत्रिकामिव। उभयोः साम्यमाह—दर्शनेति। चाण्डालत्वादेव न भोगफलकत्वमस्याः। अत एव दर्शनमालोकन-मात्रमेव फलं प्रयोजनं यस्याः सा तथा ताम्। पक्षेऽपि तथैव बोध्यम्। मधिवति। मधुमासे वसन्तसमये या कुसुमसमृद्धिस्तामिव। उभयोस्तुल्यतां प्रदर्शयन्नाह—अजातिमिति। न विद्यते जातिर्ब्राह्मणत्वादिर्यस्यां सा ताम्। पक्षे न विद्यते जातिर्मालती यस्यां सा तथा ताम्। 'वसन्ते मालतीपुष्पं फलपुष्पं च चन्दने। न वर्णनीयम्' इति कविप्रसिद्धरपि। अनङ्गेति। अनङ्गस्य मदनस्य कुसुमचापस्य पुष्पधनुषो या लेखा तामिव। उभयोः साम्यं प्रदर्शयन्नाह—मुष्टीति। मुष्टिना ग्राह्यो ग्रहीतुं शक्यो मध्यो मध्यप्रदेशो यस्याः सा ताम्। यक्षाधिपलक्ष्मीमिति। यक्षाधिपानां गुह्यकेश्वराणां लक्ष्मीर्हरिप्रिया तामिव। उभयोः सादृश्यमाह—अलकेति। अलकैः केशैरुद्भासयत इत्येवंशीला सा तथा ताम्। पक्षे अलकाभिर्नगरीभिरुद्भासिनीति विग्रहः। अचिरेति। अचिरं त्वरितमुपारूढं प्राप्तं यौवनं तारुण्यं यया ताम्। संप्राप्तयौवनामित्यर्थः। अतीति। अतिशयरूपोत्कृष्टाकृतिराकारो यस्याः सा तथा ताम्। अन्वयस्तु प्रागेवोक्तः।

मनसीति। मनसि जातो विस्मय आश्चर्यं यस्यैवंभूतस्य महीपते राज्ञः। एवमित्य-ध्याहार्यम्। अभूदित्यन्वयः। एवमित्यस्य विषयमाह—अहो इति। अहो इति वितर्के।

हाथियों के झुण्ड से सम्मर्दित अरण्य कमलिनी की भाँति वह मातंग कुल में उत्पन्न होने के कारण दूषित थी। स्पर्श के योग्य न होने के कारण वह मूर्ति हीन सी लगती थी। वह दर्शन मात्र फल होने के कारण लगती थी जैसे चित्र में बनी हो। चमेली (जाति) के विना वासन्तिक सुषमा की समृद्धि के समान वह भी जातिहीन थी। काम के पुष्प चाप का मध्य जैसे मुट्ठी में पकड़ने योग्य रहता है वैसे ही इसका भी मध्य (कमर) मुट्ठी में पकड़ लेने योग्य था। अलकापुरी को उद्भासित करने वाली कुबेर की लक्ष्मी के समान वह भी अपने अलकों (बालों) से उद्भासित होने वाली थी। नई नई जवानी इसके शरीर पर अभी अभी उपारूढ़ हुई है और अनुपम सौन्दर्य से मण्डित उसका आकार था।

---

१. विजातिम्, २. उपरूढ, ३. अनिमेष, ४. जात; दृष्ट्वा च तां समुपजात, ५. चाभूत, ६. रूपनिष्पादनप्रयत्नः; रूपविधानप्रयत्नः

किमर्थमपगतस्पर्शसंभोगसुखे कृतं कुले जन्म[1]। मन्ये च मातङ्गजातिस्पर्शदोषभयाद-स्पृश्यतेयमुत्पादिता[2] प्रजापतिना अन्यथा कथमियमक्लिष्टता लावण्यस्य। नहि[3] करतलस्पर्शक्लेशितानामवयवानामीदृशी भवति कान्तिः। सर्वथा धिग्धिग्विधाता-रम[4]सदृशसंयोगकारिणम्, मनोहरा[5]कृतिरपि क्रूरजातितया[6] येनेयमसुरश्रीरिव सततनिन्दितसुरता रमणीयाप्युद्वेजयति' इति। एवमादि चिन्तयन्तमेव राजानमीषद्-

विधातुर्ब्रह्मणोऽस्थानेऽपदे सौन्दर्यस्याद्भुतरूपस्य निष्पादनं निर्माणं तत्र प्रयत्नः परिश्रमः। तदेव दर्शयति—तथाहीति। नामेति कोमलामन्त्रणे। यदियं चाण्डालकन्यकाऽऽत्मनः स्वकीयस्य रूपेण सौन्दर्येणोपहसितोपहासस्यास्पदीकृताशेषरूपसंपत्समग्रसौन्दर्यसमृद्धिर्यया सैवंविधो-त्पादिता निर्मिता। किमर्थं किंप्रयोजनम्। अपगते दूरीभूते स्पर्शः संश्लेषः संभोगसुखं सुरतसातं ते च यस्मिन्नेवंभूते कुले जन्मोत्पत्तिः कृतं विहितम्। किमर्थमिति विमर्शे निश्चय-माह—मन्ये चेति। मन्ये जाने। अहमिति शेषः। प्रजापतिना ब्रह्मणाऽस्पृशता स्पर्शमकुर्वते-यम्। उत्पादिता निष्पादिता। अत्रार्थे हेतुमाह—मातङ्गेति। मातङ्गस्य जातिः यातिस्तस्याः स्पर्शः संश्लेषस्तज्जनितो यो दोषस्तस्माद्यन्द्भयं भीतिस्तस्मादित्यर्थः। विपर्यये बाधकमाह—अन्यथेति। अन्यथा पूर्वोक्तविपर्यये। लावण्यस्य लवणिम्नः। कथमिति प्रश्ने। इयं प्रत्यक्षोप-लक्ष्यमाणाऽक्लिष्टता कोमलत्वं स्यात्। अत्रार्थे हेतुमाह—नहीति। करतलस्पर्शक्लेशिता-नामवयवानां कुचादीनाम्। ईदृशी एतादृशी कान्तिः सौकुमार्यं नहि भवति न स्यात्। सर्वथेति। सर्वथा सर्वप्रकारेण। धिग्धिगिति खेदातिशय आम्रेडितम्। विधातारं ब्रह्माणम-सदृशोऽनुचितो यः संयोगः संबन्धस्तत्कारिणम्। येनासदृशसंयोगेनेयं चाण्डालकन्यका मनोहरा-कृतिरपि क्रूरजातितया चाण्डालजातितयासुराणां दैत्यानां श्रीर्लक्ष्मीस्तद्वदिव। सततमिति। सततं निरन्तरं निन्दितं गर्हितं सुरतं मैथुनं यस्यां सैवंविधा रमणीयापि संभोगयोग्याप्यु-द्वेजयति। वैचित्र्यमुत्पादयतीत्यर्थः। पक्षे सततं निन्दिता सुरता सुरसमूहो ययेति दैत्यलक्ष्म्या विशेषणम्। एवमिति। एवमादि पूर्वोक्तप्रकारेण चिन्तयन्तं विमर्शं कुर्वाणमेव राजानं नृपं

इस अनुपम सुन्दरी को देखने के कारण आश्चर्य चकित होकर राजा सोचने लगा—खेद का विषय है कि विधाता के सौन्दर्य सम्पादन का प्रयास अनुचित स्थान में हो गया। यदि यह सभी सुन्दर रूप वालों को उपहास करने योग्य सौन्दर्य से सम्पन्न बनाई गई थी तब स्पर्श और संभोग के सुख से वंचित रहने योग्य कुल में क्यों इसको उत्पन्न किया ? मुझे भासित हो रहा है कि प्रजापति ने भी मातंग जाति की होने के कारण विना स्पर्श किये ही इसका निर्माण किया है अन्यथा इसमें लावण्य की यह कोमलता कैसे रह सकती थी। कठोर हाथ के स्पर्श से क्लेश पहुँचाये गये अंगों की कान्ति ऐसी हो ही नहीं सकती। इस प्रकार अत्यन्त विरुद्ध रचना करने वाले विधाता को बार बार धिक्कार है। क्योंकि यह अत्यन्त मनोहर आकृति की होने पर भी क्रूर जाति की होने के कारण असुरों की लक्ष्मी जैसी ज्ञात होती है जो सुरता (देव जाति) की निन्दा करने वाली है एवं यह सुरत (सम्भोग) के योग्य नहीं क्योंकि हीन

१. अस्या जन्म, २. मनसोत्पादिता, ३. नथाहि, ४. धिग्विधातारम्, ५. अति-मनोहरा, ६. क्रूरजातिजा,

वगलितकर्णपल्लवावतंसा प्रगल्भवनितेव कन्यका प्रणनाम। कृतप्रणामायां च तस्यां मणिकुट्टिमोपविष्टायां स पुरुषस्तं विहङ्गमं[1] शुकमादाय पञ्जरगतमेव[2] किंचिदुपसृत्य राज्ञे न्यवेदयत्। अब्रवीच्च—'देव, विदितसकलशास्त्रार्थः राजनीतिप्रयोगकुशलः, पुराणेतिहासकथालापनिपुणः, वेदिता गीतश्रुतीनाम्, काव्यनाटकाख्या[3]यिकाख्यानकप्रभृतीनामपरिमितानां सुभाषितानामध्येता स्वयं च कर्ता, परिहासाऽऽलापपेशलः,

कन्यका चाण्डालकुमारी प्रणनाम प्रणाममकरोत्। केव। प्रगल्भवनितेव संप्रत्यनारूढयौवनत्वादप्रगल्भापि प्रगल्भवनितेव नमश्चकारेत्यर्थः। अत्र वीतशङ्कत्वं व्यङ्ग्यम्। प्रणेति प्राद्युपसर्गयोगाण्णत्वम्। पुनः कीदृशी। ईषदिति। ईषदल्पमवगलितोऽधःप्रसृतः कर्णे पल्लवस्यावतंसः शेखरो यस्याः सा तथा। अत्र कर्णपदं कटिमेखलादिवज्ज्ञेयम्। तदुक्तम्—'कर्णावतंसादिपदे कर्णादिध्वनिनिर्मित।' इति। 'सर्वदा तत्सांनिध्यबोधनार्थम्' इति काव्यप्रकाशेऽपि। कृतेति। कृतो विहितः प्रणामो नतिर्यया सा तथा तस्याम्। मणीति। मणिकुट्टिमं रत्नबद्धभूमिस्तत्रोपविष्टायां स्थितायाम्। स इति पूर्वोक्तो धवलवासाः पुरुषस्तं विहङ्गमं पक्षिणं शुकं कीरमादाय गृहीत्वा पञ्जरं पक्षिरक्षणस्थलं तत्र गतमेव प्राप्तमेव। न ततः पृथक्कृत्वेत्यर्थः। किंचिद्विनयेन। पुर उपसृत्यागत्य राज्ञे नृपाय न्यवेदयत्प्रदर्शितवान्। अब्रवीच्च। उवाचेत्यर्थः। देवेति संबोधनपदम्। 'राजा भट्टारको देवः' इति कोशः। हे राजन्, अयं वैशम्पायनो नाम वैशम्पायन इति नाम्ना प्रसिद्धः। नामेति कोमलामन्त्रणे। शुको वर्तते। कीदृक्। विदितो ज्ञातः सकलशास्त्राणां धर्माध्यात्मयुक्तिशास्त्राणामर्थोऽभिधेयो येन स तथा। तेन वक्ष्यमाणेन न पौनरुक्त्यम्। इतः शुकं विशेषयन्नाह—राजेति। राजनीतेः कामन्दकप्रतिपादितायाः प्रयोगः शिक्षा तत्र कुशलश्चतुरः। पुराणेति। पुराणं पञ्चलक्षणम्, इतिहासः पुरावृत्तम् तेषां या कथा वार्ता तत्र य आलापस्तदर्थबोधकवाक्यरचना तत्र निपुणश्चतुरः। वेदितेति। गीतं गानम्, श्रुतयो द्वाविंशतिः। तदुक्तम्—'सप्त स्वरास्त्रयो ग्रामा मूर्च्छाश्चैकोनविंशतिः। ताना एकोनपञ्चाशद्द्व्यधिका विंशतिः श्रुतिः॥' इति। तासां वेदिता ज्ञाता। काव्येति। दोषाभावे सति गुणालङ्कारवत्कविकर्म काव्यम्, नाटकमभिनयात्मकम्, आख्यायिका वासवदत्तादिः, आख्यानकमिदानींतनराजवृत्तम्, एतत्प्रभृतीनां सामुद्रिकादीनां तथाऽपरिमितानामसंख्यानां, सुभाषितानां शृङ्गार-

जाति के साथ किया गया सम्भोग निन्दित है—इस तरह रमणीय होने पर भी यह उद्विग्न कर रही है। इसी प्रकार सोचते हुये ही राजा को प्रगल्भ महिला की भाँति—जिसके कान के पल्लव का भूषण थोड़ा खिसक गया था उस मातंग कुमारी ने प्रणाम किया। प्रणाम करने के पश्चात् मणिमय फर्श पर जब वह बैठ गई उसी समय उस पुरुषने पिंजड़े में बन्द शुक पक्षी को लेकर थोड़ा आगे बढ़कर महाराज से निवेदन किया और बोला कि महाराज, यह वैशम्पायन नामक शुक है। यह सभी शास्त्रों का अर्थ जान चुका है, राजनीति के व्यवहार में चतुर है, पुराण और इतिहास की कथाओं को सुनाने में दक्ष है, गान के सूक्ष्म तत्त्व रूप श्रुतियों का जानकार है, काव्य, नाटक, आख्यायिका, आख्यान प्रभृति अपरिमित सुभाषितों का अध्ययन

१. विहङ्गमादाय; विहङ्गमसमादाय, २. गतं किंचित्, ३. नाटकाख्यानक,

वीणावेणुमुरजा[1]दीनामसमः श्रोता, नृत्य[2]प्रयोगदर्शननिपुणः, चित्रकर्मणि प्रवीणः, द्यूतव्यापारे प्रगल्भः, प्रणयकलह[3] कुपितकामिनी[4] प्रसादनोपायचतुरः, गजतुरगपुरुषस्त्री-लक्षणाभिज्ञः, सकलभूतलरत्नभूतोऽयं वैशम्पायनो नाम शुकः सर्वरत्नानामुदधिरिव देवो भाजनमितिकृत्वैनमादायास्मत्स्वामिदुहिता देवपादमूलमायाता। तदयमात्मीयः क्रियताम्' इत्युक्त्वा नरपतेः पुरो निधाय पञ्जरमसावपससार।

नीतिवैराग्यप्रतिपादकानां चाध्येता पाठकः। स्वयमात्मनैव कर्ता निष्पादकश्च। अनेन तस्य सर्वकलासु नैपुण्यं सूचितम्। परीति। परिहासोऽन्येषां नर्मवचनैर्हसनं तस्य च आलापा रसव्यञ्जकशब्दप्रयोगास्तत्र पेशलः कुशलः। वीणेति। वीणाशब्दसमभिव्याहारात्ततम्। तथैव वेणुशब्देन सुषिरम्, मुरजशब्देनानद्धं, आदिशब्दाद्घनं कांस्यतालादि गृह्यते। एतेषामसमोऽद्वितीयः श्रोता आकर्णयिता। नृत्यमिति। नृत्यंताललयाश्रितं तस्य प्रयोगः प्रारम्भो दर्शनमवलोकनं तत्र निपुणोऽभिज्ञः। चित्रेति। चित्रकर्मण्यालेख्यकलायां प्रवीणः। कृतपरिश्रम इत्यर्थः। द्यूतेति। द्यूतं दुरोदरं तस्य व्यापारो व्याहर्तिस्तत्र प्रगल्भः प्रतिभान्वितः। प्रणयेति। प्रणयेन स्नेहेन यः कलहः कलिस्तेन कुपिता कोपं प्राप्ता या कामिनी स्त्री तस्याः प्रसादनं सान्त्वनं तत्र च उपायः प्रपञ्चस्तत्र चतुरोऽभिज्ञः। गजेति। गजा भद्रजातीयाः, तुरगाः शालिहोत्रोक्तदेवमणिप्रभृतयः, पुरुषा धीरोदात्तप्रभृतयः, स्त्रियः पद्मिनीप्रभृतयः, तासां लक्षणानि सामुद्रिकोक्तानि तत्राभिज्ञः कुशलः। सकलेति। सकलं समग्रं यद्भूतलं अर्थाद्भरतक्षेत्रं तत्र रत्नभूतः। स्वजातावत्युत्कृष्ट इत्यर्थः। अयं च प्रत्यक्षेण दृश्यमानः संनिहितः। रत्नं च मुक्तारत्नाश्रयत्वात्। राज्ञो रत्नाकरत्वमाह—सर्वेति। सर्वरत्नानां सर्वोत्कृष्टवस्तूनां भाजनमाश्रयः। क इव। उदधिरिव समुद्र इव। यथोदधिः सर्वरत्नानां कौस्तुभप्रभृतीनामाश्रयस्तथा भवानपीत्यर्थः। एतत्प्रयोजनमाह—इतीति। इति कृत्वा इति हेतोरस्मत्स्वामिनो वक्ष्यमाणस्य दुहिता कन्यकैनं शुकमादाय गृहीत्वा देवस्य राज्ञः पादमूलं चरणमूलमायातागता। तदिति। तस्माद्धेतोरयं शुक आत्मीयः स्वकीयः क्रियतां विधीयतामिति पूर्वप्रतिपादितमुक्त्वा प्रतिपाद्य 'पूर्वकालत्वस्य त्वाप्रत्ययवाच्यत्वेऽपि विवक्षितविवेकेनानन्तर्यमेव वाच्यम्' इति। नरपते

करने वाला तथा निर्माता है; हँसी दिल्लगी से पूर्ण बातचीत करने में निपुण है, वीणा, बाँसुरी, मुरज आदि वाद्यों का अद्वितीय श्रोता है, नृत्यकला के प्रायोगिक रूप को देखने में प्रवीण है, चित्रनिर्माण कला में निपुण है, जुआ के खेलने में प्रौढ़ है, प्रणय-कलह से क्रुद्ध रमणी को प्रसन्न करने के उपायों का अच्छा जानकार है, हाथी, घोड़े, पुरुष और स्त्रियों के शुभाशुभ लक्षणों का पूर्ण वेत्ता है इस तरह समस्त भूमण्डल का रत्न रूप यह शुक है। आप समुद्र की भाँति सभी रत्नों (उत्तम पदार्थों) के भाजन हैं—ऐसा सोचकर हमारे स्वामी की लड़की इस शुक को लेकर आपकी सेवा में उपस्थित हुई है। इसलिये आप इसे स्वीकार करें—ऐसा कह वह राजा के सामने पिंजड़े को रखकर हट गया।

---

1. मुरजप्रभृतीनां वाद्यविशेषाणाम्, 2. नृत्त, 3. प्रणयकुपित, 4. कामिनीजन,

अपसृते च तस्मिन्स विहङ्गराजो राजाभिमुखो भूत्वोन्नमय्य दक्षिणचरण-मतिस्पष्टवर्णस्वरसंस्कारया[1] गिरा कृतजयशब्दो राजानमुद्दिश्यार्यामिमां पपाठ—

'स्तनयुगमश्रुस्नातं समीपतरवर्ति हृदयशोकाग्नेः।
चरति विमुक्ताहारं व्रतमिव भवतो रिपुस्त्रीणाम् ॥ १ ॥

राजा तु तामार्यां श्रुत्वा संजातविस्मयः[2] सहर्षमासन्नवर्तिनम्, अतिमहार्घहेमा-सनोपविष्टम्[3] अमरगुरुमिवाशेषनीतिशास्त्रपारगम्, अतिवयसम्[4], अग्रजन्मानम्,

---

राज्ञः पुरो निधायाग्रे स्थापयित्वा पञ्जरं पक्षिरक्षणस्थलम्, असौ पुरुषोऽपससारापसृतवान्। 'सृज् अपसरणे' इत्यस्य लिटि रूपम्।

अपेति। तस्मिन्पुरुषेऽपसृते दूरीभूते सति स पूर्वोक्तो विहङ्गानां पक्षिणां राजा विहङ्गराजः 'राजाहः सखिभ्यष्टच्' राजाभिमुखो नृपसंमुखो भूत्वा दक्षिणमपसव्यं चरणं पादमुन्नमय्योर्ध्वीकृत्य। शुकादीनां शब्दोच्चारणे तादृशोऽयं जातिस्वभावः। अतीति। अतिस्पष्टा अतिव्यक्ता वर्णा अक्षराणि स्वरा उदात्तादयस्तेषां संस्कारः परिपाको यस्यां सा तथा तया। यद्यप्यन्यत्र शुकादीनामस्पष्टो वर्णस्तथाप्येतस्य स्पष्टो वर्ण इति विशेषः। एवंविधया गिरा वाण्या राजानमुद्दिश्य कृतो विहितो जयशब्दो येन स एवंविध इमामग्रे वक्ष्यमाणामार्यां पपाठापाठीत्।

स्तनेति। भवतस्तव रिपुस्त्रीणां दस्युवनितानां स्तनयुगं कुचयुग्मं व्रतमिव नियममिव चरत्यासेवते। तदेव विशिनष्टि—अश्रिति। अश्रुभिर्नयनसलिलैः स्नातं कृतस्नानम्। समीपेति। समीपतरवर्ति संनिहितवर्ति। कस्य। हृदयशोकः स्वभर्तृवियोगजनितं दुःखं तदेवाग्निर्वह्निस्तस्य। विमुक्तस्त्यक्त आ समन्ताद्धारो येन तत्तथा। अन्योऽपि यो व्रतं चरति सोऽपि विमुक्ताहारः कृतस्नानोऽग्निसमीपस्थायी च स्यात् ॥

राजा तु नृपोऽपि तामार्यां गाथां श्रुत्वाकर्ण्य संजातविस्मयः समुत्पन्नाश्चर्यः सहर्ष

उस पुरुष के हट जाने पर उस विहंगपति ने राजा की ओर उन्मुख होकर दाँयें पैर को उठा कर अत्यन्त परिस्फुट स्वर और व्यंजनों से परिष्कृत वाणी से 'जय शब्द का उच्चारण कर राजा को लक्ष्य करके इस आर्या को पढ़ा—

आपके शत्रुओं की पत्नियों के दोनों स्तन (इस समय) मानों व्रत का आचरण कर रहे हैं। जैसे व्रती व्यक्ति स्नान करता है वैसे ये निरन्तर बहने वाले अश्रुजल से स्नान करते रहते हैं, जैसे व्रती पुरुष यज्ञ कुण्ड में प्रज्वलित अग्नि के पास बैठ कर हवन आदि करते हैं वैसे ही ये हृदय में प्रज्वलित शोकानल के अत्यन्त समीप विराजमान हैं और जैसे व्रती निराहार रहता है वैसे ही ये मोती के हार छोड़ चुके हैं।

राजा तो इस आर्या को सुनकर आश्चर्य चकित हो सहर्ष उस कुमारपालित नाम के मन्त्री से बोला जो समीप ही विराजमान था, अत्यन्त बहुमूल्य स्वर्णनिर्मित आसन पर बैठा

---

१ वर्णसंस्कारया, २ जातविस्मयः, ३ महार्हासनो; महार्हहेमासनो, ४ अतिपरिणतवयसम्,

अखिले मन्त्रिमण्डले प्रधानममात्यं कुमारपालितनामानमब्रवीत्—श्रुता भवद्भिरस्य विहङ्गमस्य स्पष्टता वर्णोच्चारणे, स्वरे च मधुरता। प्रथमं तावदिदमेव महदाश्चर्यम्[1], यदयमसंकीर्ण[2]वर्णप्रविभागामभिव्यक्तमात्रानुस्वारसंस्कारयोगां[3] विशेषसंयुक्तां गिर[4]मुदीरयति। तत्र पुनरपरम[5]भिमतविषये तिरश्चोऽपि मनुजस्येव संस्कारवतो[6] बुद्धिपूर्वा प्रवृत्तिः[7]। तथा हि—अनेन[8] समुत्क्षिप्तदक्षिणचरणेनोच्चार्य जयशब्दमियमार्या मामु-

---

सप्रमोदं यथा स्यात्तथासन्नवर्तिनं समीपवर्तिनम्। कुमारेति। कुमारपालित इति नाम यस्यैवं भूतममात्यं सचिवमब्रवीदवोचत्। अथामात्यं विशेषयन्नाह—अतीति। अति-महार्घमतिबहुमूल्यं यद्धेमासनं सुवर्णासनं तत्रोपविष्टं स्थितम्। अशेषेति। अशेषाणि समग्राणि यानि नीतिशास्त्राणि लोककृत्यविवेकाविवेकप्रतिपादकानि तन्त्राणि तेषां पारगं रहस्यवेत्तारम्। कमिव। अमरगुरुमिव बृहस्पतिमिव। अतीति। अत्यधिकं वयो दिवसबाहुल्यं यस्य स तथा तम्। अग्रेति। अग्रे प्रथमवर्णे जन्म यस्य स तम्। ब्राह्मणमित्यर्थः। अखिलेति। अखिले समग्रे मन्त्रिमण्डले धीसचिवसमुदाये प्रधानं मुख्यम्। श्रुतेति। भवद्भिर्युष्माभिरस्य विहङ्गमस्य शुकस्य वर्णाः कादयस्तेषामुच्चारणे वक्तव्यतायां स्पष्टताऽश्लिष्टता श्रुताकर्णिता। तथा स्वरे स्वरविषये मधुरता माधुर्यम्। चकारः पुनरर्थकः। प्रथममिति। प्रथममादौ तावदित्यन्यव्यवच्छेदार्थः। इदमेव प्रत्यक्षगतमेव महदाश्चर्यम्। अतिकौतूहलमित्यर्थः। तदेव दर्शयति—यदिति। यदयं गिरं वाणीमुदीरयत्युच्चरति। इतो वाणीं विशेषयन्नाह—असंकीर्णेति। असंकीर्णः परस्परवैलक्षण्येन प्रतीयमानो वर्णानामक्षराणां प्रविभागो भिन्नता यस्यां सा तथा ताम्। अभीति। मात्रा एकारादयः, अनुस्वारा अनुनासिकाः, संस्कारो व्याकरणशुद्धिः, अभिव्यक्ताः प्रकटाः एतेषां योगाः संबन्धा यस्यां सा तथा ताम्। विशेषेति। विशेषः शब्दश्लेषादिस्तेन संयुक्तां सहिताम्। तत्रेति। पुनरपरमधिकमभिमतविषय उपादेयेऽर्थे तिरश्चोऽपि पक्षिणोऽपि मनुजस्येव मनुष्यस्येव संस्कारवत इति तत्तदर्थविषयानुभवजन्यः संस्कारस्तद्वतो बुद्धिपूर्वा प्रतिभाहेतुका प्रवृत्तिः प्रवर्तनं भवति। किमाश्चर्यमित्यर्थः। तदेवाद्भुतं दर्शयति—तथाहीति। अनेन शुकेन समुत्क्षिप्त ऊर्ध्वीकृतो दक्षिणचरणोऽप-

---

हुआ था, बृहस्पति के समान सम्पूर्ण नीतिविद्या में पारंगत था, वृद्ध, ब्राह्मण तथा सभी मन्त्रियों में प्रधान था। इस पक्षी के वर्णोच्चारण की स्पष्टता और स्वर की मिठास आप लोगों ने सुनी? पहले तो यही महान् आश्चर्य की बात है कि यह ऐसी बोली बोलता है जिसमें वर्णों का विभाजन ठीक ढंग से हुआ है, जिसमें मात्राओं, अनुस्वार तथा व्याकरण आदि के नियमों के ठीक ढंग से पालन की अभिव्यंजना है, और जो विशेष रूप को धारण किये है अर्थात् अलंकृत भाषा के कारण साधारण है। इसके बाद दूसरे आश्चर्य का हेतु यह है कि

---

१ महत्तरमाश्चर्यम्, महाश्चर्यम्, २ असंकीर्ण, ३ अनुस्वारस्वरसंयोगविशेषः; अनुस्वारस्वरसंयोगाम्, ४ बदयमतिपरिस्फुटाक्षरां भिरम्; यदयमतिपरिस्फुटां गिरम्, ५ पुनर्यदियम्, ६ संस्कारवती, ७ वाक्यप्रवृत्तिः, ८ एतेन

दिश्य परिस्फुटाक्षरं गीता। प्रायेण हि पक्षिणः पशवश्च भयाहारमैथुननिद्रासंज्ञा-मात्रवेदिनो भवन्ति। इदं तु महच्चित्रम्' इत्युक्तवति भूभुजि कुमारपालितः किंचित्स्मितवदनोऽवादीत्—'किमत्र[1] चित्रम्। एते हि शुकसारिकाप्रभृतयो विहङ्ग-विशेषा यथाश्रुतां[2] वाचमुच्चारयन्तीत्यधिगतमेव देवेन। तत्राप्यन्य[3]जन्मोपात्तसंस्कारा-नुबन्धेन वा पुरुषप्रयत्नेन वा संस्कारातिशय उपजायत इति नातिचित्रम्। अन्य[4]दे-तेषामपि पुरा पुरुषाणामिवातिपरिस्फुटा[5]भिधाना वागासीत्। अग्निशापात्त्वस्फुटा[6]-

---

सव्यपादो येन स तथा तेन जयशब्दं जयजयारवमुच्चार्योदीर्येयमार्या पूर्वोक्ता मामुद्दिश्य परिस्फुटानि व्यक्तान्यक्षराणि यथा स्यात्तथेति क्रियाविशेषणम्। गीता गानविषयीकृता किमित्यत आह—प्रायेणेति। प्रायेण बाहुल्येन पक्षिणः पतत्रिणः, पशवो मृगाद्याः। भयेति। भयमनिष्टहेतुज्ञानम्, आहारः क्षुधानिवृत्त्युपायः, मैथुनं व्यवायः, निद्रा बाह्येन्द्रियोपरमः, संज्ञा लोकव्यवहारजनकशब्दः, एतन्मात्रवेदिनो भवन्ति एतन्मात्रमेव जानन्ति नाधिकम्। इदं तु महच्चित्रं महदाश्चर्यम्। इत्युक्तवतीतिभाषितवति भूभुजि राज्ञि सति कुमारपालितः किंचित्स्मितवदनः किंचिदीषत्स्मितं हास्यं तेन युक्तं वदनं यस्य स तथावादीदब्रवीत्। सर्वथाऽ-संभाव्यमानाद्भुतदर्शनेनानर्थशङ्कां निराकुर्वन्नाह—किमत्रेति। किमत्र चित्रमाश्चर्यम्। तत्रार्थे हेतुमाह—एते हीति। एते शुकाः प्रसिद्धाः सारिकाः पीतपादा एतत्प्रभृतयो विहङ्गविशेषा यथाश्रुतामर्थबोधशून्यां वाचं गिरमुच्चारयन्ति ब्रुवन्ति। देवेन स्वामिनेति पूर्वोक्तमधिगतमेव ज्ञातमेव। एतेन स्वानुभवोऽपि सूचितः। अत्रापि कारणान्तरमाविष्कुर्वं दर्शयन्नाह—तत्रापीति। तत्रापि पूर्ववक्तव्यतायामन्यजन्मनि पूर्वजन्मन्युपात्तो गृहीतो यः संस्कारः पूर्वोक्तलक्षणस्तस्यानुबन्धोऽविच्छित्तिस्तेन वा पुरुषाणाम् अर्थात्प्रेक्षावतां प्रयत्नेनोद्योगेन वा। संस्कारेऽतिशयो दार्ढ्यमुपजायत उत्पद्यते। ताभ्यां हेतुभ्यां वाग्व्यापारयुक्ता भवन्तीति भावः। इति अतो नातिचित्रम्। अत्रान्यदपि कारणमस्तीत्याशयेनाह—अन्यदिति। अन्यदपि कारणान्तरमस्ति। तदेव दर्शयति—एतेषामिति। एतेषां शुकादीनां पुरा पूर्वं

सुसंस्कृत विचार वाले मनुष्य की भाँति पक्षी की भी समझदारी के साथ अभिमत विषय में प्रवृत्ति हो रही है। जैसा कि—दाँये पैर को उठाकर और जय शब्द का उच्चारण कर मुझे लक्ष्य करके साफ साफ अक्षरों में इसने इस आर्या का गान किया है। अक्सर देखा जाता है कि पक्षी और पशु भय, भोजन, रति-क्रिया और निद्रा एवं थोड़े से इशारे का ज्ञान मात्र रखते हैं। यह तो बहुत बड़ा आश्चर्य है—राजा के इतना कह चुकने पर कुमारपालित थोड़ा मुस्कुरा कर बोला—इसमें आश्चर्य क्या है! ये तोते, मैना आदि विशेष प्रकार के पक्षी सुनाई पड़ने वाली बातों का उच्चारण कर लेते हैं—यह आपको ज्ञात ही है। उनमें भी पूर्व जन्मों के विशेष संस्कारों की अनुवृत्ति से अथवा पुरुषों के विशेष प्रयत्न से इनके संस्कारों में अभिवृद्धि हो जाती है—इसलिये इसमें बहुत अधिक आश्चर्य मानने की बात नहीं है। और दूसरी बात यह है

---

१ देव किमत्र. २ यथाश्रुतम् ३ तत्राप्यत्रान्य. ४ [illegible] ५ [illegible] ६ [illegible]परिस्फुटा.

लापता शुकानामुपजाता, करिणां[1] च जिह्वापरिवृत्तिः' इति । एवमुच्चारयत्येव तस्मिन्नशिशिरकिरणमम्बरतलस्य मध्यमध्यारूढमावेदयन्नाडिकाच्छेदप्रहतपटुपटह-नादानुसारी मध्याह्नशङ्खध्वनिरुदतिष्ठन् । तमाकर्ण्य च[2] समासन्नस्नानसमयो विसर्जि-तराजलोकः क्षितिपतिरास्थानमण्डपादुत्तस्थौ ।

अथ चलति महीपतावन्योन्यमतिरभससंचलनचालिताङ्गदपत्रभङ्गमकरकोटि-पाटि[3]तांशुकपटानाम्, आक्षेपदोलायमानकण्ठदाम्नाम्[4], अंसस्थ[5]लोललासितकुङ्कमपट-

प्राचीनपुरुषाणामिवातिपरिस्फुटमतिविशदमभिधानं नाम यस्यामेवंविधा वागासीत् । तु पुनरर्थे । अग्निशापादस्फुटालापता शुकादीनामुपजातेति स्पष्टम् । अत्रायं प्रवादः । छद्मना गृहीतरूपस्य वह्नेर्यादृशं संवादं श्रुतवाञ्छुकस्तथैवोक्तवानिति तं प्रति क्रुद्धेन वह्निना स शप्तः । करिणां हस्तिनां च जिह्वापरिवृत्तिः स्वभावजनितां तां दूरीकृत्य तत्स्थले तदितररसनायाः प्रक्षेपः । सा च गजानामेव नान्येषामित्यन्यत्र विस्तरः । शुक इत्यविशदाक्षरत्वमिति । तस्मिन्निति । तस्मिन् कुमारपालित एवं पूर्वोक्तप्रकारेणोच्चारयत्येवोक्तवत्येव मध्याह्नशङ्खध्वनि-र्जलजनिनाद उदतिष्ठदुत्पन्नोऽभूदित्यन्वयः । किं कुर्वन् । आवेदयञ्ज्ञापयन् । कम् । अम्बर-तलस्य गगनतलस्य मध्यं मध्यप्रदेशमशिशिरकिरणं श्रीसूर्यमध्यारूढं प्राप्तम् । अथ ध्वनिं विशेषयन्नाह—नाडिकेति । नाडिका घटिका तस्याश्छेदः परिसमाप्तिस्तस्यां प्रहतस्ताडितो यः पटुर्महान्पटहो दुन्दुभिस्तस्य नादो निनादस्तमनुसर्तुं शीलमस्येति स तथा । तमिति । तं ध्वनि-माकर्ण्य श्रुत्वा क्षितिपती राजाऽऽस्थानमण्डपादुत्तस्थावुत्थितो बभूव । राजानं विशिनष्टि—समासन्नेति । समासन्नो निकटवर्ती स्नानसमय आप्लवनसमयो यस्य स तथा । विसर्जित इति । विसर्जितो निवर्तितो राजलोकः सेवकजनो येन स तथा ।

अथेति । उत्थानानन्तरं महीपतौ राज्ञि चलति सत्युत्तिष्ठतामुत्थानं कुर्वतां महीपतीनां संभ्रमः संमर्द आसीदित्यन्वयः । अथ महीपतीन्विशेषयन्नाह—अन्योन्येति । अन्योन्यं परस्परमतिरभसेनातिवेगेन संचलनं गमनं तेन चालितानि स्वस्थानात्प्रच्यावितानि यान्यङ्गद-पत्राणि तेषां भङ्गस्त्रुटनं तस्य या मकरकोटिर्वक्रप्रदेशस्तेन पाटितानि छिन्नान्यंशुकानि

कि पुराकाल में मनुष्यों की भाँति इन पक्षियों की भी वाणी अत्यन्त परिस्फुट थी । परन्तु अग्नि के शाप से तोतों की वाणी अस्पष्ट हो गई और हाथियों की जीभ उलट गई । इस तरह वह मन्त्री कह ही रहा था कि सूर्य भगवान् के मध्य आकाश में पहुँचने की सूचना देने वाली प्रहर २ पर बजने वाले नगाड़ों की गड़गड़ाहट का अनुसरण करने वाली मध्याह्न कालिक शंख की ध्वनि गूँज उठी । उस ध्वनि को सुनकर राजा स्नान काल के सन्निकट आ जाने के कारण राजाओं को विदा कर स्वयं भी सभामण्डप से उठ गया ।

इसके अनन्तर महाराज के चलते ही राजसमाज में भी खलबली मच गयी । राजाओं के अत्यन्त वेग से चलते समय संचालित पारस्परिक केयूर पत्रों पर निर्मित मकराकृतियों के कोर से

१ सारिकाणाम्. २. चासन्न, ३. पाटितानेक, ४. मालतीकण्ठ, ५. स्थलोल्लसित,

वासधूलि[1]पटलपिञ्जरीकृतदिशाम्, आलोलमालतीपुष्प[2]शेखरोत्पतदलिकदम्बकानाम्, अर्धावलम्बिभिः कर्णोत्पलैश्चुम्ब्यमानगण्डस्थलानाम्, गमनप्रणामलालसानामहमहमिकया, वक्षःस्थलप्रेङ्खोलितहारलतानाम्, उत्तिष्ठतामासीत्संभ्रमो महीपतीनाम्। इतश्चेतश्च निःपतन्तीनां स्कन्धावसक्त[3]चामराणां चामरग्राहिणीनां कमलमधुपा[4]नमत्तजरत्कलहंसनादजर्जरितेन[5], पदे पदे रणितमणीनां मणिनूपुराणां निनादेन, वारविला-

---

गर्भसूत्रनिर्मितानि, पटाः सूत्रनिर्मिता येषु ते तथा तेषाम्। आक्षेपेति। आक्षेपः परस्परसंलग्नता तेन दोलायमानानि चञ्चलानि कण्ठदामानि निगरणबन्धनस्रजो येषां ते तथा तेषाम्। अंसेति। अंसस्थलेभ्यो भुजशिरःस्थलेभ्य उल्लासितान्युच्छ्वसितानि यानि कुङ्कुमानि केसराणि पटवासः पिष्टातकश्च तयोर्धूलिपटलं परागसमूहस्तेन पिञ्जरीकृताः पीतरक्तीकृता दिशः ककुभो यैस्ते तथा तेषाम्। आलोलेति। आलोलाश्चञ्चला ये मालतीपुष्पाणां जातीकुसुमानां शेखरा अवतंसास्तदुपरिष्टादुत्पतन्तो भ्रमन्तोऽलयो भ्रमरास्तेषां कदम्बकानि समूहा येषां ते तथा तेषाम्। अर्धेति। अर्धावलम्बिभिरर्धभागलग्नैः। एवंविधैः कर्णोत्पलैः श्रवणन्यस्तनलिनैश्चुम्ब्यमानमाश्लिष्यमाणं गण्डस्थलं कपोलात्परो भागो येषां ते तथा तेषाम्। गमन इति। गमने व्रजने यो राज्ञः प्रणामो नमस्कारस्तत्र लालसानां कृतस्पृहाणाम्। कया। अहं शक्तोऽहं शक्त इत्यस्यां साहमहमिका। मयूरव्यंसकादित्वात्साधुः। तया। वक्ष इति। वक्षःस्थले भुजान्तरे प्रेङ्खोलितास्तरलिता हारलता मुक्ताफलस्रजो येषां ते तथा तेषाम्। ततश्चेति। तदा तस्मिन्समय आस्थानभवनं नृपोपवेशनस्थलं सर्वतः परितः क्षुभितमिव क्षोभं प्राप्तमिवाभवद्भूदित्यन्वयः। केन। इतश्चेतश्च संमर्दवशादितस्ततो भिन्नभिन्नप्रदेशे निःपतन्तीनां स्खलन्तीनां स्कन्धो भुजशिरस्तत्रावसक्तं न्यस्तं चामरं बालव्यजनं याभिरेतादृशीनां चामरग्राहिणीनां स्त्रीणाम्। सम्बन्धे षष्ठी। तासां मणिखचितानि नूपुराणि पादकटकानि तेषाम्। अथ नूपुराणि विशेषयन्नाह—पदे पदे इति। पदे पदे प्रतिपदं रणिताः शब्दायमाना मणयो वैडूर्यादयो येषु तानि तेषां निनादेन तदुद्भवशब्देन। तमेव विशेषयन्नाह—कमलेति। कमलस्य नलिनस्य यन्मधु रसस्तस्य पानमास्वादस्तेन मत्ताः क्षीबा ये जरत्कलहंसाः कादम्बास्तेषां नादः

उनके रेशमी दुपट्टे फट रहे थे। धक्का लगने के कारण उनके गले का हार हिल रहा था। उनके कन्धे से उड़ते हुये कुंकुम-सुगन्धित चूर्ण से सारी दिशायें पीली होने लग गयी थीं। मालती के फूलों से निर्मित किरीट के हिल जाने में भौंरे मड़राने लग गये थे। आधे भाग से लटकने वाले कर्णोत्पलों से उनके कपोल चूमे जाने लगे थे। प्रस्थान कालिक प्रणाम करने के लिए लालायित होने से होड़ के कारण उनके सीने पर हार की लड़ियाँ आन्दोलित होने लग गई थीं। इस तरह उठते हुए राजाओं के बीच व्यग्रता दिखाई पड़ने लगी। उस समय कन्धे पर चँवर रखकर इधर-उधर सरकनेवाली चँवर-चालिकाओं के पद-पद पर होनेवाले मणि-मंजीरों का वह निनाद वहाँ हो रहा था जो कमल के मरन्द का पान करने के कारण मतवाले वृद्ध कलहंसों के भरीये हुये नाद से जर्जरित

---

१. धूलिपिञ्जरित, २. कुसुम, ३. स्कन्धदेशावसक्त, ४. मदमत्त, ५. जर्जरेण,

सिनीजनस्य संचरतो जघनस्थलास्फालनरसितरत्नमालिकानां मणिमेखलानां मनोहारिणा झङ्कारेण, नूपुररवाकृष्टानां च धवलिताख्यानमण्डपसोपानफलकानां भवनदीर्घिकाकलहंसकानां कोलाहलेन, रसनारसितोत्सुकितानां च तारतरविराविणा-मुल्लिख्यमान[1]कांस्यक्रेङ्कारदीर्घेण गृहसारसानां कूजितेन, सरभसप्रचलितसामन्तशतचरणतलाभिहतस्य चास्थानमण्डपस्य निर्घो[2]षगम्भीरेण कम्पयतेव वसुमतीं ध्वनिना, प्रतीहारिणां[3] च पुरः ससंभ्रमसमुत्सारितजनानां दण्डिनां समारब्धहेलमुच्चैरु[4]-

---

शब्दस्तेन जर्जरितेन संभिन्नेन। पुनः केन। वारेति। वारविलासिनीनां वाराङ्गनानां संचरतो गच्छतो जनस्य लोकस्य जघनस्थलस्य कटिपुरोभागस्थलस्यास्फालनं ताडनं तेन रसिताः शब्दं कुर्वाणा रत्नमालिका मणिस्रजो यास्वेवंविधानां मणिमेखलानां रत्नखचितकाञ्चीपादानां मनोहारिणा सुन्दरेण झङ्कारेण झणितिशब्देन। पुनः केन। नूपुरेति। नूपुराणां पूर्वोक्तानां रवः शब्दस्तेनाकृष्टानामाकर्षितानाम्। पुनः कीदृशानाम्। धवलितेति। धवलितानि शुभ्रीकृतान्यास्थानमण्डपस्य राज्ञ उपवेशनस्थलस्य सोपानमारोहणं तस्य फलकानि प्रसिद्धानि यैरेवंविधानां भवनदीर्घिका गृहवाप्यस्तासां कलहंसा एव कलहंसकाः। स्वार्थे कः तेषां कोलाहलेन कलकलेन। पुनः केन। रसनेति। रसना कटिमेखला तस्या रसितं शब्दितं तत्रोत्सुकिता उत्कण्ठितास्तेषाम्। चः समुच्चये। तारतरोऽत्यन्तोच्चैस्तरो विरावः शब्दो विद्यते येषामेवंविधानां गृहसारसानां भवनलक्ष्मणानां कूजितेन। शब्दितेन। कीदृशेन। उल्लिख्यमानं घृष्यमाणं यत्कांस्यं विद्युत्प्रियं तस्य क्रेङ्कारोऽव्यक्तध्वनिस्तद्वद्दीर्घेणायतेन। 'कूजितं स्याद्विहङ्गानाम्' इति कोशः। पुनः केन। सरभसेति। सरभसं ससंभ्रमं प्रचलिता गन्तुं प्रवृत्ता ये सामन्ताः स्वदेशपर्यन्तवर्तिराजानस्तेषां शतं तस्य चरणतलैः पादतलैरभिहतस्य ताडितस्यास्थानमण्डपस्य नृपोपवेशनस्थलस्य निर्घोषोऽव्यक्तध्वनिस्तेन गम्भीरेण पुष्टध्वनिना। तदुत्थशब्देनेत्यर्थः। किं कुर्वता। वसुमतीं पृथ्वीं कम्पयतेव क्षोभयतेव। पुनः केन। आलोकशब्देनालोक्यतामालोक्यतामित्येवंरूपेण। केषाम्। प्रतिहारिणां द्वारपालकानाम्। अथ प्रतीहारिणो विशेषयन्नाह—पुर इति। पुरोऽग्रे ससंभ्रममनुपलक्षितस्वरूपं समुत्सारिता दूरीकृता जना

था। गतिशील वारांगनाओं के नितम्ब पर टक्कर खाकर मुखर रत्नमालिकाओं से सुसज मणि मेखलाओं का मनोहर झंकार हो रहा था। रमणियों के नूपुरों का अनुरणन सुनकर आकृष्ट हो भवन की वापियों से आकर सभामण्डप की सीढ़ियों को धवलित कर देनेवाले कलहंसों का कोलाहल होने लगा था। शब्द करने वाली करधनी की ध्वनि से उत्कण्ठित होकर जोर-जोर से बोलने वाले घरेलू सारसों का कूजन चल रहा था जो झनझनाते हुए कांसे के बरतनों के झंकार से संवर्धित था। उस समय वेग से चले हुए सैकड़ों सामन्तों के चरण तल की रगड़ खाकर सभाभवन से ऐसा गम्भीर निर्घोष हो रहा था जो भूकम्प की गड़गड़ाहट-सा प्रतीत होता था। सामने के लोगों को वेग से हटाने के लिए हाथ में दण्ड धारण किये प्रतीहारीगण कौतुक-सा करता हुआ

---

१. काञ्ची, २. निर्घातनिर्घोष, ३. प्रतिहाराणाम्, ४. उच्चारयताम्,

चरतामालोकयन्त्विति तारतरदीर्घेण भवनप्रासादकुञ्जेषूच्चरितप्र[1]तिच्छन्दतया दीर्घता[2]मुपगतेनालोकशब्देन, राज्ञां च ससंभ्रमावर्जितमौलिलोलचूडामणीनां प्रणमताममलमणिशलाकादन्तुराभिः किरीटकोटिभिरुल्लिख्यमानस्य मणिकुट्टिमस्य निःस्वनेन, प्रणामपर्यस्तानामतिकठिनमणिकुट्टिमनि[3]पतितरणरणायितानां च मणिकर्णपूराणां निनादेन, मङ्गलपाठकानां च पुरोयायिनां जयजीवेति[4] मधुरवचनानुयातेन पठतां [5]दिगन्तव्यापिना कलकलेन, प्रचलितजनचरणशतसंक्षोभाद्विहाय कुसुमप्रकरमुत्पततां

लोका येस्ते तथा तेषाम् । दण्डो विद्यते येषां ते दण्डिनस्तेषाम् । किं कुर्वताम् । समारब्धहेलं प्रारब्धक्रीडं यथा स्यात्तथा । उच्चैरित्यर्थः । उच्चरतां ब्रुवताम् । किम् । आलोकयन्तु पश्यन्त्विवति यो तारतरः शिरःसमुद्भवः शब्दस्तेन दीर्घेणायतेन । पुनः कीदृशेन । दीर्घतां बहुलतामुपगतेन प्राप्तेन । कया उच्चरितेति । उच्चरित उक्तो यः शब्दस्तस्य प्रतिच्छन्दस्तस्य भावस्तत्ता तया । केषु । भवनानि सामान्यगृहाः प्रासादा देवभूपसद्मानि तेषां कुञ्जेषु लतान्तरितप्रदेशेषु । पुनः केन । मणीति । मणिकुट्टिमं रत्नबद्धभूस्तस्य निःस्वनेन । किं क्रियमाणस्य । उल्लिख्यमानस्य घृष्यमाणस्य । काभिः । किरीटकोटिभिर्मुकुटाग्रैः । कीदृशीभिः । अमलेति । अमला निर्मला मणिशलाका रत्नेषीकास्ताभिर्दन्तुराभिर्विषमाभिः । केषाम् । राज्ञां नृपाणाम् । किं कुर्वताम् । प्रणमतां नमस्कारं कुर्वताम् । कीदृशानाम् । असंभ्रमेति । संभ्रमेण सहसावर्जिता नमिता मौलौ शिरसि लोलाश्चञ्चलाश्चूडामणयः शिरोमणयो येषां ते तथा तेषाम् पुनः केन । मणीति । मणिकर्णपूराणां रत्नकर्णाभरणानां निनादेन शब्देन । कर्णपूरं विशेषयन्नाह—प्रणामेति । प्रणामेन नमस्कारेण शिरोनमनात्पर्यस्तानां पतितानाम् । अतीति । अतिकठिनं यन्मणिकुट्टिमं तत्र निपतितेन पातेन रणरणायितानां संजातरणरणितशब्दानाम् । पुनः केन । दिशां ककुभामन्ता दिगन्तास्तान्व्याप्नुवन्तीत्येवंशीलेन कलकलेन कोलाहलेन । केषाम् । पठताम् । कीर्तिपाठकानामित्यर्थः । कीदृशानाम् । पुरोयायिनामग्रगामिनां मङ्गलपाठकानां बन्दिनां जयजीवजयजीवेति यन्मधुरं वचनं तदनुलक्षीकृत्य यातेन प्रवृत्तेन । पुनः केन । मधुलिहां भ्रमराणां हुंकृतेन हुंकारशब्देन । किं कुर्वताम् । उत्पततामुड्डीनं

'देखो' यह शब्द जोर से बोल रहा था जिसकी प्रतिध्वनि की गूंज भवन और अटारियों के निकुंजों से और जोरदार होकर व्याप्त हो रही थी। प्रणाम करते हुए राजाओं के सहसा झुके हुए सर पर चूड़ामणियों की चंचलता से (खनखनाहट हो रही थी) एवं निर्मल मणि शलाकाओं से निर्मित मनोज्ञ मुकुटों के कोर की रगड़ खाकर मणिमय फर्श से आवाज उठ रही थी, उस समय अत्यन्त कठोर मणियों से निर्मित फर्श पर प्रणाम करने के लिये पड़े हुये राजाओं के मणिमय कर्णपूरों के संघर्ष से 'खन्न-खन्न' की तीव्र ध्वनि हो रही थी। आगे-आगे चलने वाले स्तुति पाठकों के 'जयजयकार' एवं 'चिरंजीव' आदि वाक्यों की दिगन्त व्यापी कलकलाहट हो रही थी। वेग से चलने वाले लोगों के शत-शत चरणों की आहट से क्षुब्ध हो

---

१. प्रतिशब्दतया, २. दीर्घतरताम्, ३. निपतन, ४. जयजयेति, ५. दिगन्तर,

च मधुलिहां हुंकृतेन, संक्षोभादतित्वरितपदप्रवृत्तै रवनिपतिभिः केयूरकोटिताडितानां क्वणितमुखररत्नदाम्नां च मणिस्तम्भानां रणितेन सर्वतः क्षुभितमिव तदास्थान-भवनमभवत्।

अथ विसर्जितराजलोको 'विश्रम्यताम्' इति स्वयमेवाभिधाय तां चाण्डाल-कन्यकाम्, वैशम्पायनः प्रवेश्यतामभ्यन्तरम्' इति ताम्बूलकरङ्कवाहिनीमादिश्य, कतिपयाप्तराजपुत्रपरिवृतो नरपतिरभ्यन्तरमाविशत्। अपनीताभरणश्च दिवसकर इव विगलितकिरणजालः, चन्द्रतारकासमूहशून्य इव गगनाभोगः, समुपाहृतसमुचित-

कुर्वताम्। किं कृत्वा। विहाय त्यक्त्वा। किम्। कुसुमप्रकरं पुष्पसमूहम्। कस्मात्। प्रचलितेति। प्रचलिता ये जनास्तेषां चरणाः पादास्तेषां शतं तस्माद्यः संक्षोभः संभ्रमस्तस्मात्। पुनः केन। मणिस्तम्भानां रत्नस्थूणानां रणितेन रणत्कारेण। कीदृशेन। क्वणितेन शब्दितेन मुखराणि वाचालानि रत्नदामानि येषु ते तथा तेषाम्। केयूरेति। केयूराणामङ्गदानां कोटयोऽग्र-भागास्तैस्ताडितानामाहतानामिति स्तम्भविशेषणम्। कैः। अवनिपतिभिः नृपतिभिः। कीदृशैः संक्षोभश्चित्तवैक्लव्यं तस्मादतित्वरितपदमतिवेगवत्तरचरणं यथा स्यात्तथा प्रवृत्तैः प्रचलितैः अन्वयस्तु प्रागेवोक्तः।

अथेति। अथेत्यानन्तर्ये। नरपती राजा कतिपयैः कियद्भिराप्तैः शिष्टै राजपुत्रैर्नृ-पसूनुभिः परिवृतः सहितो विसर्जितो विसृष्टो राजलोकः परिच्छदलोको येन स तथा। राज्ञो विशेषणम्। विश्रम्यतां विश्रामं गृह्यतामिति स्वयमेवात्मनैवाभिधायोक्त्वा तां चाण्डालकन्यकां, वैशम्पायनश्च शुकोऽभ्यन्तरं मध्यं प्रवेश्यतां प्रवेशं कार्यतामिति ताम्बूलस्य नागवल्ल्याः करङ्कः स्थगी तां वहतीत्येवंशीला सा तथा तामादिश्याज्ञां दत्त्वाभ्यन्तरम्। अर्थाद्गृहस्य। प्रावि-शत्प्रवेशं चकार। तदनन्तरं स राजा व्यायामः श्रमसत्करणयोग्यां भूमिं वसुंधरामयासीद-गच्छत्। इतो राजानं विशेषयन्नाह—अपेति। अपनीतानि दूरीकृतान्याभरणानि भूषणानि येन स तथा। क इव दिवसकर इव सूर्य इव। कीदृशः। विगलितानि स्रस्तानि किरणजालानि दीधितिवृन्दानि यस्य स तथा। तत एवैतयोः साम्यम्। पुनः क इव। गगनाभोग इव घनाश्रय-

पुष्पकोश को छोड़कर उड़ने वाले भ्रमरों की हुंकार फैल रही थी। अत्यन्त क्षोभ के कारण जल्दी-जल्दी चलने वाले राजाओं के केयूरों के किनारों से मणिस्तम्भों की टक्कर लगने से तीव्र ध्वनि हो रही थी और रत्नमालिकाओं का क्वणन हो रहा था जिससे वह सभामण्डप चारों ओर से क्षुब्ध-सा हो उठा।

इसके बाद राजसमाज को विसर्जित कर, स्वयं ही उस चाण्डाल कन्या को विश्राम करने को कह तथा पानदान को लेकर चलने वाली दासी को 'वैशंपायन (शुक) को भीतर पहुँचा दो' यह आदेश देकर कुछ अन्तरंग राजकुमारों के साथ अन्तःपुर में महाराज प्रविष्ट

१. संक्षोभभयादपहाय, २. प्रसृतैः, ३. अभ्यन्तरं स्नानपानाशनादिना च सुखिनशेनं कारयेति; अभ्यन्तरमशनादिना चोपचर्यताम्, ४. अपनीताशेषभूषणश्च,

व्यायामोपकरणां व्यायामभूमिमयासीत्। स तस्यां च समानवयोभिः सह राजपुत्रैः कृतमधुरव्यायामः, श्रमवशादुन्मिषन्तीभिः कपोलयोरीषद्[1]वदलितसिन्दुवारकुसुममञ्जरीविभ्रमाभिरुरसि निर्दयश्रम[2]च्छिन्नहारविगलितमुक्ताफलप्रकरानुकारिणीभिर्ललाटपट्टकेऽष्टमीचन्द्रशकलतलोल्लसदमृतबिन्दुविडम्बिनीभिः स्वेदजलकणिकासंततिभिरलंक्रियमाणमूर्तिः, इतस्ततः स्नानोपकरणसंपादनसत्वरेण पुरः प्रधावता परिजनेन[3] तत्कालं विरलजनेऽपि[4] राजकुले समुत्सारणाधिकारमुचितं समाचरद्भिर्दण्डिभिरुप-

विस्तार इव। कीदृशः। चन्द्रः शशी, तारका नक्षत्राणि, तेषां समूहः संघातस्तेन शून्यः। अथ व्यायामभूमिं विशिनष्टि—समुपाहृतेति। समुपाहृतान्येकत्रीकृतानि समुचितानि योग्यानि व्यायामे श्रम उपकरणानि साधनानि यस्यां सा तथा ताम्। स राजा तस्यां भूमौ समानं तुल्यं वयः कौमारादि येषामेवंविधे राजपुत्रैर्नृपसुतैः सह सार्धं कृतो विहितो मधुरो लक्षणया शरीरपीडाजनको व्यायामो येन स तथा। अलंक्रियमाणा भूष्यमाणा मूर्तिः शरीरं यस्य स तथा। राज्ञो विशेषणद्वयम्। काभिः। स्वेदेति। कपोलयोर्गल्लापरभागयोः स्वेदजलस्य श्रमजनितदेहजलस्य कणिकाः सूक्ष्मबिन्दवस्तेषां संततयः परंपरास्ताभिः। इतः स्वेदजलकणिकासंततिं विशेषयन्नाह—श्रमेति। श्रमवशाद्व्यायामवशादुन्मिषन्तीभिः प्रकाशं प्राप्नुवतीभिः। कपोलयोः। ईषदिति। ईषत्किंचिद्दवदलितं मर्दितं सिन्दुवारस्य निर्गुण्ड्याः कुसुमं पुष्पं तस्या मञ्जरी वल्लरी तस्या विभ्रमो भ्रान्तिर्यासु तास्तथा ताभिः। उरसीति। उरसि वक्षस्थले निर्दयश्रमेण कठिनप्रयासेनान्यैः कर्तुमशक्यव्यायामेनेति यावत्। तेन छिन्नश्छेदं प्राप्तो यो हारो मुक्तास्रक्तस्माद्विगलितश्च्युतो यो मुक्ताफलानां मौक्तिकानां प्रकरः समूहस्तमनुकारिण्यस्तमनुकुर्वन्त्यस्ताभिः। ललाटेति। ललाटपट्टके भालस्थलेऽष्टमीचन्द्र एव शकलं तस्य तलमुत्तानस्थलं तत्रोल्लसन्तो दीप्यमाना येऽमृतबिन्दवः सुधापृषतस्ता विडम्बयन्ति तिरस्कुर्वन्तीत्येवंशीलास्तास्तथा ताभिः कीदृशो राजा। परिजनेन सेवकजनेन। कीदृशेन। पुरतोऽग्रे प्रधावता त्वरितं गच्छता। पुनः किंविशिष्टेन। इतस्ततः समन्तात्स्नानमाप्लवस्तस्योपकरणानि जलादीनि तेषां संपादनं निष्पादनं तत्र सत्वरेण शीघ्रेण तत्कालं तत्समयावच्छेदेन विरलजनेऽपि स्वल्प-

हुये। अपने आभूषणों को उतार देने से किरणावली से विमुक्त हुये सूर्य के समान तथा चन्द्रमा और तारकपुंजों से रहित गगनांगन के समान वह महाराज शूद्रक व्यायाम के समुचित साधनों से सुसज व्यायाम भूमि पर पहुँचे। वह उस अखाड़े में समवयस्क राजकुमारों के साथ हल्की-सी कसरत करके परिश्रम के कारण निकलती हुई पसीनेकी बूँदों से अलंकृत शरीर वाले हो गये। वे स्वेद विन्दुयें दोनों गालों पर मर्दित सिन्दुवार के फूलों की मंजरियों की शोभा पा रही थीं, वक्षस्थल पर कठोर श्रम से टूटे हुये मोती के हार से बिखरे हुये दानों का अनुकरण कर रही थीं तथा अष्टमी के चन्द्र की भाँति आयत ललाट पर निकली हुई अमृत विन्दुओंका साम्य धारण कर रही थीं। इधर उधर स्नान की सामग्रियों के जुटाने में तत्पर आगे-आगे दौड़ने वाले

१. अवगलितसितसिन्दुवार, २. रतिश्रम; रतिविश्रम, ३. प्रधाविना, ४. परिजनेनानुगम्यमानः, ५. विरक्ततरेऽपि, ६. आचरद्भिः,

दिश्यमानमार्गः, विततसितवितानाम्, अनेकचारणगणनिबध्यमानमण्डलाम्, गन्धोदकपूर्णकनकमयजलद्रोणीसनाथमध्याम्, उपस्थापितस्फाटिकस्नानपीठाम्, एकान्तनिहितैः अतिसुरभिगन्धसलिलपूर्णैः परिमलावकृष्टमधुकरकुलान्धकारितमुखैः आतपभयान्नीलकर्पटावगुण्ठितमुखैरिव स्नानकलशैरुपशोभितां स्नानभूमिमगच्छत्। अवतीर्णस्य जलद्रोणीं वारविलासिनीकरमृदितसुगन्धामलकलिप्तशिरसो राज्ञः परितः समुपतस्थुरंशुककनिबिडनिबद्धस्तनपरिकराः, दूरसमुत्सारितवलयबाहुलताः, समुत्क्षिप्त-

---

जनेऽपि राजलोके राजगृहे सत्युचितं योग्यं समुत्सारणं निवारणं तत्र योऽधिकारो नियोगस्तं समाचरद्भिः कुर्वद्भिर्दण्डिभिश्चोपदिश्यमानः प्रदर्श्यमानो मार्गो यस्य स तथा। इतः परं स्नानभूमेर्विशेषणानि। वितततेति। विततो विस्तीर्णः सितः शुभ्रो वितान उल्लोचो यस्यां सा तथा ताम्। अनेकेति। अनेकेऽसंख्या ये चारणगणाः कुशीलवसमुदायास्तैर्निबध्यमानं विरच्यमानं मण्डलं परिवृत्तिर्यस्यां सा तथा ताम्। गन्धोदकेति। गन्धोदकेन सुरभिपानीयेन पूर्णा भृता या कनकमयी सुवर्णमयी। अत्र विकारार्थे मयट्। एतादृशी जलद्रोणी जलकुण्डिका तया सनाथः सहितो मध्यो मध्यभागो यस्याः सा तथा ताम्। उपेति। उपस्थापितं न्यस्तं स्फाटिकं स्फटिकमणिनिर्मितं स्नानपीठमाप्लवनचतुष्किका यस्यां सा तथा ताम्। स्नानेति। स्नानार्थं ये कलशाः कुम्भास्तैरुपशोभितां विराजिताम्। अथ कलशान्विशेषयन्नाह—एकान्तेति। एकान्ते निर्जलस्थले निहितैः स्थापितैः। अतीति। अतिशयेन सुरभिर्गन्धो यस्मिन्नेवंविधं यत्सलिलं जलं तेन पूर्णैर्भृतैः। परीति। परिमलेन गन्धेनावकृष्टा ये मधुकरा भ्रमरास्तेषां कुलानि समुदायास्तैरन्धकारितं संजातान्धकारं मुखमाननं येषां ते तथा तैः। कीदृशैरिव। आतपभयान्नीलकर्पटावगुण्ठितानि मुखानि येषां ते तथा तैरिव। जलद्रोणीमवतीर्णस्य तन्मध्ये प्रविष्टस्य राज्ञो नृपस्य परितः सर्वतः स्नानार्थमभिषेकदेवता इवाभिषेकाधिष्ठात्र्य इव वारयोषितो वाराङ्गनाः समुपतस्थुः सम्यक्प्रकारेणातिष्ठद्। कीदृशस्य राज्ञः वारविलासिन्या करेण मृदितं यत्सुगन्धामलकं सुरभिधात्रीफलं तेन लिप्तं शिरो यस्य स तथा तस्य। तां विशेषयन्नाह—अंशुकेति। अंशुकैर्वस्त्रैर्निबिडं दृढं निबद्धः संयतः स्तनपरिकरः कुचाभोगो याभिस्तास्तथा। दूरेति। दूरं

खास नौकरों के साथ तत्काल राजभवन में कम आदमियों के रहने पर भी लोगों को हटाने के समुचित अधिकार का उपयोग करने वाले दण्डधारी पुरुषों के द्वारा मार्ग निर्देशन जिनका किया जा रहा है, ऐसे महाराज उस स्नान की भूमि में गये जिसमें विस्तृत सफेद चँदोवा तना हुआ था, अनेक चारण जहाँ मण्डल बना रहे थे, जिसके बीचमें सुगन्धित जल से भरी हुई सोने की टंकी (कुण्ड) विराजमान थी, जहाँ स्फटिक मणि का बना हुआ स्नान पीठ उपस्थित कर दिया गया था, जो एकान्त में रखे गये, अत्यन्त सुगन्धित जल से परिपूर्ण, परिमल से खिंचे हुये भ्रमरों से श्यामल मुख वाले, जो आतप के डर से, नील वस्त्रों से वेष्ठित मुखवाले से प्रतीत हो रहे थे ऐसे स्नान-कलशों से सुशोभित था। महाराज के जल कुण्ड में उतर जानेपर वेश्यायें

---

१. आबध्यमान, २. अभिसुरभिः, ३. उपलिप्त, ४. समन्तात्, ५. अंशुकविनिबद्ध,

कर्णाभरणाः[1], कर्णोत्सङ्गोत्सारितालकाः, गृहीतजलकलशाः, स्नानार्थमभिषेकदेवता इव वारयोषितः। ताभिश्च समुन्नतकुचकुम्भमण्डलाभिर्वारिमध्यप्रविष्टः करिणीभिरिव वनकरी परिवृतस्तत्क्षणं राज रराज। द्रोणी[2]सलिलादुत्थाय च स्नानपीठममलस्फटिक-धवलं वरुण इव राजहंसमारुरोह। ततस्ताः काश्चि[3]न्मरकतकलश[4]प्रभाश्यामायमाना नलिन्य इव मूर्तिमत्यः पत्रपुटैः, काश्चिद्रजतकलशहस्ता रजन्य इव पूर्णचन्द्रमण्डल-विनिर्गतेन ज्योत्स्नाप्रवाहेण, काश्चित्कलशोत्क्षेपश्रमस्वेदार्द्रशरीरा जलदेवता इव

समुत्सारितानि निराकृतानि वलयानि कंकणानि यास्वेवंभूता बाहुलता भुजवल्ल्यो यासां ताः। सम्विति। समुत्क्षिप्तमुपरि गृहीतं कर्णानामाभरणं भूषणं याभिस्तथा। कर्णेति। कर्णोत्सङ्गात्कर्णप्रान्तसमीपादुत्सारिता उपरि न्यस्ता अलकाः कुन्तला याभिस्तास्तथा। अत्र त्रिपदैस्तासां शोभातिशयो व्यज्यते। गृहीतेति। गृहीता आत्ता जलकलशा वारिभृतघटा याभिस्ताः। च पुनरर्थे। ताभिस्तत्क्षणं तस्मिन्क्षणे परिवृत आवृतो राजा नृपो रराज शुशुभे। कथंभूताभिस्ताभिः समुन्नतं कुचकुम्भमण्डलं यासां ताभिः। कीदृशश्च राजा। वारिमध्यप्रविष्टः। कमिव। करिणीभिर्हस्तिनीभिः परिवृतो वनकरीव। यथा धेनुकाभिः समं मज्जनं कुर्वन्वनकरी शोभते तद्वदयमित्यर्थः। ततो द्रोणीसलिलात् द्रोणीजलादुत्थाय बहिर्निर्गत्य स्नानपीठमारुरोहेत्यन्वयः। कीदृशम्। अमलेति। अमलो मलवर्जितो यः स्फटिको मणिविशेषस्तद्वद्धवलं शुभ्रम्। क इव। वरुण इव। यथा वरुणः प्रचेता राजहंसं कलहंसमारोहति। तत इति। आरोहणानन्तरं ता वारयोषित यथायथं यथायोग्यं राजानमभिषिषिचुरभिषेकं चक्रुः। इतो वारयोषितो विशेषयन्नाह— काश्चिदिति। काश्चित् काश्चन मरकतमणिनिर्मितो यः कलशः कुम्भस्तस्य प्रभा कान्तिस्तया श्यामायमानाः श्यामवदाचरिताः नलिन्य इव पद्मिन्य इव मूर्तिमत्यो नीलत्वसाम्यात्तद्रूपधारिण्यः पत्रपुटैः पर्णसंपुटैः राजानमभिषिषिचुरितिसर्वत्र। अन्याः काश्चन रजतस्य रूप्यस्य

उनके सिर पर सुगन्धित आँवले का लेप करने लगीं तथा और दूसरी वारांगनायें अपने रेशमी आँचल से घनीभूत स्तनों को कस कर, बाहुलताओं से कंगन को काफी ऊपर सरका कर, कान के आभूषणों को कान के ऊपर लटका कर तथा बिखरी हुई लटों को कान के किनारे से ऊपर करके अभिषेक देवताओं की भाँति जल से परिपूर्ण कलशों को लिये हुई उपस्थित हो गईं। पूर्णतः उन्नत स्तन कुम्भ के मण्डलों वाली उन वेश्याओं से घिर कर .जलाशय में प्रविष्ट वह राजा उन्नत कुच के समान कुम्भ मण्डलों वाली हथिनियों से घिरकर जलाशय में प्रविष्ट जंगली हाथी के समान उस समय सुशोभित हुआ। और कुण्ड के जल से बाहर आकर निर्मल स्फटिक मणि के धवल स्नान पीठ पर उस तरह चढ़ गया जैसे वरुण (जल का देवता) राजहंस पर चढ़ गया हो। तदनन्तर उन वेश्याओं ने यथोचित रूप से उस राजा का स्नान संपादित किया। जिनमें से कुछ मरकत मणि के कलश की आभा से श्यामल कान्ति सी होने के कारण पत्तों के पूड़ों से शरीर धारण करने वाली नलिनी-सी प्रतीत हो रही थीं। कुछ रजत कलश

---

१. धरणाभरणाः, २. जलद्रोणि, ३. काश्चन, ४. [illegible]

स्फाटिकैः कलशैस्तीर्थजलेन, काश्चिन्मलयसरित इव चन्दनरसमिश्रेण सलिलेन, काश्चिदुत्क्षिप्तकलशपार्श्वविन्यस्तहस्तपल्लवाः प्रकीर्यमाणनखमयूखजालकाः प्रत्यङ्गुलिविवरविनिर्गतजलधाराः सलिलयन्त्रदेवता इव, काश्चिज्जाड्यमपनेतुमाक्षिप्तबालातपेनेव दिवसश्रिय इव कनककलशहस्ताः कुङ्कुमजलेन वाराङ्गना यथायथं[१] राजानमभिषिषिचुः। अनन्तरमुदपादि च स्फोटयन्निव[२] श्रुतिपथमनेकप्रहतपटुपटहझल्लरीमृदङ्गवेणुवीणागीतनिनादानुगम्यमानो बन्दिवृन्दको[३]लाहलाकुलो भुवन[४]विवरव्यापी स्नानशङ्खानासापूर्यमाणानामतिमुखरो[५] ध्वनिः।

कलशः कुम्भो हस्ते पाणौ यासां तास्तथा। का इव। पूर्णचन्द्रमण्डलात्समग्रशशिबिम्बाद्विनिर्गतेन निःसृतेन ज्योत्स्नाप्रवाहेण कौमुदीरयेण शोभमाना रजन्य इव त्रियामा इव। अन्याः काश्चन कलशस्य कुम्भस्य चोत्क्षेप उत्पाटनं तस्माद्यः श्रमस्तेन यः स्वेदो घर्मजलं तेनार्द्रं स्विन्नं शरीरं देहो यासां ताः स्फाटिकैः स्फटिकसंबन्धिभिः कलशैस्तीर्थजलेन तीर्थाम्भसा च सहिता जलदेवता जलाधिष्ठात्र्य इव। काश्चिदिति। अन्याः काश्चन चन्दनस्य मलयजस्य रसो द्रवस्तेन मिश्रेण संयुक्तेन सलिलेन स्नानं चक्रुः। का इव। मलयसरित इव मलयाचलनद्य इव। ता अपि चन्दनरसमिश्रसलिलाः स्युः। काश्चिदिति। अन्याः काश्चनोत्क्षिप्त उत्पाटितो यः कलशस्तस्य पार्श्वयोर्वामदक्षिणयोर्विन्यस्ताः स्थापिता हस्तपल्लवाः करकिशलयानि याभिस्ताः, प्रकीर्यमाणानीतस्ततो विक्षिप्यमाणानि नखमयूखजालकानि पुनर्भवदीप्तिचया याभिस्ताः। प्रत्यङ्गुलि प्रतिकरशाखं यानि विवरणानि छिद्राणि तेभ्यो विनिर्गता जलधारा पानीयसंततिर्यासां ताः। का इव। सलिलयन्त्रदेवता इव। ता अप्येवंविधाः स्युरित्यर्थः। काश्चिदिति। अन्याः काश्चन कनकस्य सुवर्णस्य कलशो हस्ते यासां ताः का इव। दिवसश्रिय इव वासरलक्ष्मीरिव। केनेव। जाड्यं शीतमपनेतुं दूरीकर्तुमाक्षिप्त आकर्षितो यो बालातपो नव्यालोकस्तेनेव कुङ्कुमजलेन केसरवारिणा। अत्र कुङ्कुमजलबालातपयोरुपमानोपमेयभावः। अन्वयस्तु प्रागेवोक्तः। अनन्तरमिति। अभिषेकानन्तरं स्नानशङ्खानां ध्वनिः शब्द उदपाद्युत्पन्नोऽभूत्।

लिये उस रात की भाँति दिखती थीं जो पूनम के चाँद की चाँदनी के प्रवाह से विभासित हों। कुछ स्फटिक मणि के बने कलशों को उठाने के परिश्रम से निकले हुये पसीने से उस तरह भींग गई थी जैसे तीर्थ-जल से जलदेवता। कुछ मलय पर्वत की नदियों के समान चन्दन के रस से मिश्रित जलवाली प्रतीत हो रही थीं। कुछ उठाये हुये कलश के पार्श्वमें अपने पाणिपल्लव को रखे हुई थीं जिनसे निकलने वाली नखों की किरण-माला बिखर रही थी—प्रतीत होता था अंगुलियों के अन्तराल से बहती हुई धारा के कारण वे फव्वारे के लिये बनी देवप्रतिमा हों। कुछ हाथ में स्वर्ण कुम्भ लिये दिन की लक्ष्मी की भाँति प्रतीत हो रही थीं जो शीत निवृत्ति के लिये बालातप के समान कुंकुम मिश्रित जल उँड़ेल रही थीं। स्नानोंपरान्त कर्ण कुहरों को फाड़ता हुआ-सा पीटे गये हुये अनेक उत्तम नगाड़ों, झल्लरी, मृदंग, बाँसुरी और वीणा के निनाद का अनुसरण करने वाला, स्तुति पाठकों के स्तोत्रों की ध्वनि से संवर्धित, भुवन के विवरों में

---

१. क्रमेण, २. आस्फोटयन्निव, ३. कोलाहलो, ४. भवन, ५. मुखरो,

एवं च क्रमेण निर्वर्तिता[1]भिषेको विषधरनिर्मोकपरिलघुनी धवले परिधाय धौतवाससी[2] शरदम्बरैकदेश इव जलक्षालन[3]निर्मल[4]तनुः, अतिधवलजलधरच्छेद-शुचिना दुकूलपट्टपल्लवेन तुहिनगिरिरिव गगनसरित्स्रोतसा कृतशिरोवेष्टनः, संपा[5]दित-पितृजलक्रियो मन्त्रपूततोयाञ्जलिना दिवसकरमभिप्रणम्य देवगृहमगमत्। उपरचित[6]-पशुपतिपूजश्च[7] निष्क्रम्य देवगृहान्नि[8]र्वर्तिताग्निकार्यो विलेपनभूमौ झङ्कारिभिरलिक-दम्बकैरनुबध्यमानपरिमलेन मृगमदकर्पूरकुङ्कुमवाससुरभिणा चन्दनेनानुलिप्तसर्वाङ्गो विरचितामोदिमालतीकुसुमशेखरः कृत[9]वस्त्रपरिवर्तो[10] रत्नकर्णपूरमात्राभरणः समुचित-भोजनैः सह भूपतिभिराहारमभिमतरसास्वादजातप्रीतिरवनिपो निर्वर्तयामास[11]।

'पद गतौ' इत्यस्य लुङि रूपम्। किं कुर्वन्निव। श्रुतिपथं कर्णमार्गं स्फोटयन्निव द्विधा कुर्वन्निव। पुनः कीदृक्। अतिशयेन मुखरस्तारतरः। किंविशिष्टानां शङ्खानाम्। आपूर्यमाणानां वाद्यमानानाम्। पुनः कीदृशः। अनेकेति। अनेकप्रकारेण प्रहता वादिताः पटवः समर्था ये पटहा दुन्दुभयो, झल्लरी प्रसिद्धा, मृदङ्गो मर्दलो, वेणुर्वंशो, वीणा वल्लकी, गीतानि गानानि चैतेषां यो निनादो ध्वनितः तमनुलक्षीकृत्य गम्यमानः प्रवर्तमानः। पुनःकीदृक्। बन्दिनां वैतालिकानां वृन्दं समुदायस्तस्य कोलाहलः कलकलस्तेनाकुलो मिश्रितः। पुनः कीदृक्। भुवनेति। भुवनानां विष्टपानां विवराणि छिद्राणि व्याप्नोतीत्येवंशीलः स तथा।

एवं च पूर्वोक्तप्रकारेण क्रमेण परिपाट्या निर्वर्तितो विहितोऽभिषेको यस्यैवंभूतो नृपो देवगृहं चैत्यमगमदित्यन्वयः। किं कृत्वा। विषेति। विषधराः सर्पास्तेषां निर्मोकः कञ्चुकस्तद्वत्परिलघुनी अतिहस्वे, अत एव धवले शुभ्रे धौतवाससी प्रक्षालितवस्त्रे परिधाय परिधानं कृत्वा। अथ राजानं विशिनष्टि—जलेति। जलेन पानीयेन यत्क्षालनं तेन निर्मला-पगतमला तनुः शरीरं यस्य स तथा। किमिव। शरदिति। शरदि घनात्यये यदम्बरं गगनं तस्यैकदेशो भागस्तद्वदिव। शरद्यम्बरं वृष्टेरभावान्निर्मलमेवेति भावः। अतीति। अतिधवलो

फैलता हुआ स्नान की पूर्णता के सूचक फूँके जाते हुये शंखों का अत्यन्त तीव्र (नाद) स्वर उत्पन्न हो गया।

इस तरह क्रमशः अभिषेक (स्नान) सम्पन्न करके साँप के केचुल के समान हलके शुभ्र धोती और दुपट्टे को पहन कर राजा ऐसा सुशोभित हुआ जैसे जल बरस चुकने के पीछे धवल शरीर वाला शरत्काल के बादल का एक टुकड़ा हो। अत्यन्त उज्ज्वल जलधर के खण्ड सदृश धवल रेशमी वस्त्र के पल्ले से सर को वेष्ठित कर लेने से वह आकाश गंगा के सोते से विभासित हिमगिरि के समान दिखता था। मन्त्र से पवित्र जल की अंजलि से पितरों का तर्पण तथा भगवान् भास्कर का प्रणाम कर वह देव मन्दिर में चला गया। देवाधिदेव पशुपति की पूजा कर शिवालय से बाहर आकर अग्नि होत्र का सम्पादन किया और विलेपन के स्थान में गूँजते हुये भौंरों से सुरक्षित सौरभ वाले कस्तूरी, कर्पूर, कुंकुम और पटवास की सुगन्ध से युक्त

---

१. आक्षालन, २. विमल, ३. संपन्न, ४. उपचरित, ५. पूजनश्च, ६. कृताम्बर, ७. परिवर्तो,

परिपीत[1]धूमवर्तिरुपस्पृश्य च गृहीतताम्बूलस्तस्मात्प्रमृष्टमणिकु[2]ट्टिमप्रदेशा-दुत्थाय नातिदूरवर्तिन्या ससंभ्रमप्रधावितया प्रतीहार्या प्रसारित[3] बाहुमवलम्ब्य

यो जलधरो मेघस्तस्य यश्छेदः खण्डस्तद्वच्छुचिना निर्मलेन दुकूलपट्टः क्षीरोदपट्टस्तस्य पल्लवेन प्रान्तेन कृतं विहितं शिरोवेष्टनमुत्तमाङ्गवेष्टनं येन स तथा। क इव। तुहिनगिरिरिव हिमाचल इव। गिरिं विशिनष्टि—गगनेति। गगनसरित्स्वर्धुनी तस्या यत्स्रोतः प्रवाहस्तेन कृतशिरो-वेष्टनः। संपादित इति। संपादिता निष्पादिता पितॄणां जलक्रिया येन सः। मन्त्रेति। मन्त्रैर्वेदोक्तैः पूतं पवित्रं यत्तोयं पानीयं तस्याञ्जलिः प्रसृतिस्तेन दिवसकरं सूर्यमभि संमुखं प्रणम्य नमस्कृत्य। उपेति। उपरचिता निष्पादिता पशुपतेरीश्वरस्य पूजार्चा येनैवंभूतः सन् तस्माद्देवगृहान्निष्क्रम्य बहिरागत्यावनिपो राजाऽऽहारमशनादिकं निर्वर्तयामास कृतवानित्यन्वयः। निर्वर्तितेति। निर्वर्तितं कृतमग्निकार्यं होमादि येन सः। विलेपनभूमावङ्गरागनिष्पादनस्थले झङ्कारिभिर्झङ्कारशब्दं कुर्वाणैरलिकदम्बकैर्भ्रमरसमूहैरनुबध्यमानो नियम्यमानः परिमल आमोदो यस्य स तथा तेन। मृगमदेति। मृगमदः कस्तूरी, कर्पूरो हिमवालुका, कुङ्कुमं केसरमेतेषां यो वासः परिमलस्तेन सुरभिणा सुगन्धिनैवंभूतेन चन्दनेन मलयजेनानुलिप्तं लेपितं सर्वाङ्गं समग्रशरीरावयवा येन स तथा। इतो राज्ञो विशेषणानि—विरचितेति। विरचितो रचनाविशेषेण निर्मित आमोदिमालतीकुसुमानि सुगन्धिजातिपुष्पाणि तेषां शेखरः शिरोभूषणं येन स तथा। कृतेति। कृतो विहितः पूर्वपरिहितवस्त्रस्य परिवर्तः परावर्तो येन स तथा। कृतं वस्त्रस्य क्षीरोदवस्त्रस्य परिवर्त उपरिवस्त्रं येनेति वा। रत्नेति। रत्नखचितः कर्णपूरः कर्णाभरणं तन्मात्रमाभरणं यस्य स तथा। ननु नीचजनप्रदर्शनार्थं बहुतरभूषण-धारणमिति मात्रपदव्यङ्ग्यम्। एकपङ्क्तौ समुचितं योग्यं भोजनं येषामेवंभूतैर्भूपतिभिर्नृ-पतिभिः सहेति भिन्नक्रमः। अभीति। अभिमताः श्रेष्ठा ये रसा मधुरादयस्तेषामास्वादो ग्रहणं तेन जातोत्पन्ना प्रीतिः संतुष्टिर्यस्य स तथा।

परीति। मुखसौगन्ध्यप्रतिपादनार्थं परि सामस्त्येन पीता गृहीता धूमवर्तिर्द्रव्यविशेषो येन स तथा। किं कृत्वा। उपस्पृश्याचम्य। 'उपस्पर्शस्त्वाचमनम्' इति कोशः। पुनः किं कृत्वा। भुक्त्वा। भोजनं विधाय। आस्थानमण्डपं परिषन्मण्डपमणिभूमी रत्नबद्धा भूर्यस्मिंस्तत्तथा। अवीति। अविरलं घनतरं विप्रकीर्णेन पर्यस्तेन। यालीज्जगामेत्यन्वयः।

चन्दन सभी शरीर में लिप्त करके सुगन्धित मालती की माला का शिरोभूषण पहन कर, पूजा के वस्त्रों को बदल एकमात्र रत्नमय कर्णपूर नामक अलंकार पहने साथ में भोजन करने योग्य राजाओं के साथ अभीप्सित रसों के आस्वादन से प्रसन्न चित्त राजा ने भोजन सम्पन्न किया।

भोजन के पश्चात् धूम वर्त्ति (सिगार या सिगरेट) को पीकर जल के आचमन से मुख को शुद्ध किया और तदनन्तर पान के बीड़े को ग्रहण कर उस धुले हुये मणिमय फर्श से उठकर सभा मण्डप के लिये चल पड़ा। राजा के फर्श से उठते ही समीप में रहने वाली प्रतीहारी संभ्रम से दौड़ी हुई आई और अपने उस हाथ को पसार दिया जो बेंत की छड़ी को पकड़े रहने

१. धूप; धूपधूम, २ कुट्टिमात्, ३ प्रसारितबाहुम्, प्रसारितम्,

वेत्र[१]लताग्रहणप्र[२]सङ्गादतिजरठकिसलयानुकारिक[३]रतलकरेण, अभ्यन्तरसंचारसमुचितेन परिजनेनानुगम्यमानो, धवलांशुक[४]परिगतपर्यन्ततया स्फटि[५]कमणिमयभित्तिनि[६]बद्धमिवोपलक्ष्यमाणम् अतिसु[७]रभिणा मृगनाभिप[८]रिगतेनामोदिना चन्दनवारिणा सिक्तशिशिरमणिभूमिम्, अविरलविप्रकीर्णेन विमलमणिकुट्टिमगगनतलतारागणेनेव कुसुमोपहारेण निरन्तरनिचितम्, उत्कीर्णशालभञ्जिकानिवहेन संनिहितगृहदेवतेनेव गन्ध-

---

गृहीतमात्तं ताम्बूलं नागवल्लीदलं येन स तथा। तस्मात्प्राङ्निर्दिष्टात् प्रमृष्टेति। प्रमृष्टं सातिशयं मृष्टं मणिकुट्टिमं यस्मिन्नेवंभूतात्प्रदेशात्स्थलात् उत्थाय। उत्थानं कृत्वेत्यर्थः। नातिदूरं वर्तते या सा तया। पुनः कीदृश्या। ससंभ्रमं सभयं प्रधावितया त्वरितं गच्छन्त्या। एवंभूतया। प्रतीहार्या। 'पुंवत्प्रगल्भा या नारी वक्तुं या च विचक्षणा। सा प्रतीहारी' इति। तया प्रसारितः संनिहितः कृतो बाहुर्भुजस्तमवलम्ब्य। तदाश्रयमास्थायेत्यर्थः। परीति। परिजनेन सेवकजनेनानुगम्यमान इति राज्ञो विशेषणम्। अथ सेवकजनं विशेषयन्नाह—वेत्रेति। वेत्रस्य वेतसस्य या लता सरलयष्टिस्तस्या ग्रहणं धारणं तस्य प्रसङ्गोऽभ्यासस्तस्मादतिजरठमतिकठिनं यत्किसलयं तदनुकरोति तादृशं करतलं पाण्यधोभागो यस्यैवंविधः करो हस्तो यस्य स तथा तेन। अभ्यन्तरेति। अभ्यन्तरं बाह्यजनागम्यो यो गृहप्रदेशस्तत्र यः संचारः संचरणं तत्र समुचितो योग्यः स तथा तेन। अथास्थानमण्डपं विशिनष्टि—धवलेति। धवलं शुभ्रं यत् अंशुकं वस्त्रं तेन परिगतः सहितो यः पर्यन्तः प्रान्तस्तस्य भावस्तत्ता तया। स्फटिकमणिमीय या भित्तिः कुड्यं तया निबद्धं निर्मितमिवोपलक्ष्यमाणं दृश्यमानम्। अनेनांशुकानां श्वेतत्वसौक्ष्म्यातिशयो व्यज्यते। अतीति। अतिसुरभिणा मृगनाभिपरिगतेनामोदिना चन्दनवारिणा मलयजपानीयेन सिक्ता सिञ्चितात एव शिशिरा शीतला मणिभूमी रत्नबद्धा भूर्यस्मिंस्तत्तथा। अवीति। अविरलं घनतरं विप्रकीर्णेन पर्यस्तेन। विमलेति। विमलमणीनां निर्मलरत्नानां यत्कुट्टिमं तत्र गगनतलतारागणेनेवाकाशस्थितनक्षत्रसमूहेनेव कुसुमोपहारेण पुष्पप्रकरेण निरन्तरं सर्वकालं निचितं व्याप्तम्। स्तम्भेति। स्तम्भाः स्थूणास्तेषां संचयेन समुदायेन विराजमानं शोभमानम्। स्तम्भसंचयं विशेशयन्नाह—गन्धेति। गन्धसलिलैः सुगन्धिवारिभिः क्षालितेन धौतेन। कलधौतं सुवर्णं तन्मयेन। अत्र विकारार्थे मयट्। उत्कीर्णेति। उत्कीर्यकृताः शालभञ्जिकाः 'पुत्रिकास्तासां निवहः समूहो यस्मिन्स तथा।

के कारण कर्कश हथेली वाला हो गया था उस हाथ का सहारा लेकर एवं अन्तःपुर में संचार योग्य परिजनों से अनुगम्यमान हो उस सभा-भवन में चला जो लहराते हुये उजले रेशमी दुपट्टे के प्रतिबिम्ब कोर से स्फटिक मणि की बनी हुई दीवार में नटित हुआ सा उपलक्षित हो रहा था, जिसका फर्श चन्द्रकान्त मणि से बना था एवं अत्यन्त सुगन्धित कस्तूरी से मिश्रित होने के कारण खुशबूदार चन्दन के घोल से घुला हुआ था, जहाँ निर्मल मणियों का बना फर्श सघन रूप में बिखेरे गये फूलों से उस तरह मनोज्ञ था जैसे तारक पुंजों से गगनतल। जो मण्डप सुगन्धितजल से धुले हुये सोने के खम्भों से विराज रहा था जिन स्तम्भों में उत्कीर्ण पुतलियाँ

---

१ अनवरतवेत्र, २ प्रसङ्गानति; प्रसङ्गादनति, ३ करतलकरेण, ४ जवनिकापरिगत, ५ स्फटिकमय, ६ बद्ध, ७ अतिसुरभि, ८ परिमलेन,

सलिलक्षालितेन कलधौतमयेन स्तम्भसंचयेन विराजमानम्,अतिबहलागुरुधूपपरिमलम्, अखिलविग[1]लितजलनिवहधवलजलधरशकलानुकारिणा कुसुमामोदवासितप्रच्छदपटेन पट्टोपधानाध्या[2]सितशिरो[3]भागेन मणिमयप्रतिपादुकाप्रतिष्ठितपादेन पार्श्वस्थर[4]त्नपादपीठेन तुहि[5]नशिलातलसदृ[6]शेन शयनेन सनाथीकृतवेदिकं भुक्त्वास्थानमण्डपमयासीत्। तत्र च श[7]यने निषण्णः क्षितितलोपविष्टया शनैः शनैरुत्सङ्गनिहितासिलतया खड्गवाहिन्या नवनलिनदलकोमलेन करसंपुटेन संवाह्यमानचरणस्तत्कालोचितदर्शनैरव-

---

केनेव। संनिहिताः समीपस्था गृहदेवता गृहाधिष्ठाव्यो यस्मिन्नेवं भूतेनेव। 'गोस्त्रियोः—' इति पुंवद्भावः। अतीति। अतिबहलोऽतिप्रचुरो योऽगुरुः कृष्णागुरुस्तस्य धूपस्य परिमलः सौगन्ध्यं यस्मिंस्तत्तथा। तुहिनेति। तुहिनं हिमं तस्य शिलातलं तत्सदृशं यच्छयनं शय्या तेन। सनाथीकृता सहिता वेदिका संस्कृतभूमिर्यस्मिंस्तत्तथा। इतः शयनं विशेषयन्नाह— अखिलेति। अखिलः समग्रो विगलितो जलनिवहो नीरसमूहो यस्मिन्नेवंभूतो धवलः शुभ्रो जलधरो मेघस्तस्य शकलं खण्डस्तमनुकारिणा तत्सादृश्यकरणशीलेन। कुसुमेति। कुसुमानां पुष्पाणामामोदः परिमलस्तेन वासितो भावितः प्रच्छदपट उत्तरच्छदो यस्मिंस्तत्तथा तेन। पट्टेति। पट्टस्य पट्टदुकूलस्योपधानमुच्छीर्षकं तेनाध्यासितमधिष्ठितं शिरोधाम शिरःस्थलं यस्मिंस्तत्तथा तेन। मणीति। मणिमया मणिप्रचुराः प्रतिपादुका अधःपीठानि तेषु प्रतिष्ठिताः स्थिताः पादा यस्य तत्तथा तेन। पार्श्वेति। पार्श्वस्थं समीपस्थं रत्नपादपीठं मणिपादासनं यस्मिंस्तत्तथा तेन। अन्वयस्तु प्रागेवोक्तः। तत्र चेति। तत्र शयने निषण्ण उपविष्टो राजा मुहूर्तमिव घटिकाद्वयमात्रमिवासांचक्रे सुष्वाप। इतो राजानं विशेषयन्नाह—क्षितीति। क्षितितले भूमितल उपविष्टया स्थितया तथोत्सङ्गे क्रोडे निहिता स्थापितासिलता खड्गलता ययैवंभूतया खड्गवाहिन्या नवं नूतनं यन्नलिनं कमलं तस्य दलानि पत्राणि तद्वत्कोमलेन मृदुना करसंपुटेन हस्तसंपुटेन शनैः शनैः संवाह्यमानौ संचाल्यमानौ चरणौ पादौ यस्य स तथा तेन। तत्काल इति। तत्काले शयनकाल उचितं योग्यं दर्शनमालोकनं येषामेतादृशैरव-

---

ऐसी लगती थीं जैसे गृहदेवता ही सन्निहित हो गई हों। जहाँ अगरु और धूप का अत्यधिक सौरभ फैला हुआ था उस मण्डप के मध्य में एक पर्यंक बिछा हुआ था जिसका चदरा शारदीय निर्जल जलधर के टुकड़े का अनुकरण कर रहा था तथा फूलों के सौरभ से सुवासित था। जिसके सिर की ओर रेशमी कपड़े के बने तकिये रखे हुये थे, जिस पर्यंक के चारों पाये रत्नों के बने थे, जिसके पास में रत्नों का पायदान सुशोभित था जो हिम के चट्टानों के समान प्रतीत होता था उस सेज पर आसीन हो कुछ समय तक वह पड़ा रहा। उस समय धरती पर बैठी हुई खड्ग धारण करने वाली स्त्रियाँ तलवार को गोद में रखकर ताजे कमल की पंखुड़ियों के समान कोमल करतलों से धीरे-धीरे उसके पैर दबाने लगीं। उस समय अत्यन्त अन्तरंग राजाओं

---

१ परिगलित, २ अध्यवसित, ३ शिरोधाम्ना, ४ रत्नपीठेन, ५ रत्नमयपीठेन, ५ तुहिनगिरिं;

६ सदृक्षशयनेन, ७ शयनतलनिषण्णः,

निपतिभिरमात्यैर्मित्रैश्च सह तास्ताः कथाः कुर्वन्मुहूर्तमिवासांचक्रे। ततो नातिदूरवर्तिनीम् 'अन्तःपुराद्वैशम्पायनमादायागच्छ' इति स[1]मुपजाततद्वृत्तान्तप्रश्नकुतूहलो राजा प्रतीहारीमादिदेश। सा क्षितितलनिहितजानुकरतला 'यथाज्ञापयति देवः' इति शिरसि कृत्वाज्ञां यथादिष्टमकरोत्।

अथ मुहूर्ता[2]दिव वैशम्पायनः प्रतीहार्या गृहीतपञ्जरः कनकवेत्रलतावलम्बिना किंचिदवनत[3]पूर्वकायेन सितकञ्चुकावच्छ[4]न्नवपुषा जराधवलितमौलिना गद्गदस्वरेण

निपतिभिर्नृपैरमात्यैः सचिवैर्मित्रैः सुहृद्भिस्तास्ताः प्रस्तावोचिताः कथा वार्ताः कुर्वन्निवद्धत्। ततः कथासमाप्त्यनन्तरं पूर्वोक्तां प्रतीहारीमित्यादिदेशाज्ञापयामास। कीदृशीम्। नातिदूरवर्तिनीं नातिव्यवधानेन वर्तते या सा ताम्। आज्ञाविषयमाह—अन्तःपुरेति। अन्तःपुरादवरोधात्तं वैशम्पायनं शुकमादायागच्छेति। समुपेति। समुपजातं समुत्पन्नं तस्य शुकस्य वृतान्तप्रश्ने प्रवृत्तिपृच्छायां कुतूहलमाश्चर्यं यस्य स तथेति। राज्ञो विशेषणम्। सा प्रतिहारी क्षितितले निहितौ स्थापितौ जानू नलकीलकौ करतले हस्ततले च यया सा। आसनविशेषेण विनयविशेषो व्यञ्जितः। आज्ञोतरं तस्याः कर्तव्यमाह—यथेति। यथा येन प्रकारेणाज्ञापयत्याज्ञां धत्ते देवो भवानित्यनूद्य शिरसि मस्तके आज्ञां पूर्वोक्तां कृत्वा। स्वशिरसि करतलं निधायेति भावः। यथेति। येन प्रकारेण राज्ञादिष्टमाज्ञापितं तथाकरोच्चकार।

अथेति। अन्तःपुरप्रवेशानन्तरम्। मुहूर्तादिव तावन्मात्रविलम्बादिव वैशम्पायनः शुको राजान्तिकं नृपसमीपमाजगामाययौ। शुकं विशिनष्टि—प्रतीति। प्रतीहार्या पूर्वोक्तया गृहीतमात्तं पञ्जरं यस्य स तथा। कञ्चुकिनेति। कञ्चुकिना सौविदल्लकेनानुगम्यमानोऽनुव्रज्यमानः। केन। विहङ्गजातिप्रीत्या पक्षित्वजातिस्नेहेन जरत्कलहंसेनेव वृद्धराजहंसेनेव। अथ कञ्चुकिनं विशेषयन्नाह—कनकेति। कनकस्य सुवर्णस्य या वेत्रलता वेतसयष्टिस्तामवलम्बत इत्येवंशीलः स तथा तेन। किंचिदिति। किंचिदीषदवनत आनम्रः पूर्वकायो यस्य स तथा तेन। सितेति। सितः श्वेतो यः कञ्चुकः कूर्पासस्तेनावच्छन्नमाच्छादितं वपुः शरीरं यस्य स तथा तेन। जरेति। जरा विस्रसा तया धवलितः शुभ्रीकृतो मौलिर्यस्य स तथा तेन। गदिति। गद्गदः शब्दविशेषः स्वरो यस्य स तथा

मन्त्रियों और मित्रों के साथ विभिन्न प्रकारकी विलक्षण कथाओंकी चर्चा भी कर रहा था। इसके बाद पास ही रहनेवाली प्रतीहारी को उसके वृत्तान्त को पूछने के औत्सुक्य से उत्कण्ठित उस राजा ने आदेश दिया कि अन्तःपुर से वैशम्पायन को लेकर आ जा। उस प्रतीहारी ने घुटने और हथेलियों को धरती पर टेक कर 'जो महाराजकी आज्ञा' ऐसा कह सिर पर आज्ञा रखकर आदेश के अनुसार काम कर दिया। पश्चात् मुहूर्त भर में ही प्रतीहारी वैशम्पायन सहित पींजड़े को हाथ में लिये सोनेकी मूँठ वाली बेंत की छड़ीका सहारा लेने वाले, कुछ-कुछ झुके हुये शरीर वाले, श्वेत वस्त्र के कंचुक से आवृतकाय, बुढ़ापे के कारण सफेद बालों वाले, गद्गद स्वर से

---

१ समुपयात, २ मुहूर्तादेव, ३ आनत, ४ अवच्छिन्न,

मन्दमन्दसंचा[1]रिणा विहङ्गजातिप्रीत्या जरत्कलहंसेनेव कञ्चुकिनानुगम्यमानो राजान्तिकमाजगाम। क्षितितलनिहित[2]करतलस्तु कञ्चुकी राजानं व्य[3]ज्ञापयत्—'देव, देव्यो विज्ञापयन्ति, देवादेशादेष वैशम्पायनः स्नातः कृताहारश्च देव[4]पादमूलं प्रतीहार्यानीतः' इत्यभिधाय गते[5] च तस्मिन्राजा वैशम्पायनमपृच्छत्—'क[6]च्चिदभिमतमास्वादितमभ्यन्तरे भवता किंचिदशनजातम्' इति। स[7] प्रत्युवाच—'देव, किं वा नास्वादितम्। आमत्तकोकिललोचनच्छविर्नीलपाटलः कषायमधुरः प्रकाममापीतो जम्बूफलरसः, हरिनख[8]रभिन्न[9]मत्तमातङ्गकुम्भमुक्तरक्तार्द्रमुक्ताफलत्वींषि खण्डितानि दा[10]डिमबीजानि,

तेन। मन्देति। मन्दंमन्दं शनैः शनैः संचरतीत्येवंशीलः स तथा तेन। क्षितीति। क्षितितले निहितं स्थापितं करतलं येनैवंविधः कञ्चुकी पूर्वोक्तो राजानं नृपं व्यज्ञापयद्विज्ञापनामकरोत्। हे देव हे स्वामिन्, देव्यो राजपत्न्यो विज्ञापयन्ति विज्ञप्तिं सन्मुखेन कारयन्ति। किं तदाह—देवेति। देवादेशात्स्वामिनो नियोगादेष दृश्यमानो वैशम्पायनः शुकः पूर्वं स्नातः कृतस्नानः पश्चात्कृताहारो विहिताशनः। अथ च देवस्य राज्ञः पादमूलं समीपं प्रतीहार्यानयानीतः। इत्यभिधायेत्युक्त्वा तस्मिन्कञ्चुकिनि गते निवृत्ते सति राजा वैशम्पायनमपृच्छत्। कच्चिदिष्टप्रश्ने। भवता त्वयाभ्यन्तरेऽभिमतमिष्टं किंचिदशनजातं भक्ष्यसमूहआस्वादितं जग्धम्। स इति। स शुकः प्रत्युवाच प्रत्यब्रवीत्। देवेति। हे नाथ, किंवेत्यत्र नञि काकुः। तेन सर्वमास्वादितमित्यर्थः। तदेवोत्कर्षतया निरूपयति—प्रकामेति। प्रकाममतिशयेनातृप्तिमर्यादं पीतः पानविषयीकृतो जम्बूः सुरभिपत्रा तस्याः फलानि सस्यानि तेषां रसोऽन्तर्भूतद्रवः। कीदृशः। नीलः सन्पाटलः श्वेतरक्तः। अत एव आमत्तेति। आमत्तो मदोन्मत्तो यः कोकिलः पिकस्तस्य लोचनच्छविरिव छविर्यस्य स तथा। पुनः कीदृक्। कषायोऽम्लो मधुरो मिष्टश्चेति कर्मधारयः। अथ च खण्डितानि शकलीकृतानि। मयेति शेषः। कानि। दाडिमबीजानि। अथैतानि विशेषयन्नाह—हरीति। हरिः सिंहस्तस्य नखरा नखास्तैर्भिन्ना ये मत्तानां मतङ्गानां कुम्भा मांसपिण्डाः तेभ्यो मुक्तान्यपगतानि यानि रक्तानि रुधिराणि तैरार्द्राणि

बोलने वाले, धीरे-धीरे चलने वाले खग जाति के प्रेम से बूढ़े हंस जैसे कंचुकी द्वारा अनुगम्यमान होकर राजा के पास आ गई। धरती पर हथेली टेक कर उस कंचुकी ने राजा को सूचित किया कि महाराज, महारानी लोगों ने कहा है कि श्रीमान् की आज्ञा से यह वैशम्पायन स्नान और भोजन से निवृत्त होकर प्रतीहारी द्वारा श्रीमान् के चरणों के पास ले जाया जा रहा है। ऐसा कह कर उसके लौट जाने पर राजा ने वैशम्पायन से पूछा कि 'अन्तःपुर में आप ने अपने मनोनुकूल भोजन, पान आदि का रसास्वाद किया है'? उस वैशम्पायन ने जवाब दिया कि महाराज मैंने क्या नहीं चखा? मतवाली कोयल की आँख के समान लाल और काले रंग के जामुनों के कसैले और मीठे रस का पान भरपूर किया है। शेर के पंजे से फाड़े गये मत्त मतंगज के कुम्भ स्थल से बहे हुये रक्त से गीले मोती के दानों के समान आभा वाले अनार के दानों

१ चारिणा, २ विहित, निहतकरस्तु, ३ व्यजिज्ञापयत, ४ पादमूले, ५ अपगते तस्मिन्, ६. क्वचित्, ७. स तु, ८. करखरनखर, ९. निर्भिन्न, १०. दाडिमी,

नलिनीदलहरिन्ति द्राक्षाफलस्वादूनि च चूर्णितानि[1] स्वेच्छया प्राचीनामलकीफलानि। किं वा प्रलपितेन बहुना। सर्वमेव[2] देवीभिः स्वयं करतलोपनीयमानममृतायते' इति एवंवादिनो वचनमाक्षिप्य नरपतिरब्रवीत्—'आस्तां तावत्सर्वम्। अपनयतु नः कुतूहलम्। आवेदयतु भवानादितः प्रभृति कात्स्न्र्येनात्मनो जन्म कस्मिन्देशे, भवान्कथं जातः, केन वा नाम कृतम्, का[3] ते माता, कस्ते[4] पिता, कथं वेदानामागमः, कथं शास्त्राणां परिचयः, कुतः कला आसादिताः[5], किंहेतुकं[6] जन्मान्तरानुस्मरणम्,

---

खिन्नानि यानि मुक्ताफलानि तद्वद्धरिवट् कान्तिर्येषु तानि। नलिनीति। नलिनी कमलिनी तस्या दलानि पत्राणि तद्वद्धरिन्ति नीलानि। द्राक्षेति। द्राक्षा गोस्तनी तस्याः फलानि तद्वत्स्वादूनि मिष्टान्येवंविधानि प्राचीनामलकी क्षीरधात्री तस्याः फलानि स्वेच्छया स्वाधीनतया चूर्णितानि मर्दितानि। किंवा नास्वादितानीति पूर्वानुषङ्गः। प्रीत्यतिशयस्यावक्तव्यत्वमाह—किं वेति। बहुना प्रलपितेन कथितेन किं वा। न किमपीत्यर्थः। सर्वमेवेति। जम्बूरसादिकं देवीभी राजपत्नीभिः स्वयं न परतः करतलोपनीयमानं मदर्थमानीयमानममृतायते अमृतवदाचरति। 'उपमानादाचारे' इति क्यच्प्रत्ययेनात्मनेपदम् इति वाक्यसमासो। एवं पूर्वोक्तप्रकारेण वादिनो ब्रुवतः कीरस्य वचनं वाक्यमाक्षिप्य तिरस्कृत्यान्यदेव जिज्ञासितुं प्रष्टुं नरपती राजाऽब्रवीत्। पूर्ववक्तव्यतायामनादरमाह—आस्तां तावदिति। सर्वं पूर्वोक्तं तावदादावास्तां तिष्ठतु। नोऽस्माकं कुतूहलमाश्चर्यं पक्षिणां सर्वशास्त्रविषयकं ज्ञानं स्यादित्येवं रूपमपनयतु दूरीकरोतु। तदेव दर्शयति—आवेदयत्विति। कात्स्न्र्येन समग्रत्वेनादितः प्रभृत्युत्पत्तिसमयादारभ्यावेदयतु कथयतु भवान्। तदेव दर्शयति—आत्मन इत्यादि। कस्मिन्देशे कुत्र जनपद आत्मनः स्वकीयस्य जन्मोत्पत्तिः कथं केन प्रकारेण भवांस्त्वं जात उत्पन्नः। केन वा वैशम्पायन इति नामाभिधानं कृतं विहितम्। ते तव का माता जननी। ते कः पिता जनकः। कथं केन प्रकारेण वेदानामाम्नायानामागम उपलब्धिः। कथं शास्त्राणां न्यायमीमांसादीनां परिचयोऽवबोधः। कुतः कस्मात्कला विज्ञानैकदेशा द्वासप्ततिभेदभिन्ना आसादिता अभ्यस्ताः। किंहेतुकं किंनिमित्तकं

को काटा है। कमल के पत्तों के समान हरे और दाख के फल के समान सुस्वादु पुराने आमलकी फलों को अपनी इच्छा से चूर्ण बना डाला है। श्रीमान् के सामने ज्यादा बकना बेकार है। महारानियों के हाथ से लाये गये सभी सामान अमृत से लग रहे थे। इस तरह बोलने वाले उस तोते की बात को बीच में ही रोक कर राजा बोला। इन सब बातों को यहीं छोड़ो। हम लोगों के कुतूहल को दूर करो। शुरू से ही विस्तार के साथ बतलाओ कि तुम्हारा जन्म किस देश में हुआ है? कैसे पैदा हुये? किसने यह नाम रखा? कौन तुम्हारी माता है? कौन तुम्हारे पिता हैं? किस तरह वेदों का परिज्ञान है? कैसे शास्त्रों से परिचय है? कहाँ से कलायें सीखीं?

---

१. वलितानि; समास्वादितानि, २. सर्वमेवेदम्, ३. माता, ४. कः पिता, ५. समासादिताः, ६. किं जन्मान्तर,

उत वरप्रदानम्, अथवा विहङ्गवेषधारी कश्चिच्छन्नं निवससि, क्व वा पूर्वमुषितम्, कियद्वा वयः, कथं पञ्जरबन्धनम्, कथं चाण्डालहस्तगमनम्, इह वा कथमागमनम् इति। वैशम्पायनस्तु स्वयमुपजातकुतूहलेन सबहुमानमवनिपतिना पृष्टो मुहूर्तमिव ध्यात्वा सादरमब्रवीत्—'देव, महतीयं कथा। यदि कौतुकमाकर्ण्यताम्—

अस्ति पूर्वापरजलनिधिवेलावनलग्ना मध्यदेशालंकारभूता मेखलेव भुवः, वनकरिकुलमदजलसेकसंवर्धितैरतिविकचधवलकुसुमनिकरमत्युच्चतया तारकागणमिव

जन्मान्तरस्य पूर्वजन्मनोऽनुस्मरणमनुभूतार्थज्ञानम्। उताहोस्विद्वरप्रदानम्। यद्वा। केनचिद्वरः प्रदत्तो येन जन्मान्तरं जानासीति भावः। अथवेति पक्षान्तरे। सिद्ध एव वा कश्चित् कश्चन त्वं विहङ्गानां पक्षिणां वेषधारी छन्नं गूढं निवससि निवासं करोषि। क्व वा कस्मिन्स्थलेऽत्रागमनात्पूर्वमुषितं स्थितम्। ते कियद्वार्षिकं वयः कौमारादि। कथं केन प्रकारेण पञ्जरः पक्षिणां गृहं तत्र बन्धनमवस्थानम्। कथं वा चाण्डालहस्तगमनम्। इहास्मिन्प्रदेशे कथं वागमनमिति। तदनन्तरं वैशम्पायनः। तु पुनरर्थे। उपजातं समुत्पन्नं कुतूहलं यस्यैवंभूतेन अवनिपतिना पृथ्वीपतिना सबहुमानं सह बहुमानेनादरेण वर्तमानं यथा स्यात्तथेति क्रियाविशेषणम्। स्वयं नान्तरा पृष्ट आक्षिप्तः सन्प्रश्नानन्तरं मुहूर्तमिव घटिकाद्वयमिव ध्यात्वा ध्यानं कृत्वा सादरं आदरेण सह यथा स्यात्तथाब्रवीदुवाच। तत्किम्। हे देव, यत्पृष्टं तद्विषयिणी महती कथेयम्। यदि च किं तदिति तच्छ्रवणे कौतुकं तदाकर्ण्यतां श्रूयताम्—

अस्तीति। नामेति प्रसिद्धम्। विन्ध्याटव्यस्तीत्यन्वयः। इतोऽटवीं विशेषयन्नाह—पूर्वेति। पूर्वश्चापरश्च पूर्वापरौ यौ जलनिधी समुद्रा तयोर्वेलावनं तटकाननं तावत्पर्यन्तं लग्ना संबद्धा। मध्येति। सह्यहिमालययोर्मध्यं मध्यदेशस्तस्यालंकारभूता। भूषणरूपेत्यर्थः। अत एव मध्यभूषणरूपत्वाद्भुवः पृथिव्या मेखलेव काञ्चीव। पादपैर्वृक्षैरुपशोभिता द्योतमाना। अथ पादपान्विशेषयन्नाह—वनेति। वने कानने करिणो गजास्तेषां कुलानि यूथानि तेषां मदजलस्य दानवारिणः सेकः सेचनं तेन सम्यग्वर्धिता वृद्धिं प्राप्तास्तैः। अतीति। अतिविकचान्यत्यन्तं

किस कारण दूसरे जन्म की स्मृति बनी है? क्या किसी से वरदान मिला है? अथवा पक्षी के रूप में छिपे हुये कोई देव हो? इसके पहले कहाँ निवास था? क्या उम्र है, कैसे पींजड़े में बँध गये? किस तरह चाण्डाल के हाथ लगे! और यहाँ कैसे आगमन हुआ? वैशम्पायन तो अपने आप कुतूहलाक्रान्त राजा के सादर पूछने पर क्षण भर मानो सोचकर आदर सहित बोला, महाराज, यह कहानी बड़ी लम्बी है। यदि कौतूहल है तो सुनिये—

पूर्व समुद्र से पश्चिमी समुद्र के तटों तक फैली हुई, मध्यदेश के भूषण स्वरूप एवं भूदेवी की करधनी जैसी, जंगली हाथियों के मदजल से सींचने के कारण खूब बढ़े हुये तथा अतीव ऊँचा होने के कारण जिनकी चोटियों पर तारक पुंज की भाँति सुश्लिष्ट अत्यन्त विकसित उज्ज्वल फूल

---

१. विहंग, २७. छन्नो, ३. कथं वा, ४. बन्धः, ५. कौतूहलम्, ६. वेलावलग्ना, ७. तारांगणम्,

शिखर[1]प्रदेशसंलग्नमुद्वहद्भिः पादपैरुपशोभिता, मदकलकुररकुलदश्यमानमरिचपल्लवा, करिकलभकरमृदिततमालकिसलयामोदिनी, मधुमदोपरक्तकेरलीकपोलच्छविना[2] संचरद्वनदेवताचरणालक्तकरसरञ्जितेनेव पल्लवच[3]येन संच्छादिता, शुककुलदलितदाडिमीफलद्रवार्द्रीकृततलैरतिचपलक[4]पिकम्पितकक्को[5]लच्युतपल्लवफलशबलैरनवरतनिपतितकुसु[6]मरेणुपांसुलैः पथिकजनरचितलवङ्गपल्लवसंस्त[7]रैरतिकठोरना[8]लिकेरकेत[9]कीकरीर-

---

विकसितानि यानि धवलानि शुभ्राणि कुसुमानि पुष्पाणि तेषां निकरः समूहस्तम् । कीदृशम् । अत्यन्तमुच्चतया शिखरप्रदेशः प्रान्तदेशस्तत्र संलग्नमत एवोच्चत्वाच्छुभ्रत्वाच्च तारकाणां गणमिव नक्षत्राणां समूहमिवोद्वहद्भिर्धारयद्भिः । पुनरटवीं विशिनष्टि—मदेति । मदेन कला मनोज्ञा ये कुररा मत्स्याशनास्तेषां कुलानि तैर्दश्यमाना आस्वाद्यमाना मरिचवृक्षस्य पल्लवा यस्यां सा । करीति । करिणां गजानां कलभास्त्रिंशदब्दकास्तेषां कराः शुण्डादण्डास्तैर्मृदितानि यानि तमालवृक्षस्य किसलयानि तेषामामोदः परिमलो विद्यते यस्यां सा । मध्विति । मधु कापिशायनं तस्य यो मद आवेशस्तेनोपरक्ता लोहितैवंभूता या केरली केरलदेशोद्भवा स्त्री स्वभावतो रक्तवर्णा कोमलाङ्गी, मधुमदात्तु विशेषतो रक्तेति भावः । केनेव । संचरन्त्य इतस्ततो गच्छन्त्यो या वनदेवता अरण्याधिष्ठात्र्यस्तासां चरणानां योऽलक्तकरसो यावकद्रवस्तेन रञ्जितेनेव रक्तीकृतेनेव पल्लवानां किसलयानां चयेन समूहेन संच्छादिताच्छादिता । विराजितेति । लता वल्लयस्तासां मण्डपैर्जनाश्रयैर्विराजितोपशोभमाना । अथ मण्डपान्विशेषयन्नाह—शुकेति । शुककुलैर्दलितानि विदारितानि यानि दाडिमीफलानि तेषां द्रवो रसस्तेनार्द्रीकृतमार्द्रतामुपनीतं तलं मध्यभागो येषां ते तथा तैः । अतीति । अतिचपला अत्यन्तं चञ्चला ये कपयो गोलांगूलास्तैः कम्पिता धूनिता ये कक्कोलाः कोशफलवृक्षास्तेभ्यश्च्युतैः पतितैः पल्लवफलैः शबलाः कर्बुरास्तैः । अनवरतेति । अनवरतं निरन्तरं निपतितानि यानि कुसुमानि पुष्पाणि तेषां रेणवः परागधूलयस्तैः पांसुलाः सरजस्कास्तैः । पथिकेति । पथिकजनैः पान्थलोकै रचितो निर्मितो लवङ्गपल्लवानां लवङ्गवृक्षविशेषकिसलयानां संस्तरः प्रस्तरो येषु तैः । अतीति । अतिकठोरा अत्यन्तकठिना

हैं ऐसे वृक्षों से सुशोभित, जहाँ मरिच के पल्लवों को मतवाले और मनोहर कुरर पक्षियों का झुंड कुतरता रहता है, जहाँ हाथियों के बच्चों के सूँड़ से रौंदे हुये तमाल के पल्लवों का आमोद व्याप्त है शराब के नशे से केरल देश की सुन्दरियों के लाल लाल कपोल के समान अरुण तथा संचरणशील वन देवता के चरण में लिप्त महावर के रस से रंगे हुये से पल्लवों के पुंज से ढकी हुई, तोतों के झुंड द्वारा तोड़े गये अनार के फलों के रस से जहाँ धरती गीली हो गई है, अत्यन्त चंचल बानरों से हिलाये गये कंकोल के तरुओं से झड़े हुये पल्लवों और फलों से शवलित निरन्तर गिरते हुये पुष्पों के परागें से धूसर, विरही जनों द्वारा बनाये गये लवंग के पल्लवों के बिछावनों से मनोज्ञ, अत्यन्त कठोर नारियल, केवड़ा, करीर और मौलश्री से जिसका किनारा

---

१. देशलग्न, २. कोमलच्छविना, ३. प्रचयेन, ४. कपिकुल, ५. कङ्कोल; कम्पिल्ल, ६. धूलीलतावनद्धकुसुम, ७. स्रस्तरैः, ८. नारिकेल; करिकेसर, ९. केतकीपरिगत,

बकुलपरिगतप्रान्तैस्ताम्बूलीलतावनद्धपूगखण्डमण्डितैर्वनलक्ष्मीवास[1]भवनैरिव विरा[2]जिता लतामण्डपैः, उन्मदमातङ्गकपोल[3]स्थलगलित[4]सलिलसिक्तेनेवा[5]नवरतमेलालतावनेन मदगन्धिनान्धकारिता, नखमुखलग्नेभकुम्भमुक्ताफललुब्धैः शबरसेनापतिभिरभिहन्यमानकेसरिशता, प्रेताधिपनगरीव सदासंनिहितमृत्युभीषणा महिषाधिष्ठिता च, समरोद्य[6]तपताकिनीव बाणा[7]सनारोपितशिलीमुखा विमुक्त[8]सिंहनादा च, कात्यायनीव प्रचलितखड्गभीषणा रक्तचन्दनालंकृता च, कर्णीसुतकथेव संनिहितविपुलाचला

नालिकेरा लाङ्गलीवृक्षाः केतक्यः क्रकचच्छदाः करीरा केसरा बकुलाश्च तैः परिगतो व्याप्तः प्रान्तोऽन्त्यप्रदेशो येषां ते तथा तैः। ताम्बूलीति। ताम्बूली नागवल्ली सा चासौ लता चेति कर्मधारयः। तयावनद्धं बद्धं यत्पूगखण्डं क्रमुकवनं तेन मण्डितैः शोभितैः। वनेति। वनलक्ष्मीररण्यश्रीस्तस्या वासस्य वसतेर्भवनानि गृहाणि तैरिव। उन्मदेति। उन्मदा मत्ता ये मातङ्गा गजास्तेषां कपोलस्थलानि करटप्रदेशास्तेभ्यो गलितं च्युतं यत् सलिलं मदजलं तेन सिक्तेनेव सञ्चितेनेव। अत एव मदगन्धिना मदस्य गन्ध इव गन्धो यस्मिन्नेताद्दशेन। अनवरतं निरन्तरमेलानां चन्द्रवालानां लता वल्लयस्तासां वनं काननं तेनान्धकारिता श्यामीकृता। एलारजः संबन्धाच्छ्यामतां प्रापितेत्यर्थः। नखेति। नखानां मुखान्यग्राणि तेषु लग्नान्यासक्तानि यानीभकुम्भमुक्ताफलानि गजमांसपिण्डरसोद्भवानि तेषु लुब्धैर्लोलुपैः शबराणां भिल्लानां सेनापतिभिः सैन्यनायकैरभिहन्यमानं व्यापाद्यमानं केसरिणां नखरायुधानां शतं यस्यां सा तथा। प्रेतेति। प्रेताधिपो यमस्तस्य नगरीव संयमिनीव सदा निरन्तरं सर्वदा सन्निहितो निकटवर्ती मृत्युर्यमस्तेन भीषणा भयकारिणी। पक्षे सदा निकटस्थो यो मृत्युरजगरस्तेन भीषणा भयावहा। यद्वा। कारणे

घिरा हुआ है तथा ताम्बूल की लताओं से संश्लिष्ट पूगीफल के द्रुमों से अलंकृत काननश्री के निवास भूत भव्य भवनों जैसे लताओं के मण्डपों से विराजित, मतवाले हाथियों के कारण मद के सौरभ से सम्पन्न इलायची के झाड़ों से अँधेरी बनाई गई, नख के अग्रभाग में संलग्न हाथियों के कुम्भ स्थल के मोतियों के दानों के लोभी शबर सेनापतियों द्वारा जहाँ सैकड़ों केसरी मारे जा रहे हैं, जो यमपुरी सी दीखती है—महिष (भैंसे) जहाँ जमे हुये हैं तथा सदैव मौत के सिर पर मँडराने से जो भयंकर प्रतीत होती है—यमपुरी भी यम के वाहनभूत महिष से अधिष्ठित तथा 'मृत्यु' के सदैव सन्निधान से भीषण है। समर के लिये तत्पर सेना की भाँति वह है वहाँ बाण और असना नामक पेड़ों पर भौंरे मँडराते हैं तथा शेर दहाड़ते रहते हैं और सेना में धनुष पर बाणों का सन्धान तथा वीरों की सिंह गर्जना होती रहती है। वह कात्यायनी सी दीख पड़ती है वह इधर उधर भटकने वाले गैंड़ों से भयानक तथा रक्त चन्दन के वृक्षों से अलंकृत है और कात्यायनी भी चंचल खड्गलता को धारण करने से भीषण और रक्त चन्दन अथवा रक्त और चन्दन अथवा रक्तरूप चन्दन से विभूषित है। वह कर्णीसुत की कथा जैसी

---

१. भुवनैः, २. विराजितमण्डपैः, ३. स्रवगः प्रस्रवण; सलिलप्रस्रवण, ४. मदसलिल, ५. निरन्तरमेला, ६. सेनेव, ७. समा रोपित; बाणासनारोपित, ८. विविक्त,

शशोपगता च, कल्पान्तप्रदोषसंध्येव प्र[1]नृत्तनीलकण्ठा पल्लवारुणा च, अमृतमथन-वेलेव श्रीद्रुमोपशोभित[2]वारुणीपरिगता च, प्रावृडिव घनश्यामलानेकशतह्रदालंकृता

कार्योपचारान्मृत्युर्व्याघ्रादयस्तैर्भीषणेत्यर्थः। महिषेति। महिषैर्गवलैरधिष्ठिता व्याप्ता च अथ च यमपुरीपक्षे यमस्य वाहनं महिषस्तेनाधिष्ठिता सहिता। समरेति। समरे संग्राम उद्यता या पताकिनी सेना तद्वदिव। उभयोः साम्यमाह—बाणेति। बाणाख्ये वृक्षविशेषे समारोपिताः स्थापिताः शिलीमुखा भ्रमरा यया सा तथा। पक्षे बाणेषु शरेषु सम्यक्प्रकारेणारोपिताः शिलीमुखा लोहखण्डा यस्यामिति विग्रहः। विमुक्तेति। विमुक्तस्त्यक्तः। अर्थात्केसरिभिः। सिंहनादः केसरिध्वनिर्यस्यां सा तथा। पक्षे सुभटैर्विहितः सिंहनाद इव नादो यस्यामिति विग्रहः। पुनः कीदृशी। कात्यायनी सिंहयाना तद्वदिव। उभयोः साम्यमाह—प्रचलितेति। सेनाप्रकर्षेण प्रचलितो यः खड्गो गण्डकस्तेन भीषणा भयावहा। रक्तचन्दनं रक्ताङ्गं वृक्षविशेषस्तेनालंकृता च भूषिता च। पक्षे प्रचलितो यः खड्गः कौक्षेयकस्तेन भीषणा भयजनिका, रक्तमेव चन्दनं तेनालंकृता च। चर्चितेत्यर्थः। कर्णीसुतः कश्चित्क्षत्रियविशेषः तस्य कथा वृत्तान्तस्तद्वदिव। उभयोस्तुल्यतामाह—संनिहितेति। सन्निहितौ समीपवर्तिनौ विपुलाचलौ विपुलाचलसंज्ञकौ सखायौ यस्यां सा तथा। शशस्तस्य मन्त्रिमुख्यस्तेनोपगता सहिता च। अत एव 'कर्णीसुतः करकटः स्तेयशास्त्रप्रवर्तकः। ख्यातौ तस्य सखायौ द्वौ विपुलाचलसंज्ञकौ। शशो मन्त्रिवरस्तस्य' इति बृहत्कथायां कथा निबद्धा। पक्षे संनिहिताः समीपवर्तिनो विपुलाः पृथुला अचलाः पर्वता यस्यां सा तथा। शशो मृदुलोमको लोध्रवृक्षो वा तेनोपगता सहिता च। 'शशो लोध्रे नृभेदे च पशौ' इत्यनेकार्थः। कल्पान्तेति। कल्पान्तस्य युगान्तस्य प्रदोषो रजनीमुखं तस्य या संध्या सायंकालस्तद्वदिव। उभयोः सादृश्यमाह—प्रनृत्ता नीलकण्ठा मयूरा यस्यां सा तथा। तस्तैः

भासित होती है। वहाँ नजदीक ही विशाल पर्वत खण्ड है तथा खरगोश से परिव्याप्त है। कथा भी विपुल और अचल नामक मन्त्रियों या मित्रों से सम्बद्ध तथा शश नाम के नर्मसचिव से विभूषित है। [जिस प्रकार प्राचीन काल में उदयन की कहानी घर के बूढ़ों की जबान पर रहती थी उसी तरह कर्णीसुत की कथा भी अत्यन्त प्रसिद्ध थी। इस कथा की चर्चा पद्मप्राभृतक आदि ग्रन्थों में बिखरी हुई मिलती है[3]। यह कथा आवारागर्दी के लिये विख्यात है] वह प्रलय काल की सन्ध्यासी जान पड़ती है। वहाँ मयूर उन्मुक्त नृत्य करता रहता है और नये नये पल्लवों से वह अरुण है। सन्ध्या भी नीलकण्ठ शंकर के ताण्डव के प्रवर्त्तन से युक्त तथा पल्लवों के सदृश लाल होती है। वह अमृत मन्थन की वेला सी जान पड़ती है। वह बिल्व वृक्ष से सुशोभित वरुण नामक तरुओं से परिव्याप्त हैं। वेला भी लक्ष्मी, कल्पद्रुम आदि रत्नों से सुशोभित तथा वारुणी (सुरा) से व्याप्त हैं। वह प्रावृट् (वर्षा) सी दिखाई देती है। बादलों के समान वह श्यामल है अथवा घनीभूत श्यामता से वह युक्त है और सैकड़ों झीलों से अलंकृत

---

१. प्रनृत्यत्; प्रवृत्तः, २. वारुण, ३. अस्याः कथायाः विवेचनं भूमिकायां द्रष्टव्यम्।

च, चन्द्रमूर्तिरिव सततमृक्षसार्थानुगता हरिणाध्यासिता च, राज्यस्थितिरिव चमरमृग-बालव्यजनोपशोभिता समदगजघटापरिपालिता च, गिरितनयेव स्थाणुसंगता मृगपति-सेविता च, जानकीव प्रसूतकुशलवा निशाचरपरि[1]गृहीता च, कामिनीव चन्दनमृग-

पल्लवैः किसलयैररुणा चेति । पक्षे प्रवृत्तो नीलकण्ठो महादेवो यस्याम् । पल्लववदरुणा रक्ता चेत्यर्थः । अमृतेति । अमृताय सुधायै यन्मथनं विलोडनम् । क्षीरसमुद्रस्येति शेषः । तत्र वेलाम्भसो वृद्धिः समयो वा । तद्वदिव । उभयोः सादृश्यमाह—श्रीति । श्रीद्रुमाः श्रीवृक्षा-स्तैरुपशोभिता वरुणानां वृक्षविशेषाणां समूहो वारुणं तेन परि सामस्त्येन गता प्राप्ता चेत्यर्थः । पक्षे श्रीद्रुमौ लक्ष्मीकल्पद्रुमौ ताभ्यामुपशोभिता वरुणस्येदं वारुणं मद्यं तेन परिगता सहिता च । समुद्रप्रभवत्वात्तस्येति भावः । प्रावृड्वर्षास्तद्वदिव । उभयोः सादृश्यमाह—घनेति । घनं निबिडं श्यामला । अत्यन्तकृष्णेत्यर्थः । अनेकशतसंख्यका ये ह्रदा द्रहाः तैरलंकृता च । पक्षे घनैर्मेघैः श्यामला अनेका भिन्नभिन्नस्वरूपाः शतह्रदा जलबालिकास्ताभिर-लंकृता चेति विग्रहः । चन्द्रस्य कुमुदबान्धवस्य मूर्तिरिव शरीरमिव । उभयोः साम्यमाह । सततेति । ऋक्षा भल्लूकास्तेषां सार्थः समुदायस्तेनानुगता, तथा हरिणैर्मृगैरध्यासिताश्रिता च । पक्षे सततं निरन्तरमृक्षाणि नक्षत्राणि तेषां सार्थः समुदायस्तेनानुगता सहानुयाता हरिणेन मृगेणाध्यासिता च । राज्यस्थिती राज्यमर्यादा सेव । उभयोः साम्यमाह—चमरेति । चमरा-श्चमर्यः, मृगा हरिणाः बालव्यजनानि चामराणि तैरुपशोभिता, सह मदेन वर्तमानाः समदा ये गजा हस्तिनस्तेषां घटाः समुदायास्ते परिपालिता यया सा । अथ च तादृशी राज्यस्थितिरित्यु-

है । वर्षाऋतु भी बादलों से श्यामल तथा सैकड़ों बिजलियों से अलंकृत रहती है । वह चन्द्र की मूर्ति सी दिखाई पड़ती है । निरन्तर रीछों के झुंड वहाँ गमन किया करते हैं तथा हिरन वहाँ बैठे रहते हैं । चन्द्रमूर्त्ति के पीछे नक्षत्रों के समूह अनुगमन करते हैं तथा चन्द्रमा की मूर्त्ति में हिरन अधिष्ठित है । वह राज्यस्थिति सी प्रतीत होती है । चमरीमृगों के बालों के व्यजन (चवँर) से वह सुशोभित है तथा मत्तमतंगजों की घटा से परिपालित है अर्थात् मतवाले हाथियों के भय से जंगल को काटने-छाँटने का साहस कोई नहीं करता अथवा मतवाले हाथी वहाँ पालित हैं । राज्यस्थिति भी चमरी मृग के बालों से बने हुये चमर से सुशोभित और मतवाले हाथियों के झुंड से (सेना के प्रधान अंगभूत) परिपालित है । गिरिजा के समान वह मालूम होती है । वह स्थाणुओं (ठूठे पेड़ों) से युक्त तथा सिंहों से सेवित है, गिरिजा भी स्थाणु = शंकर से संश्लिष्ट तथा वाहनभूत सिंह से सेवित है । वह जानकी सी जान पड़ती है । वह कुश के झुरमुटों को जन्म देने वाली तथा राक्षसों से स्वायत्त कर ली गई है और जानकी भी कुश और लव को जन्म देने वाली तथा राक्षस (रावण) से परिगृहीत है । वह कामिनी के समान जँचती है । वहाँ चन्दन और कस्तूरी के सौरभ का प्रवाह बह रहा है तथा मनोहर अगरु तथा तिलक के वृक्षों से वह विभूषित है । कामिनी भी चन्दन

१. पतिगृहीता,

मदपरिमलवाहिनी [1]रुचिरागुरुतिलकभूषिता च, [2]सोत्कण्ठेव विविधपल्लवानिल-वीजिता समदना च, बालग्रीवेव व्याघ्रनखपङ्क्ति[3]मण्डिता गण्डकाभरणा च, पान[4]-

---

भयोः साम्यम् । गिरीति । गिरेर्हिमाचलस्य तनया पार्वती तद्वदिव । उभयोः सादृश्यमाह— स्थाणिवति । स्थाणवः कीलकाः संगताः प्राप्ता यया सा, मृगपतयः सिंहास्ते सेविता आश्रिता यया सेति विग्रहः । पक्षे स्थाणुर्महादेवस्तेन संगता मिलिता, तथा मूर्तिमान् सिंहो मृगपतिस्तेन सेविता । सिंहवाहनत्वादिति भावः । जानकीति । जानकी सीता तद्वदिव । उभयोः साम्यमाह प्रसूतेति । प्रसूताः कुशानां दर्भाणां लवा यया सा निशाचरैरुलूकादिभिः परिगृहीता स्वीकृता । पक्षे प्रसूतौ जनितौ कुशलवाभिधानौ सुतौ यया सा, निशाचरेण रावणेन परिगृहीता । स्वस्थानं नीतेत्यर्थः । कामिनीति । कामिनी शृङ्गारनायिका सेव । उभयोः सादृश्यमाह—चन्दनमिति । चन्दनं वृक्षः, मृगमदो गन्धधूली तयोः संसर्गाद्यः परिमलस्तं वहतीति सा तथा रुचिरो योऽगुरुवृक्षस्तथा तिलकवृक्षश्च ताभ्यां भूषिता शोभिता चेति । पक्षे चन्दनं च मृगमदश्च तयोरनुलेपनवशात्परिमलस्तं वहतीत्येवंशीला । रुचिरस्य शोभनस्यागुरोः कालागुरुणस्य तिलकेन पुण्ड्रेण भूषिता शोभिता चेति विग्रहः । सेति । प्रियोत्कण्ठया व्रजति या नारी सोत्कण्ठिता तद्वदिव । उभयोः सादृश्यमाह—विविधेति । विविधा अनेकप्रकारा ये पल्लवास्तेषामनिलो वायुस्तेन वीजिता तथा मदनेन मदनद्रुमेण सह वर्तमाना । संयुक्तेत्यर्थः । पक्षे सह मदनेन कन्दर्पेण वर्तमाना समदना सा । उत्कण्ठिता यद्यपि तथा । बालेति । बालाः स्तनंधयास्तेषां ग्रीवा कन्धरा तद्वदिव । उभयोरेकधर्मतामाह—व्याघ्रेति । व्याघ्राः शार्दूला नखाः सुरभि-नखप्राणिनस्तेषां पङ्क्तिः श्रेणी तया मण्डिता शोभिता तथा गण्डका वार्ध्रीणसास्त एवाभरणं यस्यां सेति । पक्षे व्याघ्रनखपङ्क्त्या मण्डिता । अत एव 'शार्दूलदिव्यनखभूषणभूषिताय नन्दात्मजाय' इति । बालरक्षार्थं व्याघ्रनखा बध्यन्त इति प्रसिद्धिः । गण्डस्थलपर्यन्तवर्ति यत्तादृशं ग्रीवास्थं भूषणं देशविशेषे गण्डकमिति प्रसिद्धं तदाभरणं यस्यां सा । पानेति ।

और कस्तूरी के सुरभिनिष्यन्द का वहन करने वाली तथा अत्यन्त सुन्दर अगरु के श्याम तिलक से अलंकृत रहती है । वह उत्कण्ठिता नायिका सी दीख पड़ती है । वह नाना प्रकार के पल्लवों के पवन से वीजित अर्थात् पंखा झलने से शीतल हवा पाने वाली है एवं मदन नामक वृक्षों से युक्त है । उत्कण्ठिता भी वियोगताप को मिटाने के लिये अनेक शीतल पल्लवों से पंखा झलकर पवन का सुख पाती है और काममुक्त रहती है । बच्चों की गरदन जैसी वह प्रतीत होती है । वह संचरणशील बाघों की नखपंक्तियों से अलंकृत तथा गैंडों को भूषणरूप में ग्रहण किये रहती है । बच्चों की ग्रीवा भी बाघों के नखों की माला से सुशोभित तथा रेशम के धागों से बने हुये गंडों से विभूषित रहती है । वह मद्यपान की भूमि जैसी दिखाई देती है । वह सैकड़ों मधु (शहद)

---

१. कृष्णागरु, २. सोत्कण्ठवनिते, ३. पदपङ्क्ति, ४. आपान

भूमिरिव प्रकटितमधुकोश[1]शता प्रकीर्णविविधकुसुमा च, क्वचित्प्रलयवेलेव महावराह-दंष्ट्रासमुत्खातधरणिमण्डला, क्वचिद्दशमुखनगरीव चटुलवानरवृन्दभज्यमानतु[2]ङ्गशाला-कुला, क्वचिदचिरनिर्वृत्तविवाहभूमिरिव हरितकुशसमित्कुसुमशमीपलाशशोभिता, क्वचिदुद्वृत्तमृगपतिनादभीतेव कण्टकिता, क्वचिन्मत्तेव[3] कोकिलकुल[4]प्रलापिनी, क्वचि-

मद्यपानार्थं या भूमिः सा पानभूमिस्तद्वदिव। उभयत्र साम्यमाह—प्रकटितेति। प्रकटित-माविष्कृतं यन्मधु माक्षिकं कोशा एव कोशकाः पट्टसूत्रस्थानानि तेषां शतं यस्यां सा। पक्षे प्रकटितं मधु मद्यं तस्य कोशकानि पानपात्राणि तेषां शतं ययेति विग्रहः। प्रकीर्णानि पर्यस्तानि विविधानि विचित्राणि कुसुमानि यस्यामित्युभयत्र समानम्। क्वचिदिति। क्वचित्प्रदेशे यदा सर्वं जलमयं तदा प्रलयस्तस्य वेलावसरस्तद्वदिव। 'वेला वारादवसरः' इति कोशः। उभयोः सादृश्यमाह—महेति। महावराहाः क्रोडास्तेषां दंष्ट्रा दाढास्ताभिः समुत्खातं सम्यक्प्रकारेण खनितं धरणिमण्डलं पृथ्वीप्रदेशो यस्याः सा तथा। पक्षे महावराहस्य परमेश्वरतृतीयावताररूपस्य दंष्ट्रया समुत्खातमूर्ध्वमानीतं धरणिमण्डलं यस्यामिति विग्रहः। क्वचिदिति। क्वचित्प्रदेशे दशमुखस्य रावणस्य नगरी लङ्का तद्वदिव। उभयत्र साम्यमाह—चटुलेति। चटुलाश्चञ्चला ये वानराः कपयस्तेषां वृन्दं समूहस्तेन भज्यमानास्त्रोट्यमानास्तुङ्गा उच्चाः शालाः शालवृक्षा-स्तैराकुला व्याकुला। पक्षे कपिवृन्देन भज्यमानास्तुङ्गा याः शाला गृहैकदेशास्ताभिराकुला व्यग्रेति विग्रहः। क्वचिदिति। क्वचित्प्रदेशेऽचिरं तत्कालं निवृत्तो निष्पन्नो विवाहः पाणिपीडनं

के छातों तथा रेशम के कीड़ों के सैकड़ों कोसे को प्रकट करने वाली है तथा अनेक प्रकार के बिखरे हुये फूलों से युक्त है। मधुशाला भी सैकड़ों शराब पीने वाले प्यालों को प्रकट रूप से धारण करने वाली तथा अनेक प्रकार के बिखरे हुये फूलों से व्याप्त है। कहीं-कहीं वह प्रलय की वेला सी जान पड़ती है। वह बड़े विशाल जंगली सूकरों से खोदी गई भूमि वाली है और प्रलय वेला भी वराहावतार धारी भगवान् विष्णु के दंष्ट्रा पर उठाई गई पृथ्वी वाली रहती है। कहीं-कहीं वह दशानन की नगरी लंका सी दीख पड़ती है। चंचल वानरों के वृन्द से तोड़े गये अत्यन्त ऊँचे शाल की शाखाओं से व्याप्त है। लंका भी चंचल वानरों की सेना से ऊँचे-ऊँचे राजभवनों को छिन्न भिन्न कर देने से व्याकुल है। कहीं-कहीं वह सद्यः सम्पन्न विवाह की वेदी सी मालूम होती है। वह हरे भरे कुश, समिधा, कुसुम, शमी और पलाश वृक्षों से सुशोभित है और विवाह वेदी भी तत्काल उखाड़े गये कुश, हवनांगभूत समिधा, फूल, शमी और पलाश की लकड़ियों से अलंकृत रहती है। कहीं-कहीं वह रोमांचित नायिका सी दीख पड़ती है। मतवाले शेर के दहाड़ने की गर्जना से वह युक्त है तथा काँटों से पूर्ण है। और नायिका के शरीर में रोमांच मानों इसीलिये हो रहा है कि प्रमत्त सिंह की गर्जना से वह डर गई हो। कहीं-कहीं वह मतवाली सी जान पड़ती है। वह कोयलों के प्रलाप से युक्त है तथा मत्त नारी कोयलों की बोली का अनुकरण कर 'कूकू' का प्रलाप करती रहती है। कहीं-कहीं वह उन्मत्त स्त्री की भाँति

१. कोकशता, २. शृङ्ग; उत्तुङ्ग, ३. उन्मत्त, ४. कुलकल,

दुन्मत्तेव वायुवेगकृततालशब्दा, क्वचिद्विधवेवोन्मुक्ततालपत्रा, क्वचित्समरभूमिरिव शरशतनिचिता, क्वचिदमरपतितनुरिव नेत्रसहस्रसंकुला, क्वचिन्नारायणमूर्तिरिव तमाल-

---

यस्यामेवंविधा भूमिस्तद्वदिव। उभयोस्तुल्यतामाह—हरितेति। यथायोग्यमन्वयः। हरिता नीला ये कुशा दर्भाः, समिध एधांसि, कुसुमानि पुष्पाणि, शमी शिवा, पलाशा ब्रह्मपादपास्तैः शोभिता विराजमाना। डह्वाहभूमिरप्येतादृशी स्यादित्युभयोः साम्यम्। क्वचिदिति। उद्वृत्तो निर्मर्यादो यो मृगपतिः सिंहस्तस्य नादो गर्जितं तेन भीतेव। कण्टको रोमाञ्चः संजातोऽस्या इति कण्टकिता। द्वितीयपक्षे कण्टकिता कण्टकयुक्ता। क्वचिदिति। क्वेति पूर्ववत्। मधुना मत्तेव कोकिलानां परभृतानां कुलानि तेषां कलशब्दरूपः प्रलापो यस्याम्। अथ च 'प्रलापोऽनर्थकं वचः'। क्वचिदिति। उन्मत्तेवोन्मादवातयुक्तेव वायुवेगेन पवनाधिक्येन कृतो विहितस्तालवृक्षैः शब्दो यस्यां सा। उन्मादवातवानपि तालशब्दं करोतीति लोकप्रसिद्धम्। क्वचिदिति। विधवेव मृतभर्तृकेव। उभयोः शब्दसाम्यमाह–उन्मुक्तेति। उन्मुक्तानि त्यक्तानि तालपत्राणि तालदलानि यस्यां सा। पक्ष उन्मुक्तानि तालपत्राणि ताडङ्का ययेति विग्रहः। क्वचिदिति। समरः सङ्ग्रामस्तस्य भूमिरिव। उभयोस्तुल्यतामाह—शरेति। शरा मुञ्जदण्डास्तेषां शतं तेन निचिता व्याप्ता। पक्षे शरा बाणास्तेषां शतैर्निचितेति विग्रहः। क्वचिदिति। अमराणां देवानां पतिः प्रभुरिन्द्रस्तस्य तनुरिव शरीरमिव। उभयोः साम्यमाह—नेत्रेति। वृक्षविशेषाणां सहस्रं तेन संकुला। यद्वा। नेत्राणां जटानां सहस्रं तेन संकुला। 'जटांशुकयोर्नेत्रम्' इत्यमरः। पक्षे नेत्राणां चक्षुषां सहस्रं तेन संकुलेति विग्रहः। क्वचिदिति। नारायणस्य कृष्णस्य मूर्तिरिव शरीरमिव। उभयोः साम्यमाह—तमालेति। तमालैर्वृक्षविशेषैर्नीला। पक्षे तमालवन्नीला। क्वचिदिति। पार्थोऽर्जुनस्तस्य रथः स्यन्दनस्तस्य पताका वैजयन्तीसेव। उभयोस्तुल्यमाह—कपीति। कपिभिर्गोलाङ्गूलैराक्रान्ता। पक्षे कपिचिह्नोपयुक्तेत्यर्थः। क्वचिदिति। अवनिपती राजा तस्य द्वारभूमिरिव। उभयोः सादृश्यमाह—वेत्रेति। वेत्राणि वृक्षविशेषाः लता वल्लयश्च तासां शतं तेन दुःप्रवेशा दुःखेन प्रवेष्टुं

प्रतीत होती है। वह आँधियों में ताल के पत्तों से उत्थित शब्दों से व्याप्त रहती है। और उन्मत्ता वात (धातु विशेष-कफ, वात, पित्त में अन्यतम) के वेग से ताली बजा-बजा कर शब्द करने लग जाती है। कहीं-कहीं वह विधवा स्त्री के समान मालूम होती है। वह ताड़ के पत्तों के झड़ जाने से सूनी-सूनी लगती है और विधवा तालपत्र नामक कर्णाभरण से रिक्त रहती है। कहीं-कहीं वह युद्ध भूमि सी जान पड़ती है। वह सैकड़ों शर नामक झाड़ विशेष (सरपत) से अगम्य रहती है और युद्ध भूमि सैकड़ों बाणोंसे व्याप्त रहती है। कहीं-कहीं वह इन्द्र के शरीर के समान दीख पड़ती है। वह हजारों नेत्र नामक वृक्षों से संकुल है और इन्द्र का शरीर हजार आँखों से युक्त है। कहीं २ यह नारायण की मूर्ति के समान ज्ञात होती है। वह तमाल तरुओं से श्यामल दीख पड़ती है और नारायण का शरीर तमाल के समान श्याम है! कहीं २

नोला, क्वचित्पार्थरथपताकेव [1]कप्याक्रान्ता, [2]क्वचिदवनिपतिद्वारभूमिरिव वेत्रलताशत-दुःप्रवेशा, क्वचिद्विराटनगरीव की[3]चकशताकुला, क्वचिदम्बरश्रीरिव व्याधानुगम्यमान-तरलतारकमृगा, क्वचिद्गृहीतव्रतेव दर्भचीरजटावल्कलधारिणी, अपरिमितब[4]हलपत्र-संचयापि सप्तप[5]र्णोपशोभिता, क्रूरसत्त्वापि मुनिजनसेविता, पुष्पवत्यपि पवित्रा विन्ध्याटवी नाम।

शक्या। पक्षे वेत्रलता वेत्रयष्टयः सरलत्वाल्लतोपमानम्। ताभिर्दुःप्रवेशेत्यर्थः। क्वचि-दिति। क्वचित्प्रदेशे विराटराजनगरी तद्वदिव। उभयोः साम्यमाह—कीचकेति। की-चकाः सच्छिद्रवेणवस्तैराकुला। पक्षे कीचकानां स्वप्रियाबान्धवानां शतं तेनाकुला व्यग्रा। क्वचिदिति। अम्बरमाकाशं तस्य श्रीरिव। उभयसादृश्यमाह—व्याधेति। व्याधैरनुग-म्यमानास्तरला भयविह्वलास्तारकमृगा विचित्रमृगा यस्यां सा। पक्षे व्याधेनानुगम्यमान-स्तरलतारकामृगश्चन्द्रनक्षत्रं यस्यामिति विग्रहः। महादेवेन व्याधरूपधारिणा हतं (?) तस्यार्धं मृगनक्षत्रमिति प्रसिद्धम्। क्वचिदिति। गृहीतेति। गृहीतमात्तं व्रतं नियमो यया सैवंविधेव। उभयतुल्यतामाह—दर्भेति। दर्भाः कुशाः, चीराणि तृणविशेषाणि, जटा शिफा, वल्कलानि चोचानि, एतानि धर्तुं शीलमस्याः सा तथा। पक्षे दर्भचीराणि पूर्वोक्तानि

वह अर्जुन के रथ की पताका के समान दीख पड़ती है। वह कपियों से आक्रान्त है और पताका हनुमान् नामक कपि से आक्रान्त है। कहीं कहीं यह राजाओं के द्वार की भूमि जैसी विदित होती है। वह सैकड़ों बेंत की लताओं से दुष्प्रवेश है। और द्वारभूमि सैकड़ों बेंत की छड़ी धारण करने वाले प्रहरियों के नियन्त्रण से दुष्प्रवेश है। कहीं कहीं वह महाराज विराट की राजधानी सी प्रतीत होती है। वह हवा के झोंकों से चरर मरर की आवाज करने वाले सैकड़ों बाँसों से दुर्गम है और राजधानी सैकड़ों कीचक वंशी उद्धत क्षत्रियों से क्षुब्ध है। कहीं कहीं वह आकाश-लक्ष्मी की भाँति दिखाई देती है। वह शिकारियों के पीछा करने से चंचल पुतलियों वाले मृगों से व्याप्त है और आकाश-लक्ष्मी भी व्याधरूप धारी शंकर से आखेट में मारे गये मृग के अर्धांश को मृगशीर्ष रूप से उपस्थित नक्षत्र के कारण मनोज्ञ है अथवा व्याध नामक एक विशेष तारे से झलमलाते हुये मृगांक को धारण करने से भव्य है। कहीं कहीं वह व्रत में दीक्षित तपस्विनी सी दीख पड़ती है। वह कुश, चीर (तृण या वृक्ष विशेष) जटा (लता) और वल्कल वाले वृक्षों को धारण करने वाली है और तपस्विनी भी कुश, पुराना वस्त्र खण्ड, (चीथड़ा) जटा और वल्कल धारण किये रहती है। अपरिमित प्रचुर पत्रों की राशि वाली होकर भी वह सात पत्रों से शोभित है (परिहार पक्ष में) छतुवन के पेड़ से सुशोभित है। क्रूरसत्त्व वाली होने पर भी वह मुनियों द्वारा सेवित है। अर्थात् वह क्रूरजीवों तथा मुनियों का आवास है। पुष्पवती अर्थात् रजस्वला होकर भी वह पवित्र है। पक्षान्तरमें फूलों से युक्त तथा पावन है। इस तरह की वह विन्ध्याटवी है।

१ कीचकावृता, कीचकशतावृता, २ बहुल, ३ पर्णभूषिता, ४ वानराक्रान्ता, ५ क्षमरपति,

तस्यां च दण्डकारण्यान्तःपाति, सकलभुवनवि[1]ख्यातम्, उत्पत्तिक्षेत्रमिव भगवतो धर्मस्य, सुरपतिप्रार्थनापीत[2]सकलसागरजल[3]स्य मेरु[4]मत्सराद्गगनतल[5]-प्रसारितविकटशि[6]रःसहस्रेण दिवसकररथग[7]मनपथमपनेतुमभ्युद्यतेनावगणितसकल[8]-सुरवचसा विन्ध्यगिरिणाप्य[9]नुल्लङ्घिताज्ञस्य जठरानलजीर्णवातापिदानवस्य, सुरासुर

जटाः संहताः कचाः। 'शिफाजटे संहतौ कचौ' इत्यनेकार्थः। वल्कलानि प्रतीतानि तेषां धारणं विद्यते यस्या इति विग्रहः। अपरीति। अपरिमितान्यगणितानि बहलानि निबिडानि पत्राणि पर्णानि तेषां संचयः समूहो यस्यामेवंभूतापि सप्तपर्णा शोभितेति विरोधः। तत्परिहार-पक्षे सप्तपर्णोऽयुक्छदस्तेन शोभायमानेत्यर्थः। क्रूरेति। क्रूरं सत्त्वं मनो यस्याः सैवंविधापि मुनिजनसेवितेति विरोधः। 'सत्त्वं द्रव्ये गुणे चित्ते व्यवसायस्वभावयोः' इत्यनेकार्थः। तत्परिहारपक्षे क्रूरा हिंस्राः सत्त्वाः प्राणिनो यस्यामिति विग्रहः। मुनिजनतपोमाहात्म्यात्क्रूरा अक्रूरतां गता इत्यत्र व्यङ्ग्यम्। पुष्पवतीति। पुष्पवत्यार्तववत्यपि पवित्रेति विरोधः। तत्परिहारपक्षे पुष्पं सूनं विद्यते यस्यामिति विग्रहः।

तस्यां चेति। तस्यां विन्ध्याटव्यामगस्त्यस्य मुनेर्वातापिद्विष आश्रमपदं मुनिस्थान-मासीदित्यन्वयः। इत आश्रमविशेषणानि। दण्डकेति। दण्डकारण्यं सह्याद्रिसम्बन्धि काननं तदन्तःपाति। तदन्तर्वर्तीत्यर्थः। सकलेति। सकलानि समग्राणि यानि भुवनानि विष्टपानि तेषु विख्यातं प्रसिद्धम्। उदिति। भगवतो माहात्म्यवतो धर्मस्य श्रेयस उत्पत्तिक्षेत्रमिव प्रभवस्थानमिव। इतो मुनिं विशिनष्टि—सुरेति। सुरपतिरिन्द्रस्तस्य प्रार्थना याचना तया पीतं चुलुकीकृतं सकलसागरस्य समग्रसमुद्रस्य जलं पानीयं येन स तथा तस्य। विन्ध्येति। विन्ध्य-गिरिणापि जलवालकाद्रिणाप्यनुल्लङ्घितानतिक्रान्ताऽऽज्ञा शिष्टिर्यस्य स तथा तस्य। अथ विन्ध्यगिरिं विशिनष्टि—मेरुमत्सरादिति। मेरोः सुवर्णाद्रेर्मत्सरान्मात्सर्याद्गगनतल आकाशतले प्रसारितानि विस्तारितानि विकटानि विपुलानि यानि शिरांसि तेषां सहस्रं येन स तथा तेन। दिवसेति। दिवसकरः सूर्यस्तस्य रथः स्यन्दनस्तस्य या गतिर्गमनं तस्याः पन्थाः। 'ऋक्पूरब्धूः—' इत्यत्र्। तम् अपनेतुं दूरीकर्तुमभ्युद्यतेन प्रयतमानेन। अवेति। अवगणितान्य-नादृतानि सकलानि समग्राणि सुराणां देवानां वचांसि वाक्यानि येन स तथा तेन। अथ मुनिं

उस विन्ध्याटवीमें दण्डकारण्यके भीतर एक आश्रम है, जो सम्पूर्ण संसार में विख्यात है। लगता है जैसे भगवान् धर्म की यही जन्म भूमि है। जहाँ देवराज इन्द्र की प्रार्थना से समस्त सागर के जल को पीलेने वाले, सुमेरु पर्वत से ईर्ष्या करके आकाश तल में हजारों विकट शिखरों को पसार कर सूर्य के रथ के पथ को रूँध देने के लिये पूर्णतः तत्पर, सभी देवताओं के बचनों की अवमानना करने वाले विन्ध्य गिरि से भी जिसकी आज्ञा अनुल्लंघनीय है, वातापि नामक दानव को अपने जठरानल में जीर्ण कर देने वाले, सुर

---

१ तलख्यातम्, २ निपीत, ३ सलिलस्य, ४ मेरुशिखर, ५ अम्बरतल, ६ शिखर, ७ गतिपथ, ८ सुरसमूह, ९ असङ्कित,

मुकुटम[१]करपत्र[२]कोटिचुम्बितचरणरजसो द[३]क्षिणामुखविशेषस्य, सुरलोकादेकहुँकारनि[४]पातितनहुष[५]प्रकटप्रभावस्य भगवतो महामुनेरगस्त्यस्य भा[६]र्यया लोपा[७]मुद्रया स्वयमुपरचितालवालकैः करपुटसलिलसेकसंवर्धितैः सुतनिर्विशेषैरुपशोभितं पादपैः, तत्पुत्रेण च गृहीतव्रते[८]नाषाढिना पवित्रभस्मविरचितत्रिपुण्ड्रकाभरणेन कुशचीरवाससा मौञ्जमेखलाकलितमध्येन गृहीतह[९]रितपर्णपुटेन प्रत्युटजमटता भिक्षां दृढदस्युनाम्ना

विशेषयन्नाह—जठरेति। जठरानलेनोदराग्निना जीर्णोऽन्तस्तिरोहितो वातापिदानवो येन स तथा तस्य। सुरा देवा असुरा दानवास्तेषां मुकुटाः किरीटानि तेषु मकरपत्रं मकराकारः पक्षः। 'पत्रं वाहनपक्षयोः' इत्यमरः। तस्य कोटिरग्रं तया चुम्बितं गृहीतं चरणरजोऽङ्घ्रिरेणुर्यस्य स तथा तस्य। दक्षिणेति। दक्षिणा अवाची तस्या मुखमाननं तस्मिन्विशेषकस्तिलकस्तस्य। 'चित्रपुण्ड्रविशेषकः' इति कोषः। सुरेति। सुरलोकादेकहुंकारेणैकहुंकृतिमात्रेण निपातितो भ्रंशितो यो नहुषो राजा तेन प्रकटः स्पष्टः प्रभावो यस्य स तथा तस्य भगवतो माहात्म्यवतः। महांश्चासौ मुनिश्च महामुनिस्तस्योत्कृष्टमननशीलस्य। पुनः कीदृशम्। पादपैर्वृक्षैरुपशोभितम्। अथ पादपान्विशिनष्टि—अगस्त्येति। अगस्त्यस्य भार्यया पत्न्या लोपामुद्रया स्वयमात्मनोपरचितमालवालकमावापो येषां ते तथा तैः। करेति। करा एव पुटानि तैर्यः सलिलस्य जलस्य सेकः सिञ्चनं तेन संवर्धितैर्वृद्धिं प्रापितैरत एव सुतेभ्यः सूनुभ्यो निर्गतो विशेषो येभ्यस्ते तथा तैः। तत्पुत्रेण दृढदस्युनाम्ना पवित्रीकृतम्। अथ तत्पुत्रं विशिनष्टि—पालाशो दण्ड आषाढः स विद्यते यस्यासौ स तेन। पवित्रं यद्भस्म तेन विरचितं निर्मितम्। त्रयाणां पुण्ड्रकाणां समाहारस्त्रिपुण्ड्रकं तिलकविशेषस्तदेवाभरणमलंकारो यस्य स तथा कुशेति। कुशा एव चीरं वासो यस्य स तेन मौञ्जेति। मुञ्जः शरस्तत्संबन्धिनी या मेखला तया कलितो व्याप्तो मध्यो मध्यप्रदेशो यस्य स तथा तेन। गृहीतेति। गृहीतमात्तं हरितं नीलं पर्णपुटं

और असुरों के मुकुट में निर्मित मकराकृति पत्रों के कोर से जिनके चरण रेणुओं को पोंछा जाता रहा है, दक्षिण दिशा के भाल तिलक एवं नहुष को एक ही हुँकार से देवलोक से नीचे गिरा देने के कारण जिनका प्रभाव सर्वत्र प्रकट हो गया है ऐसे महान् मुनि भगवान् अगस्त्य की पत्नी लोपामुद्रा ने जिनकी क्यारियाँ अपने हाथों से बनाई तथा अपनी अंजलि से जल उलीच-उलीच कर जिन्हें सींच कर बड़ा किया एवं जिन पर सुतनिर्विशेष वात्सल्य रखा—ऐसे वृक्षों से मण्डित-घिरा हुआ है वह आश्रम। एवं उनके पुत्र दृढदस्यु ने जिन्होंने दीक्षित होने के नाते पलाश दण्ड धारण कर रखा है, जिनका ललाट पावन भस्म से रचित त्रिपुण्ड्रों से अलंकृत है जिन्होंने कुश के चीर का ही वस्त्र पहन रखा है, मूंज की मेखला से जिनका कटि प्रदेश सुशोभित है एवं जिन्होंने सभी कुटीरों से भिक्षा के लिये भ्रमण करते समय हरे हरे पत्तों को दोना बना लिया है—उस आश्रम को पवित्र बना दिया है। यज्ञ के लिये अत्यधिक

---

१ तटघटितमरकतमय, २ भङ्गकोटि, पत्रकोटि, ३ दक्षिणाशावधू, ४ निपतित, ५ प्रकटन, ६ तद्भार्यया, ७ लोपामुद्रया च, ८ आषाढिव्रतिना, ९ हरिणकर्णपुटेन,

पवित्रीकृतम्, अतिप्रभूतेध्माहरणाच्च यस्मेध्मवाह इति पिता द्वितीयं नाम चकार, दिशि दिशि शु[1]कहरितैश्च कदलीवनैः श्या[2]मलीकृतपरिसरम्, सरिता च कलशयोनि-परिपीतसागरमार्गानुगतयेव बद्धवेणिकया गोदा[3]वर्या परिगतमाश्रमपदमासीत्।

यत्र च दशरथवचनमनुपालयन्नुत्सृष्टराज्यो दशवदनलक्ष्मीविभ्रमविरा[4]मो रामो महामुनिमगस्त्यमनुचरन्सह सीतया लक्ष्मणोपरचितरुचिरपर्णशालः पञ्चवट्यां कञ्चित्कालं सुखमुवास। चिर[5]शून्येऽद्यापि यत्र शाखानिलीननिभृतपाण्डुकपोतपङ्क्त[6]

पत्रपुटं येन स तथा तेन। किं कुर्वता। उटजमुटजं प्रति प्रत्युटजं भिक्षार्थमटता पर्यटनं कुर्वता 'पर्णशालोटजः' इति कोशः। 'अकथितम्' इत्यनेन भिक्षामिति द्वितीया। चः पुनरर्थे। यस्य दृढदस्युनाम्नः पितागस्त्य इध्मवाह इत्यन्वर्थं द्वितीयं नाम चकार निर्ममे। कस्मात्। अतीति। अतिप्रभूता य इध्मानस्तेषामाहरणादानयनात्। दिशीति। दिशि दिशि प्रत्येकदिशि शुकवद्धरितैर्नीलैः कदलीवनै रम्भाकाननैः श्यामलीकृतः कृष्णीकृतः परिसरः पर्यन्तभूर्यस्य तत्तथा तम्। गोदावर्येति। गोदावर्या सरिता परिगतं परिप्राप्तम्। अथ गोदावरीं विशेषयन्नाह—कलशेति। कलशयोनिरगस्त्यस्तेन परिपीतश्चुलुकीकृतो यः सागरः समुद्रस्तस्य मार्गः पन्थास्त-मनुगतयेवानुसृतयेव। वेणीति। वेण्येव वेणिका। बद्धा वेणिका यया सा तथा। 'वेणी धारारयश्च' इति कोषः।

यत्र चेति। यत्र यस्मिन्नाश्रमपदे दशरथनन्दनो नाम रामो महामुनिमगस्त्यमनुचरन्न-नुगच्छन्कंचित्कालं पञ्चवट्यां जनस्थाने सीतया जानक्या सह सुखं यथा स्यात्तथोवास वसतिं चक्रे। किं कुर्वन्। दशरथस्य राज्ञो वचनमाज्ञामनुपालयन्यथा निर्दिष्टः तथैव समाचरन्। इतो रामं विशेषयन्नाह—उत्सृष्टेति। उत्सृष्टं त्यक्तं राज्यं येन स तथा। दशेति। दशवदनस्य दशाननस्य या लक्ष्मीः श्रीस्तस्या विभ्रमो विलासस्तस्य विरामोऽवसानं यस्मात्स तथा। लक्ष्मण इति। लक्ष्मणेन सौमित्रिणोपरचिता कृता रुचिरा मनोहरा पर्णशालोटजो यस्मै स तथा। अथ च यत्र यस्मिन्नाश्रमपदे चिरकालशून्येऽद्याप्येतत्कालपर्यन्तं तरवो लक्ष्यन्ते दृश्यन्त इत्यन्वयः। इतः पादपान्विशेषयन्नाह—शाखेति। शाखासु शालासु निलीनाः संलग्ना निभृतमत्यर्थं पाण्डवः श्वेता ये कपोता रक्तलोचनास्तेषां पङ्क्तयः श्रेणयो येषु ते तथा। कीदृशा इव। अमला

इन्धन जुटाने के कारण पिता अगस्त्य ने जिसका दूसरा नाम इध्मवाह रख दिया था। सभी दिशामें लगे शुक के समान हरे हरे केलों के जंगलों से जिस आश्रम का प्रान्त श्यामल हो गया है। कुम्भज ऋषि के समुद्र को पी लेने पर समुद्र की ओर गमन करने वाली गोदावरी जहाँ मण्डलाकार होकर आश्रम को घेरे हुए बह रही है—ऐसा वह आश्रम था।

एवं जहाँ पिता दशरथ के आदेश का पालन करते हुये राज्य को त्याग, दशानन की राज्यश्री के विलास के नाशक राम सीता के साथ महामुनि अगस्त्य की परिचर्या करते हुए लक्ष्मण से निर्मित अतीव सुन्दर पर्णशाला में पंचवटी के भीतर कुछ समय तक सुखपूर्वक निवास करते रहे। चिर काल से सूने जिस आश्रम में आज भी शाखाओं के अन्तराल में

१ शुककुल, २ श्यामीकृत, ३ कावेर्या, ४ रामो, ५ अतिचिर, ६ पङ्क्तयोऽलग्न,

योऽमललग्नतापसाग्निहोत्रधूमराजय इव लक्ष्यन्ते तरवः। बलिकर्मकुसुमान्युद्धरन्त्याः सीतायाः करतलादिव संक्रान्तो यत्र रागः स्फुरति लताकिसलयेषु। यत्र च पीतोद्गीर्णजलनिधिजलमिव मुनिना निखिलमाश्रमोपान्तवर्तिषु विभक्तं महाह्रदेषु। यत्र[1] च दशरथसुतनिशितशरनिकरनिपातनिहतरज[2]नीचरब[3]लबहलरुधिरसि[4]क्तमूलमद्यापि त[5]द्रागाविद्धनिर्गतपलाशमिवाभाति नवकिस[6]लयमरण्यम्। अधुनापि यत्र जलधरसमये ग[7]म्भीरमभिनवजल[8]धरनिवहनिनादमाकर्ण्य भगवतो रामस्य त्रिभुवनविवरव्यापि-

---

निर्मला लग्नास्तापसानां तपस्विनां यदग्निहोत्रं तस्य धूमानां राजिर्येष्वेवंभूता इव लक्ष्यन्ते। यत्र चेत्यस्य सर्वत्रानुषङ्गः। बलीति। बलिकर्मार्थं कुसुमान्युद्धरन्त्याः पुष्पावचयं कुर्वत्याः सीताया जानक्याः करतलादिव विनिर्गतः सन्। लताकिसलयेषु संक्रान्तो रागः स्फुरति स्फूर्तिमान्भवति। यत्र चेति। मुनिनागस्त्येन पूर्वं पीतं पश्चादुद्गीर्णं च तन्निखिलं जलनिधिजलमिवाश्रमोपान्तवर्तिषु महाह्रदेषु विभक्तं दृश्यते। यत्र चेति। नवानि प्रत्यग्राणि किसलयानि यस्मिन्नेवंभूतमरण्यं अद्यापि आभाति शोभत इत्यन्वयः। तदेव विशिनष्टि— दशरथेति। दशरथस्य सुतौ रामलक्ष्मणौ तयोर्निशिताः तीक्ष्णा ये शरास्तेषां यः निकरः समूहस्तस्य निपातेन निहता ये रजनीचरा राक्षसाः पुण्यजनास्तेषां यद्बलं सैन्यं तत्सम्बन्धि यद्बहलं विस्तृतं रुधिरं रक्तं तेन सिक्तं मूलं यस्य। अत एवाद्यापि तद्रागेणाविद्धानि युक्तानि निर्गतानि पलाशपुष्पाणि यस्मिन्नेवंभूतमिव। अधुनापीति। सांप्रतमपि यत्र यस्मिञ्जलधरसमये वर्षाकाले जीर्णमृगा वृद्धहरिणाः शष्पं बालतृणं तस्य कवलं ग्रासं न गृह्णन्ति नाददते। कीदृशाः। अभीति। अभिनवा नूतना ये जलधरा मेघास्तेषां निवहः समूहस्तस्य निनादं शब्दमाकर्ण्य श्रुत्वा रामस्य भगवतः पूज्यस्य चापो धनुस्तस्य घोषं शब्दं स्मरन्तः स्मृतिविषयीकुर्वन्तः। घोषस्येति स्मृतियोगे मातुः स्मरतीतिवत्कर्मणि षष्ठी। अथ घोषं विशेषयन्नाह। त्रिभुवनेति।

चुपचाप छिपे हुए उजले कबूतरों से वृक्ष ऐसे लक्षित होते हैं मानों तपस्वियों के अग्निहोत्र से उत्थित निर्मल धूमपुंज ही वहाँ उलझ गये हों। जहाँ की लताओं के पल्लवों में पूजा के लिये फूल चुनने वाली सीता की हथेली से निकल कर संक्रमण करने वाला लौहित्य चमक रहा है। समुद्र को पीकर पुनः उगल देने वाले ऋषि कुम्भजद्वारा विभक्त विशाल झील जिस आश्रम के किनारे किनारे वर्तमान हैं। जहाँ का वन आज भी नये नये अरुण पल्लवों से इसलिये सुशोभित है कि राम और लक्ष्मण के तीखे वाणों से मारे गये राक्षसों के सैनिकों के अत्यधिक रक्त से सींचे जाने के कारण आज तक उसकी रक्तिमा से रंजित ही पत्ते निकलते हैं। बुढापे के कारण जिनके शृंग का अगला हिस्सा जर्जर हो गया है ऐसे जानकी से पालित वृद्ध मृग आज भी जहाँ बरसात के समय नूतन जलधर के गम्भीर गर्जन को सुनकर भगवान् राम

---

१. यत्र दशरथसुतशर, २ रजनीचर, ३ बहुल, ४ रक्त, ५ रागानुविद्ध, ६ किसलम्, ७ गम्भीररवम्, ८ जलधरनिनाद,

नश्चापघोषस्य स्मरन्तो न गृह्णन्ति श[1]ष्पकवलमजस्रमश्रुजललुलित[2]दृष्टयो वीक्ष्य शून्या दश दिशो जराजर्जरितविषाणकोटयो जानकीसंवर्धिता जीर्णमृगाः। यस्मिन्ननवरतमृगयानिहतशेषवनहरिणप्रोत्साहित इव कृतसीताविप्रलम्भः कनकमृगो राघवमतिदूरं जहार। यत्र च मैथिलीवियोगदुःखदुःखितौ [3]रावणविनाशसूचकौ चन्द्रसूर्याविव कबन्धग्रस्तौ समं रामलक्ष्मणौ त्रिभुवनभयं महच्चक्रतुः। अत्यायतश्च यस्मिन्दशरथसुत[4]बाणनिपातितो योजनबाहोर्बाहुरगस्त्यप्रसादनागतनाहुषाजगरकायशङ्कामकरोद्[5]षिजनस्य। जनकतनया च भर्त्रा विर[6]हविनोदनार्थमुटजाभ्य[7]न्तरलिखिता यत्र रामनिवासदर्शनोत्सुका पुनरिव ध[8]रणीतलादुल्ल[9]सन्ती वनचरैरद्यापि[10]लोक्यते।

त्रिभुवनं विष्टपं तस्य विवराणि छिद्राणि तानि व्याप्नोतीत्येवंशीलः स तथा तस्य। कीदृशा मृगाः। अजस्रं निरन्तरमश्रुजलेन नेत्रजलेन लुलिता व्याकुलीभूता दृष्टयो नेत्राणि येषां ते तथा। किं कृत्वा। दश दिशो दश ककुभो वीक्ष्यावलोक्य। कीदृश्यो दिशः। शून्याः सजातीयप्राणिरहिताः। मृगान्विशेषयन्नाह। जरेति। जरया वार्धक्येन जर्जरिता विशीर्णा विषाणकोटिः शृङ्गाग्रभागो येषां ते तथा। जानकीति। जानक्या सीतया संवर्धिता वृद्धिं प्रापिताः। यस्मिन्निति। यस्मिन्वने अनवरतं निरन्तरं या मृगयाखेटस्तया निहिता व्यापादितास्तेभ्यः शेषा उद्धरिता एव ये वनहरिणास्तैः प्रोत्साहित इवोत्साहं प्रापित इव। कृतेति। कृतः सीतया विप्रलम्भो वियोगो विप्रतारणं वा येनैवंभूतोऽसौ कनकमृगः सुवर्णमृगो रघोरपत्यं राघवमतिदूरं जहार हृतवान्। 'हृञ् हरणे' धातुः। लिटि रूपम्। यत्र सममिति सहचरितौ रामलक्ष्मणौ महदुत्कृष्टं त्रिभुवनस्य विष्टपस्य भयमातङ्कं चक्रतुर्विदधतुः। कीदृशौ। मैथिलीति। मैथिली जानकी तस्या वियोगेन विरहेण यद्दुःखं तेन दुःखितौ। पुनस्तावेव विशेषयन्नाह—कबन्ध इति।

के त्रिलोक व्यापी धनुष्टंकार की याद आ जाने से निरन्तर आँसुओं से गीली आँखों से सभी दिशाओं को देख देख कर घास का ग्रास तक नहीं ग्रहण करते। जहाँ सदैव शिकार में मारे जाने से बचे हुए जंगली हिरनों के द्वारा प्रोत्साहन पाकर ही मानों सीता को ठग लेने वाला स्वर्णमृग राम को बहुत दूर खींच ले गया था। और जहाँ मैथिली के वियोग दुःख से क्लेशित, रावण के विनाश की सूचना देने वाले, कबन्ध (राक्षस तथा राहु केतु) से ग्रस्त सूर्य और चन्द्र के समान राम और लक्ष्मण ने साथ साथ त्रिभुवन को महान् भय से आतंकित कर दिया था। और जहाँ योजनबाहु का अत्यन्त विशाल हस्त राघव के शर से काट कर गिराये जाने पर ऋषियों के मन में अगस्त्य को प्रसन्न करने के लिए समागत अजगर बने हुये नहुष की शंका को पैदा कर रहा था। और जहाँ जानकी अपने पति-विरह को दूर करने के लिये कुटीर के अभ्यन्तर लिखी हुई वनेचरों को आज भी इस तरह दिखाई देती है मानो राम के निवास को देखने की उत्सुकता से पुनः धरती से ऊपर निकल रही है।

---

१ सम्यक्शष्प, २ दीनदृष्टयो, ३ दशवदनविनाशपिशुनौ, ४ शर, ५ ऋषिगणस्य, ६ विनोदार्थम्, ७ अभ्यन्तरे, ८. धरणितलात्, ९ उल्लसन्तीव, १० उपलक्ष्यते,

तस्य च[1] संप्रत्यपि प्रकटोपलक्ष्यमाणपूर्ववृत्तान्तस्यागस्त्याश्रमस्य नातिदूरे जलनिधिपानप्र[2]कुपितवरु[3]णप्रोत्साहितेनागस्त्यमत्सरात्तदाश्रमसमीपवर्त्यपर इव वेधसा ज[4]लनिधिरुत्पादितः, प्रलयकालवि[5]घट्टिताष्टदिग्वि[6]भागसंधि[7]बन्धं गगनतलमिव ज[8]लपूरितम्, अनवरतमज्जदुन्मदशबरकामिनीकुचकलशलुलितजलम्, उत्फुल्लकुमुद-

---

कबन्धः राहू राक्षसाधिपतिस्तेन हस्तौ गृहीतौ। काविव। चन्द्रसूर्याविव पुष्पवन्ताविव। रावण इति। रावणस्य दशाननस्य यो विनाशस्तस्य सूचकौ ज्ञापकौ। अत्यायतश्चेति। अथ यस्मिन्दशरथसुतो रामस्तस्य बाणैर्विशिखैः निपातितः छिन्नो योजनबाहुनाम्नो दैत्यस्य बाहुर्भुजोऽत्यन्तमायतो विस्तृतः सोऽगस्तिमुनेरप्रसादेन कोपेन आगतः प्राप्तो नहुषस्य राज्ञोऽजगरस्य कायस्तस्य शङ्कामृषिगणस्य मुनिसमुदायस्य चकार विदधे। यत्र चेति। यस्मिञ्जनकतनया सीता भर्त्रा रामेण विरहस्य वियोगस्य विनोदनं परिहारस्तदर्थमुटजस्य पर्णशालाया अभ्यन्तरे लिखिता लिपीकृता सा रामस्य निवासो वसतिस्तस्य यद्दर्शनं तत्र उत्सुका उत्कण्ठिता। यथा पूर्वं धरणितलादुत्थिता तथैव पुनर्भूमितलादुल्लसन्ती वनचरैर्भिल्लैरद्यापि सांप्रतमप्यालोक्यते दृश्यते।

तस्य चेति। तस्य चागस्त्याश्रमस्य संप्रत्यपि इदानीमपि प्रकटोपलक्ष्यमाणः स्पष्टं ज्ञायमानः पूर्ववृत्तान्तो यस्य तस्य नातिदूरेऽगस्त्यमत्सरात्पीताब्धिमात्सर्याद्वेधसा तस्यागस्त्यस्याश्रमस्तस्य समीपवर्ती निकटवर्त्यपरोऽन्यो जलनिधिरिव जलाशय इव उत्पादितः। कीदृशेन वेधसा। जलेति। जलनिधिः समुद्रस्तस्य पानं तेन प्रकुपितः क्रोधं प्राप्तो यो वरुणः प्रचेतास्तेन प्रोत्साहितेन प्रगुणितेन। अथ चेति। यस्य पद्मसरसः पम्पेत्यभिधानमित्यग्रेतनेनान्वयः। इतः सरो विशेषयन्नाह—प्रलयेति। प्रलयकाले कल्पान्ते विघट्टिता नष्टा येऽष्टदिशामष्टककुभां विभागाः प्रदेशास्तत्तत्पर्वतावधिकास्तेषां संधयः संयोगास्तेषां बन्धो मर्यादा यस्मिन्नेवंभूतं भुवि भूमौ निपतितं गगनतलमिव। नभस्तलमिव। जलनैर्मल्यसादृश्यात्तदुपमानम्। जलेनेति। जलेन पानीयेन पूरितं पूर्णमादिवराहेण तृतीयावतारेण वराहरूपेण सम्यक्प्रकारेणोद्धृतं जलाद्बहिरानीतं यद्धरामण्डलं तस्य स्थानमिव। अनवरतेति। अनवरतं निरन्तरं मज्जन्त्यः स्नानं कुर्वत्यो या

जहाँ पहले के वृत्तान्त आज भी स्पष्ट रूप से लक्षित हो रहे हैं ऐसे उस अगस्त्याश्रम के पास ही पम्पा नामक एक पद्म सर है जो समुद्र को पी लेने के कारण कुपित वरुण से प्रोत्साहित विधाता के द्वारा अगस्त्य के मात्सर्य से उनके आश्रम के समीप ही मानो दूसरा सागर उत्पन्न कर दिया गया है। जो लगता है कि प्रलयकाल में आठों दिशाओं की सन्धियों के जोड़ खुल जाने से धरती पर गिरा हुआ नील गगन है। आदि वराह द्वारा धरती को उठा लेने से बना हुआ गहरा स्थान मानो जल से परिपूर्ण हो गया हो। निरन्तर स्नान करती हुई शबर सुन्दरियों के विशाल स्तनों से टकराने के कारण जिसका जल क्षुब्ध बना रहता है। जिसमें कैरव, नीलकमल और कल्हार (विशेष कमल) विकसित हैं। जिसमें उत्फुल्ल कमल के मकरन्द विन्दुओं के गिरने

---

१ चैवंविधस्य, २ कुपित, ३ उत्साहितेन, ४ महाजलनिधि, ५ विघटित, ६ दिग्भाग, ७ बन्धनम्, ८ सलिलपरिपूरितम्,

कुवलयकह्लारम्, उन्निद्रारविन्दमधु¹बिन्दुनिष्यन्दबद्धचन्द्रकम्, अलिकुलपटलान्धकारितसौगन्धिकम् सा²रसितसमदसारसम् अम्बुरुहमधुपानमत्तकलहंसकामिनीकृतकोलाहलम्, अनेक जलचरपत³ङ्गशतसंचलनच⁴लितवाचालवीचिमालम्, अनिलोल्ला⁵सितकल्लोलशि⁶खरसीकरा⁷रब्धदुर्दिनम्; अशङ्किताववतीर्णाभि⁸रम्भःक्रीडारागिणीभिः स्नानसमये वनदेवताभिः केश⁹पाशकुसुमैः सुरभीकृतम्, एकदेशावतीर्णमुनिजना-

---

उन्मदा गर्वाधिष्ठिताः शबराणां भिल्लानां कामिन्यस्तासां कुचौ तावेव कलशौ ताभ्यां लुलितमालोडितं जलं पानीयं यस्य तत्तथा। उत्फुल्लेति। उत्फुल्लानि विकसितानि कुमुदानि कैरवाणि कुवलयानि कुवेलानि कह्लाराणि सौगन्धिकानि यस्मिंस्तथा। उन्निद्रेति। उन्निद्राणि विकसितानि यान्यरविन्दानि कमलानि तेषां मधु मधुरसस्तस्य यो द्रवः कल्कस्तेन बद्धा मयूरपिच्छचन्द्राकाराश्चन्द्रका यस्मिंस्तत्तथा। अलीति। अलीनां भ्रमराणां यानि कुलानि तेषां पटलं समूहस्तेनान्धकारितानि संजातान्धकाराणि सौगन्धिकानि कह्लाराणि यस्मिंस्तत्तथा। 'सौगन्धिकं तु कह्लारम्' इति कोशः। सारसितेति। सारसितेन शब्दितेन वर्तमाना अत एव समदा मदोत्कटाः सारसाः पक्षिविशेषा यस्मिन्। अम्बुरुहेति। अम्बुरुहाणि कमलानि तेषां यन्मधु तस्य पानं तेन मत्ताः कलहंसकामिन्यो वरटास्ताभिः कृतः कोलाहलो यस्मिन्। अनेकेति। अनेके सहस्रशो ये जलचरा नक्रचक्रादयः पतङ्गाः पक्षिणस्तेषां यच्छतमसंख्यातं तस्य संचलनं गमनं तेन चलिताः क्षोभं प्राप्ता वाचाला मुखरा वीचयो लहर्यस्तासां मालाः श्रेण्यो यस्मिन्। अनिलेति। अनिलेन वायुनोल्लासिता उल्लासं प्रापिता ये कल्लोला लहर्यस्त एवोच्चत्वाच्छिखराणि तेषां सीकरैरम्बुकणैरारब्धं विहितं दुर्दिनं मेघजं तमो यस्मिन्। स्नानेति। स्नानसमय आप्लवक्षणे वनदेवताभिर्वनाधिष्ठात्रीभिः केशपाशः केशकलापस्तस्य कुसुमानि प्रसवानि तैः सुरभीकृतं सौगन्ध्यमापादितम्। कुसुमैरित्यत्र क्रियासिद्ध्युपकारकत्वेन करणे तृतीया। इतो वनदेवता विशेषयन्नाह—अशङ्कितेति। शङ्कारहितं यथा स्यात्तथावतीर्णाभिरन्तः प्रविष्टाभिः।

से मयूर पिच्छ पर बने हुये रंगीन चन्द्रक के समान चन्द्रमण्डलाकार चित्र बनते रहते हैं। जहाँ सौगन्धिक पुष्प पर मँडराती भ्रमरावली से अन्धकार की प्रतीति कराई जा रही है। जहाँ मतवाले सारस बोलते रहते हैं। जहाँ कमल के मधु को पी लेने से मतवाली कलहंस की प्रियाओं का कोलाहल होता रहता है। जहाँ सैकड़ों प्रकार के जलचर पक्षियों के संचरण से तरंगों की पंक्तियाँ चंचल और मुखर हो रही हैं। पवन से उठाई गई तरंगों के शिखरस्थ बिन्दुओं के बिखरते रहने से बरसाती दिन की प्रतीति जहाँ होती रहती है। निर्भय होकर स्नानार्थ उतरी हुई तथा जलक्रीडा की अनुरागिणी वनदेवताओं द्वारा अपने केशपाश के सुमनों से जिसका जल सुरभित किया जाता रहा है। जिसका एक घाट जल में प्रविष्ट मुनिजनों द्वारा भरे जाते

---

१. मधुद्रवबद्ध; मकरन्दबिन्दुबद्ध, २ आरसित, ३ पतत्रि, ४ चञ्चलित, ५ उल्लसित, ६ शिशिर, ७ आरचित, ८ अन्तः, ९ केशकुसुमैः,

पूर्यमाणकमण्डलु[1]कलजलध्वनिमनोहरम्, उन्मि[2]षदुत्पलवनमध्यचारिभिः सवर्णतया रसितानुमेयैः [3]कादम्बैरासेवितम्, अभिषेकावतीर्णपुलिन्दराजशब[4]रीकुचचन्दनधूलिधवलिततरम्[5], [6]उपान्तकेतकीरजःपटलबद्धकूलपुलिनम्, आसन्नाश्रमागततापसक्षालितार्द्रवल्कलकषायपाटलतटजलम्, उपतटवृ[7]क्षपल्लवा[8]निलवीजितम्, अविरल-

शङ्काराहित्यं च प्रेक्षकजनाभावात्। अम्भःक्रीडायां जलक्रीडायां रागो यासां ताभिः। पुनस्तदेव विशेषयन्नाह—एकदेशेति। एकदेश एकभागस्तत्रावतीर्णोऽन्तः प्रविष्टो यो मुनिजनस्तेनापूर्यमाणानि जलेन भ्रियमाणानि यानि कमण्डलूनि पात्रविशेषाणि तेषां कलो मधुरो यो जलध्वनिः पानीयशब्दस्तेन मनोहरमभिरामम्। कादम्बेति। कादम्बाः कलहंसास्तैरासमन्तात्सेवितं पर्युपासितम्। अथ कादम्बान्विशिनष्टि—उन्मिषदिति। उन्मिषन्ति विकसन्ति यान्युत्पलानि कुवलयानि तेषां वनं खण्डस्तन्मध्यचारिभिस्तदन्तर्गामिभिः। सवर्णेति। सवर्णतया सदृशतया रसितं स्वनितं तेनानुमेयैरनुमातुं योग्यैः। पुनः प्रकारान्तरेण सरो विशिनष्टि—अभीति। अभिषेकार्थं स्नानार्थमवतीर्णा जलान्तःप्रविष्टाः पुलिन्दराजस्य भिल्लस्वामिनो याः शबर्यः स्त्रियस्तासां कुचाः स्तनास्तेषां चन्दनं मलयजं तस्य धूलिभिः पांसुभिः धवलिततरमतिशयेन शुभ्रीकृतम्। उपान्तेति। उपान्ते समीपे याः केतक्यो मालत्यस्तासां रजः परागस्तस्य पटलं समूहस्तेन बद्धमानद्धं कूलं जलयुक्तं पुलिनं तटं च जलोर्म्भितं यस्मिंस्तत्तथा। आसन्नेति। आसन्ना निकटवर्तिनो ये आश्रमा मुनिस्थानानि तेभ्यः आगताः प्राप्ता ये तापसा ऋषयस्तैः क्षालितानि धूतान्यार्द्राणि जलाविलानि वल्कलानि। 'वल्कलमस्त्रियाम्' इत्यमरः। तैः कषायं तुवरम्। 'तुवरस्तु कषायोऽस्त्री' इत्यमरः। पाटलं च तटजलं यस्मिन्। 'श्वेतरक्तस्तु पाटलः' इत्यमरः। उपेति। तटस्य समीपमुपतटं तत्र ये वृक्षाः पादपास्तेषां पल्लवाः किसलयानि तैर्यः अनिलः वायुस्तेन वीजितं व्यजनवात इवाचरितं यस्मिन्। वनेति। वनराजिभिः काननश्रेणिभिरुपरुद्धमाबद्धं तीरं तटं यस्य तत्तथा। अथ वनराजिं विशिनष्टि—अविरलेति। अविरला निविडा या तमालानां कालस्कन्धानां वीथी

हुये कमण्डलुओं के मधुर स्वन से मनोहर बना रहता है। खिले हुये पद्मवन में विचरण करने वाले उन कादम्बों (एक विशेष प्रकार के हंसों) से वह सेवित है जो कमलों के समान होने के कारण केवल बोलने से अपने अस्तित्व को प्रकट कर पा रहे हैं। स्नान के लिये उतरी हुई पुलिन्दराज की रमणियों के स्तन पर विराजमान चन्दन-परागों से जो अधिक उज्ज्वल जल वाला होता जा रहा है। समीप में उगे हुये केवड़े के पुष्पों के पराग-पुंजों से जिसका तटबन्ध आबद्ध हो गया है। समीपवर्ती आश्रम के तपस्वियों द्वारा गीले वल्कलों की धुलाई करने से जिसके तट का जल कसैला या मलिन और अरुण हो गया है। जो तट के सन्निकट उगे हुये तरुओं के पल्लवानिल से वीजित है। जिसका तीर इस प्रकार की वनराजियों से घिरा हुआ है। जो तमाल की सघन

१ कलध्वनि, २ उन्मिषित, ३ कादम्बकदम्बकैः, कादम्बकककदम्बकैः, ४ सुन्दरी, ५ तरङ्गम्, ६ उपान्तजात, ७ विटपि, ८ पुटानिल,

तमालवीथ्य[1]न्धकारिताभिर्वालिनिर्वासितेन संच[2]रता प्रतिदिनमृष्यमूकवासिना सुग्रीवेणावलुप्तफललघु[3]लताभिरुदवासितापसानां देवतार्चनोपयुक्तकुसुमाभिरुत्पतज्ज[4]लचरपक्षपुटविगलितजलबिन्दुसेकसुकुमारकिसलयाभिर्लतामण्डपत[5]लशिखण्डिमण्डलारब्ध - ताण्डवाभिरनेककुसुमपरिमलवाहिनीभिर्वनदेवताभिः[6] स्वश्वासवासिताभिरिव वनराजिभिरु[7]परुद्धतीरम्, अपरसागरशङ्किभिः सलिलमादातुमवतीर्णैर्जलधरैरिव बहलपङ्क-

---

पंक्तिस्तयान्धकारिताभिः संजातान्धकाराभिः। वालीति। सुग्रीवेण वानराधिपतिनावलुप्तानि दूरीकृतानि यानि फलानि तैर्लघुलता यासु ताभिः। कीदृशेन सुग्रीवेण। वालिनेन्द्रसुतेन निर्वासितेन स्थानाद्भ्रंशितेन। किं कुर्वता। प्रतिदिनं प्रत्यहं संचरता व्रजता। तत्रेति शेषः। ऋष्येति। ऋष्यमूकाभिधानो गिरिस्तत्र वासिना निवसनशीलेन। उदवासिनामिति। उदवासिनां तत्र स्थितिजुषां तापसानां देवतार्चने देवपूजायामुपयुक्तानि सोपयोगानि कुसुमानि पुष्पाणि यासु ताभिः। उत्पतदिति। उत्पतन्तो ये जलचरा नक्रचक्राद्यास्तेषां पक्षपुटानि तेभ्यो विगलिताः स्रस्ता ये जलबिन्दवः पानीयपृषतास्तेषां सेकेन सेचनेन सुकुमाराणि सुकोमलानि किसलयानि यासु ताभिः। लतेति। लतानां वल्लीनां ये मण्डपा आच्छादितप्रदेशास्तेषां तलेऽधःप्रदेशे शिखण्डिमण्डलैर्मयूरसमूहैरारब्धमुत्पादितं ताण्डवं नृत्यं यासु ताभिः। अनेकेति। अनेकानि विभिन्नजातीयानि कुसुमानि पुष्पाणि तेषां परिमलो गन्धस्तं वहन्तीत्येवंशीलास्तास्तथा ताभिः। वनेति। वनदेवता अरण्याधिष्ठात्र्यस्ताभिः स्वश्वासेन स्वकीयश्वासवातेन वासिताभिरिव भाविताभिरिव। अन्वयस्तु प्रागेवोक्तः। पुनः सरो विशेषयन्नाह—वनेति। वनकरिभिररण्यगजैरनवरतं निरन्तरमासमन्तात्पीयमानं सलिलं यस्य तत्तथा। अथ करिणो विशिनष्टि—बहलेति। बहलो निबिडो यः पङ्कः कर्दमस्तेन मलिनैः श्यामैः। कैरिव। जलधरैरिव मेघैरिव। तान्विशिनष्टि—अपरेति। अपरो भिन्नो यः सागरः समुद्रस्तदाशङ्किभिस्तद्भ्रान्तिकारिभिः सलिलमम्भ आदातुं

वीथियों से तिमिराच्छन्न है। जहाँ वालि से निर्वासित होकर इधर-उधर भटकने वाले नित्य ऋष्यमूक पर्वत के निवासी सुग्रीव द्वारा फलों को तोड़ लेने से लतायें हल्की पड़ गई हैं। जल में रहकर तपस्या करने वाले तपस्वियों के देवार्चन योग्य फूलों से जहाँ लतायें लदी पड़ी हैं। जिनके कोमल किसलय उड़ते हुये जलचर पक्षियों के पक्षपुटों से छूते हुये जल बिन्दुओं द्वारा स्नान करते रहते हैं। जिनके लतामण्डपों में मयूरों का उद्धत नृत्य होता रहता है। अनेक प्रकार के पुष्पों के सौरभ को वहन करने वाली वनदेवताओं ने मानों अपने श्वास की सुगन्ध से उन वनराजियों को सुरभित कर रखा है। जिसका जल अत्यधिक कीचड़ से लिप्त उन जंगली हाथियों द्वारा सतत पिया जाता है जो द्वितीय सागर की आशंका से जल देने के लिये उतरे हुये जलधर

---

१ वीथिका, २ च संचरता, ३ परिलघुताभिः, ४ जलचरपतङ्गकुलपक्ष, ५ तलस्थित, ६ देवतानिःश्वासं, ७ रुद्ध,

मलिनैर्वनकरिभिरनवरतमा[1]पीयमानसलिलम्, अगाधमनन्तम[2]प्रतिममपां निधानं पम्पाभिधानं पद्मसरः। यत्र[3] च विकचकुवलयप्रभाश्यामायमानपक्षपुटान्यद्यापि मूर्तिमद्रामशापग्रस्तानीव मध्यचारिणा मालोक्यन्ते च[4]क्रवाकनाम्नां मिथुनानि।

[5]तस्यैवंविधस्य सरसः[6] पश्चिमे तीरेराघवशरप्रहारजर्जरितबा[7]लतरुखण्डस्य च समीपे दिग्गजकरदण्डानुकारिणा जरदजगरेण सततमावेष्टितमूलतया बद्धमहाल-

---

ग्रहीतुमवतीर्णैराकाशादुत्तरितैः। अगाधमलब्धतलमनन्तपरिमितपारमप्रतिमं स्वप्रतिनिधिरहितमपां पानीयानां निधानं शेवधिभूतम्। अक्षयजलत्वात्तदुपमानम्। अभिधानं तु प्राक् प्रतिपादितमेव न पुनः प्रोच्यते। यत्र चेति। यस्मिन्सरसि चक्रवाकनाम्नां रथाङ्गाह्वानां मिथुनानि द्वन्द्वानि मध्यचारिणा वनान्तर्भ्रमणकारिणा। 'पथि चारिणा' इति पाठे पथिकेनेत्यर्थः आलोक्यन्त इत्यन्वयः। चक्रवाकमिथुनानि विशेषयन्नाह—विकचेति। विकचानि विकस्वराणि यानि कुवलयानि नीलाम्बुजन्मानि तेषां या प्रभा कान्तिस्तद्वच्छ्यामायमानानि श्यामवदाचरमाणानि पक्षपुटानि येषां तानि। पुनः कीदृशानीव। अद्याप्येतावत्कालपर्यन्तमपि मूर्तिमान्स्फुरद्रूपो यो रामस्य शापः शपनं तेन ग्रस्तानीव गृहीतानीव।

तस्येति। तस्य सरस एवंविधस्य पूर्वोक्तप्रकारेण वर्णितस्य पद्मसर इत्यभिधानस्य पश्चिमे पश्चिमदिग्वर्तिनि तीरे तटे महान्महीयाञ्जीर्णश्चिरकालीनः शाल्मलीवृक्षः रोचनो द्रुमोऽस्तीत्यन्वयः। तस्य स्थानाभिव्यक्त्या आह—राघवेति। राघवस्य रामस्य ये शरा बाणास्तेषां प्रहार उपघातस्तेन जर्जरिता विसंस्थुला ये बालास्तृणराजास्तरवो वृक्षास्तेषां यत्खण्डं वनं तस्य समीपे निकटे दिशां गजाः हस्तिनस्तेषां ये करदण्डाः शुण्डादण्डास्ताननुकुर्वन्तीत्येवं-

---

जैसे दीख रहे हैं। ऐसा है वह पम्पा नाम का कमलाकर जो अतीव गहरा होने से अथाह है, और छोर न दिखाई देने से जो अनन्त है एवं जो बेजोड़ है तथा जल का निधान है और जिसके मध्य में विहार करने वाले चक्रवाक पक्षियों के जोड़े आज भी इस तरह लक्षित होते हैं कि खिले हुये नील कमल की आभा से पंखों के श्यामल हो जाने पर जैसे वे राम के साकार शाप से ग्रस्त हों। [सुना जाता है कि वियोगकाल में चक्रवाक पक्षियों की प्रणय लीला के वाचाल प्रसंगों से क्षुब्ध होकर राम ने रात में उन्हें भी वियोग की आग में तपने का शाप दे डाला था]

इस प्रकार के उस पम्पासर के पश्चिम तट पर राम के बाणों के प्रहार से जर्जरीकृत ताल नामक वृक्षों के झुरमुटों से सटा एक बहुत पुराना सेमल का पेड़ है। दिग्गज के स्थूल सूँड़ के समान पुराना अजगर जिसके जड़ में ऐसा लिपटा हुआ है कि मालूम होता है कि सींचने की विशाल क्यारी (मेंड) बनी हो। उन्नत स्कन्धों (शाखा विभाग स्थानों) पर लटकने वाले तथा वायु से हिलाये जाते हुये साँपों के केंचुल ही जिसके अंग पर फहराता हुआ

---

१ आपीयमानम्, २ अप्रतिष्ठम्, ३ यत्र, ४ चक्रनाम्नाम्, ५ तस्यैव, ६ पद्मसरसः, ७ जीर्णतालतरु,

वाल इव, तुङ्गस्कन्धावलम्बिभिरनिलवेल्लितैरहिनिर्मोकैर्धृतोत्तरीय इव, दिक्चक्रवाल-परिमाणमिव गृह्णता भुवनान्तरालविप्रकीर्णेन शाखासंचयेन प्रलयकालताण्डवप्रसारित-भुजसहस्रमुडु[1]पतिशेखरमिव विडम्बयितुमुद्यतः, पुराणतया पतनभयादिव वा[2]-युस्कन्धलग्नः, निखिलशरीरव्यापिनीभिरतिदूरोन्नताभिर्जीर्णतया शिराभिरिव परि-गतो व्रततिभिः, जरातिलकबिन्दुभिरिव क[3]ण्टकैराचिततनुः, इतस्ततः परिपीतसा-गरस[4]लिलैर्गगनागतैः पत्ररथैरिव शा[5]खान्तरेषु निलीयमानैः क्षणमम्बुभारालसैरार्द्री-

शीलास्तदनुकारिणस्तेन जरञ्जरीयान्योऽजगरश्चक्रमण्डलस्तेन सततं निरन्तरमावेष्टितं यन्मूलं स्थलं तस्य भावस्तत्ता तया बद्धं नद्धं महन्महीय आलवालमावालं यस्मिन्स तथा। पुनः कीदृश इव। धृतमुत्तरीयमुपसंव्यानं येन स तथा। कैः। अहीनां सर्पाणां निर्मोकैः कञ्चुकैः। निर्मोकं विशिनष्टि—अनिलेति। अनिलो वायुस्तेन वेल्लितैः कम्पितैः। 'वेल्लिते कम्पिताधूत'—इति कोशः। तुङ्ग इति। तुङ्ग उच्चो यः स्कन्धः। प्रकाण्डस्तत्रावलम्बिभिरवलम्बमानैः। अत एवोत्तरीयस्योपमानता। पुनः किं कुर्वतेव। दिगिति। दिशां चक्रवालं मण्डलं तस्य परिणाम मायामस्तदिव गृह्णता ग्रहणं कुर्वता। केन भुवनानामन्तरालं मध्यभागस्तत्र विप्रकीर्णेनेतस्ततः पर्यस्तेन शाखानां लतानां संचयेन संदोहेन। 'शिखाशाखालताः समाः' इत्यमरः। प्रलय इति। प्रलयकाले संहारसमये ताण्डवे नृत्ये प्रसारितमूर्ध्वीकृतं भुजसहस्रं बाहुसहस्रं येन स तथा तम्। अथ चोडुपतिश्चन्द्रः शेखरे यस्यैवंविधं महादेवं विडम्बयितुमुद्यत इव कृतप्रयत्न इव बहुशाखा-वत्वेनात्युच्चत्वेन शशिनोऽपि तच्छिरोवर्तित्वेन च तद्विडम्बकत्वमिति भावः। पुराणेति। पुराणतया जीर्णतया पतनभयादिव प्रपातशङ्कयेव वायोः स्कन्धे लग्नो यस्यैवंभूत इव। अनेन शाखासु महावायुप्रवेगेण प्रकम्पः सूचितः। तिरस्कर्तुं च वायोः स्कन्धे लग्न इत्यपि केचिद्व्याख्यानयन्ति। निखिलेति। व्रततिभिर्लताभिः। 'वल्ली तु व्रततिर्लता' इति कोशः। परिगतः परिवेष्टितः। अथ व्रततीर्विशेषयन्नाह—निखिलेति। निखिलं समग्रं यच्छरीरं तद्व्याप्तुं शीलं यासां ताभिः। अतीति। अतिदूरमतिविप्रकृष्टमुन्नताभिः। काभिरिव जीर्णतया वार्धक्येन शिराभिरिवास्थिबन्धनैरिव। जरेति। कण्टकैराचिता व्याप्ता तनुर्यस्य

दुपट्टा जैसा प्रतीत होता है। दिङ्मण्डल के परिमाण को नापने वाले एवं भुवन के अन्त स्तल में फैले हुये शाखा-समुदाय से जो प्रलय वेला में ताण्डव करने के प्रसंग में फैलाये गये हजारों हाथों वाले भगवान् चन्द्रशेखर का अनुकरण करने वाला सा प्रतीत हो रहा है। अत्यन्त पुराना (वृद्ध) होने के कारण गिर पड़ने की आशंका से पवन के गले से जो संलग्न है। समस्त शरीर में व्याप्त एवं बुढ़ापे के कारण अत्यन्त उभरी हुई शिराओं के समान लताओं से जो घिरा हुआ है। जरा के कारण तिल के समान काले धब्बों जैसे कांटों से जिसका शरीर परिव्याप्त है। जिसके शिखर का दर्शन जलद मण्डल को भी नहीं मिल पाता क्योंकि समुद्र के जल को पीकर इधर-उधर से आकाश विहारी पक्षियों की भाँति गगन मार्ग से आये हुये

१ उडुपतिशकलशेखर, २ पवन, गगन, ३ निजकण्टकैः, ४ जलैः, ५ शाखान्तदेशेषु,

कृतपल्लवैर्जलधरपटलैरप्यदृष्टशि¹खरः, तु²ङ्गतया नन्दनवनश्रियमिवा³वलोकयितु-मभ्युद्यतः स्व⁴समीपवर्तिनामुपरि संचरतां ग⁵गनतलगमनखेदायासितानां रविरथ-तुरङ्गमाणां सृक्कपरिस्रुतैः फेनपटलैः संदेहिततूलराशिभिर्धवलीकृतशिखरशाखः, वनगजकपोलकण्डूयनलग्न⁶मदनिलीनमत्तमधुकरमालेन लोहशृङ्खलाबन्ध⁷ननिश्चलेनेव कल्पस्थायिना मूलेन समुपेतः, कोटराभ्यन्तरनिविष्टैः स्फुरद्भिः⁸ सजीव इव मधुकर-

---

स तथा। कैरिव। जराया विस्रसाया ये तिलकबिन्दवस्तैरिव। अतिवार्धक्ये शरीरे कृष्णबिन्दवो जायन्त इति लोकप्रसिद्धिः। जलेति। जलधरपटलैर्मेघसमूहैरप्यदृष्टमनवलोकितं शिखरं प्रान्तप्रदेशो यस्य स तथा। मेघपटलं विशेषयन्नाह—इत इति। इतस्ततः समन्तात्परिपीतं सागरसलिलं समुद्रपानीयं यैस्ते तथा तैः। अथ च गगनागतैः। कैरिव। शाखान्तरेषु शालान्तरेषु निलीयमानैर्गुप्ततया तिष्ठद्भिः पत्ररथैरिव पक्षिभिरिव। क्षणमिति। क्षणं क्षणमात्रं यावदम्बुभारालसैर्जलभारेण मन्दगामिभिः। आर्द्रीति। आर्द्रीकृता जलेन स्विन्नाः पल्लवाः यैस्ते तथा तैः। तुङ्गेति। तुङ्गतयोच्चतया नन्दनवनमिन्द्रोद्यानं तस्य या श्रीस्तामिव अवलोकयितुं द्रष्टुं अभ्युद्यत उद्यतः। स्वसमीपेति। धवलीकृता शुभ्रीकृताः शिखरस्याग्रस्य शाखा यस्य स तथा। कैः। फेनपटलैः कफसमूहैः। कीदृशैः। संदेहितः संदेहविषयीकृतस्तूलराशिराबीज-कार्पासकपिण्डो यैस्ते तथा तैः। स्वेति। स्वस्य समीपवर्तिनां निजनिकटवर्तिनामुपर्यूर्ध्वं संचरतां गच्छताम्। अथ च गगनतलमाकाशतलं तत्र यद्गमनं संचरणं तेन यः खेदः प्रयास-स्तेनायासितानां खिन्नानां रविरथतुरङ्गमाणां सूर्यरथाश्वानां सृक्कमोष्ठप्रान्तस्ततः परिस्रुतैः पतितैः फेनपटलैः। वनेति। वनगजा अरण्यकरिणस्तेषां कपोलयोः कण्डूयनेन खर्जूयनेन लग्नो यो मदो दानं तत्र निलीना लग्ना ये मत्ता मधुकरा भ्रमरास्तेषां माला यस्यैवंभूतेन। 'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य' इति ह्रस्वः। अतो नैल्यसाम्याल्लोहस्य वा शृङ्खलान्दुकस्तेन बन्धनं नियन्त्रणं तेन निश्चलेनेव स्थिरेणेवात एव कल्पस्थायिना कल्पान्तं तिष्ठता। एतेन स्वस्यातिवृद्ध-त्वेन शैथिल्यनिवृत्त्यै भ्रमरवेष्टनस्य कटिबन्धनत्वं प्रदर्शितमिति भावः। एतादृशेन मूलेन

शाखाओं के मध्य में ही जल के भार वहन से परिश्रान्त होकर छिप जाने वाले बादल जिसके पल्लवों को गीला बनाते रहते हैं⁹। अत्यन्त ऊँचा होने के कारण नन्दन कानन की लक्ष्मी को देखने के लिये मानो जो तत्पर है। अपने समीप से ही ऊपर चलने वाले सूर्य के रथ में जुते हुये उन घोड़ों के—जो गगन तल में चलने के परिश्रम से श्रान्त हैं—मुख के कोने से निकल कर गिरने वाले फेन पुंज से जिसके शिखर की शाखायें धवलित होकर इस तरह संशय पैदा करती हैं मानो तूल राशि उन पर बिखर गई हों। जंगली हाथियों के कपोल खुजलाने से लगे हुये मद का रस पीने में लीन मत्त मधुपों की माला जो कि लौह निर्मित जंजीर की भाँति

---

१ शिखरदेशः, २ उत्तुङ्गतया, ३ आलोकयितुम्, २ समीप, ५ अम्बरतल, ६ मदसलिल, ७ बन्ध, ८ पतद्भिः, ९ अत्यन्त उन्नत होने से बादल उसके मध्य तक ही रह जाते हैं।

पटलैः, दुर्योधन इवोपलक्षितशकुनिपक्षपातः, नलिननाभ इव वनमालोपगूढः, नवजलधरव्यूह इव नभसि दर्शितोन्नतिः, अखिलभुवनतलावलोकनप्रासाद इव वनदेवतानाम्, अधिपतिरिव दण्डकारण्यस्य, नायक इव सर्ववनस्पतीनाम्, सखेव विन्ध्यस्य, शाखाबाहुभिरुपगृह्येव विन्ध्याटवीं स्थितो महाजीर्णः शाल्मली।

भ्नेन समुपेतः संयुक्तः। कोटरेति। कोटरो निष्कुहस्तस्याभ्यन्तरं मध्यभागस्तत्र निविष्टैः प्रविष्टैः स्फुरद्भिर्दीप्यमानैर्मधुकरपटलैर्भ्रमरसमूहैः सजीव इव श्वासादिप्राणयुक्त इव। भ्रमराणामन्तश्चारित्वेन तदुपमानम्। दुर्योधनेति। दुर्योधनो गान्धारीतनयस्तद्वदिव। उभयोः सादृश्यमाह—उपेति। उपलक्षितो दृग्विषयीकृतः शकुनीनां पक्षिणां पक्षाणां छदानां पातो यस्मिन्स तथा। पक्षे शकुनौ मातुले पक्षपातोऽङ्गीकारो यस्येति विग्रहः। नलिनेति। नलिननाभः कृष्णस्तद्वदिव। उभयोः सादृश्यमाह—वनेति। वनमालया वनश्रेण्योपगूढ आच्छादितः। पक्षे वनमाला भूषणविशेषस्तेनोपगूढ आलिङ्गितः। नवेति। नवा नूतना ये जलधरा मेघास्तेषां व्यूहः समूहस्तद्वदिव। उभयोः साम्यमाह—नभसीति। नभस्याकाशे दर्शितोन्नतिर्येन स तथा। उभयोः साम्यवादभङ्गश्लेषः। अखिलेति। अखिलानि समग्राणि यानि भुवनतलानि तेषामवलोकनं निरीक्षणं तदर्थं प्रासादो देवगृहं स इव। कासाम्। वनदेवतानामरण्याधिष्ठात्रीणां सुरीणाम्। दण्डक इति। दण्डकनाम्नोऽरण्यस्य वनस्याधिपतिरिव स्वामीव। नायकेति। नायक इवाध्यक्ष इव। कासाम्। सर्वेति। पुष्पं विना फलं येषां ते वनस्पतयस्तेषां सर्वेषाम्। सखेति। सखेव मित्रमिव। कस्येत्यपेक्षायामाह—विन्ध्यस्येति। विन्ध्यस्य जलबालकस्य। शाखेति। शाखा एव बाहवो भुजास्तैः विन्ध्याटवीं विन्ध्यभूमिमुपगृह्य आलिङ्ग्येव स्थित आश्रितः।

प्रतीत होती है उस (माला) से निबद्ध होकर सुस्थिर होने से आकाश स्थायी मूल से जो संयुक्त है। जो कोटर में प्रविष्ट मधुकरों के फड़फड़ाने से सजीव प्रतीत होता है। जो दुर्योधन के समान है—यहाँ पक्षियों के पंखों का पतन लक्षित होता है और दुर्योधन शकुनि का पक्षपात करने वाला विख्यात था। जो पद्मनाभ (विष्णु) के समान है—यह वनों की माला से घिरा हुआ है और पद्मनाभ वनमाला (वैजयन्ती—आजानुलम्बमान अथवा नवरत्नों से ग्रथित माला) से आश्लिष्ट हैं। जो नये बादलों की घटा के समान है—यह आकाश में अपनी ऊँचाई दिखाने वाला है और घनघटा सावन में पूर्णतः उन्नति दिखाने वाली रहती है। जो समस्त भुवनमण्डल को देखने के लिये वन देवताओं के ऊँचा प्रासाद सा दिखाई देता है। जो दण्डक वन का अधिपति जैसा प्रतीत होता है। जो सभी वनस्पतियों के नेता जैसा लक्षित होता है। जो विन्ध्य गिरि के सखा की भाँति परिज्ञात होता है। एवं जो अपनी शाखा रूपी बाहुओं से विन्ध्याटवी (नायिका) का आलिंगन किये हुये खड़ा है।

१ पद्मनाभ, २ कृतोन्नतिः, ३ विन्ध्याचलस्य, ४ उपगृह्य; भवनुद्य, ५ भवस्थितः, ६ शाल्मलीवृक्षः,

तत्र च शाखाग्रेषु कोटरोदरेषु पल्लवान्तरेषु स्कन्धसन्धिषु जीर्णवल्कविवरेषु[1] महावकाशतया विस्रब्धविरचितकुलायसहस्राणि दुरारोहतया विग[2]तभयानि नानादेशसमागतानि शुकशकुनिकुलानि प्रतिवसन्ति स्म। यैः परिणामविरलदल[3]संहतिरपि स वनस्पतिरविरलदलनिचयश्[4]यामल इवोपलक्ष्यते दिवानिशं निलीनैः। ते च त[5]स्मिन्नतिवा[6]ह्यातिवाह्य निशा[7]मा[8]त्मनीडेषु प्रतिदिनमुत्थायोत्थायाहारान्वेषणाय नभसि विरचितपङ्क्तयः, मदकलब[9]लभद्रहलमु[10]खाक्षेप-

तत्र चेति। तस्मिन्वृक्षे शुकाः कीराः शकुनयोऽन्ये पतत्त्रिणस्तेषां कुलानि संतानानि प्रतिवसन्ति स्मेत्यन्वयः। अथ निवासस्थानान्याह—शाखाग्रेष्विति। शाखानां शालानामग्राणि प्रान्ताः तेषु कोटराणां निष्कुहाणामुदरेषु मध्येषु पल्लवाः किसलयानि तेषामन्तरेषु मध्येषु स्कन्धः प्रकाण्डस्तस्य ये संधयो बन्धास्तेषु जीर्णानि पुरातनानि यानि वल्कानि चोचानि तेषां विवराणि छिद्राणि तेषु। अथ शकुनिकुलानि विशेषयन्नाह—महेति। महान्महीयोऽवकाशोऽन्तर्विस्तारस्तस्य भावस्तत्ता तया विस्रब्धं निःशङ्कं विरचितानि निर्मितानि कुलायसहस्राणि यैस्तानि। दूरेति। दुःखेनारोहो दुरारोहस्तस्य भावस्तत्ता तया विगतं भयं येभ्यस्तानि। नानेति। नानादेशेभ्यो भिन्नभिन्नप्रदेशेभ्यः समागतान्येकीभूतानि। यैरेति। यैःशकुनिकुलैर्दिवानिशमहर्निशं निलीनैः स्थितैः परिणामेन वार्धक्येन विरलानि तुच्छानि दलानि पत्राणि तेषां संहतिः समूहो यस्मिन्नेवंविधोऽपि स वनस्पतिरविरलानि निबिडानि यानि दलानि पत्राणि तेषां निचयः संदोहस्तेन श्यामल इव कृष्ण इवोपलक्ष्यते दृश्यते। ते चेति। अग्रे क्षपयन्ति स्मेत्यग्रेतनेनान्वयः। तस्मिञ्शाल्मलीवृक्ष आत्मनीडेषु स्वस्वकुलायेषु निशां रात्रिमतिवाह्यातिवाह्यातिक्रम्य प्रतिदिनं प्रत्यहमुत्थायोत्थाय। वीप्सया भूयान्कालो द्योत्यते। आहारस्य भक्षणस्यान्वेषणं विलोकनं तस्मै नभस्याकाशे विरचिता विहिता पङ्क्तिः श्रेणी यैस्ते। मदेति। मदेन कलो मनोज्ञो यो बलभद्रो हली तस्य यद्धलं सीरं तस्य यन्मुखमग्रप्रदेशस्तेन य आक्षेप

और वहाँ शाखाओं के अग्रभाग में, कोटरों के अन्तराल में, पल्लवों के अन्दर, तनों की सन्धियों में तथा पुराने छाल में विवरों में पर्याप्त स्थान होने के कारण निश्चिन्तता के साथ हजारों नीड बनाकर अनेक देशों से आये हुये तोते तथा और दूसरे पक्षी निवास करते थे। उस वृक्ष पर किसीका चढ़ सकना मुश्किल था इसलिये उन्हें अपने विनाश का भय नहीं था। पुराना होने के कारण उस वृक्ष के पत्ते घनीभूत नहीं थे। फिर भी उसमें आश्रित तोतों के हरे २ डैनों से वह वनस्पति सघन पत्ते वाला सा होकर दिन रात श्याम दिखाई देता था।

वे शुक गण वृक्ष पर अपने बनाये हुये घोंसलों में रात बिताकर प्रतिदिन प्रातःकाल उठते ही भोजन की तलाश में कतार बनाकर आकाश में उड़ते हुये ऐसे लग रहे थे मानो मदिरा पीनेके कारण मनोहर बलराम के हल के अग्रभाग से ऊपर फेंकी गई यमुना की बहुत

१ वल्कलविवरेषु च; २ विगलितविनाशभयानि; विगतविनाशभयानि, ३ संततिः, ४ श्यामः, ५ तस्मिन्वनस्पतौ, ६ अतिवाह्य, ७ रजनीम्, ८ आत्मनो नीडेषु, ९ हलधर, १० मुखोत्क्षेप,

[१]विकीर्णबहुस्रोतसमम्बरतले कलिन्दकन्यामिव दर्शयन्तः, सुरगजोन्मूलितविगलदाकाशगङ्गाकमलिनीशङ्कामुत्पा[२]दयन्तः, दिवसकररथतुरगप्रभा[३]नुलिप्तमिव गगनतलं [४]प्रदर्शयन्तः, संचारिणीमिव मरकतस्थलीं विडम्बयन्तः, शैवलपल्लवावलीमिवाम्बरसरसि प्रसारयन्तः, [५]गगनावततैः पक्षपुटैः कदलीदलैरिव दिन[६]करखरकरनिकरप[७]रिखेदितान्याशामुखानि वीज[८]यन्तः, वियति विसारिणीं[९] शष्पवीथीमिवारचयन्तः, सेन्द्रायुधमिवान्तरिक्षमादधाना विचरन्ति स्म[१०]। कृताहाराश्च

आकर्षणं तेन विकीर्णानि पर्यस्तानि बहूनि स्रोतांसि यस्य एवंभूतामम्बरतल आकाशतले कलिन्दकन्यामिव यमुनामिव दर्शयन्त आलोकनीयतां प्रापयन्तः। सुरेति। सुराणां देवानां गजो हस्ती तेनोन्मूलितोत्पाटिता विगलन्त्यधः पतन्ती याऽऽकाशगङ्गा स्वर्धुनी तस्याः कमलिनी नलिनी तस्याः शङ्कां भ्रान्तिमुत्पादयन्तः परेषां जनयन्तः। दिवसेति। दिवसकरः सूर्यस्तस्य यो रथः स्यन्दनस्तस्य ये तुरगा अश्वास्तेषां या प्रभा सैव नीला। हरितहयरथत्वात्सूर्यस्य। तयानुलिप्तमिव लेपनविषयीकृतमिव गगनतलं नभस्तलं प्रदर्शयन्तो ज्ञापयन्तः। संचारिणीति। संचारिणी भ्रमणशीला मरकतस्याश्मगर्भस्य या स्थली तामिव विडम्बयन्तस्तिरस्कुर्वन्तः। शैवल इति। शैवलस्य शैवालस्य या पल्लवावली किसलयश्रेणी तामिवाम्बरसरसि व्योमतटाके प्रसारयन्तो विस्तारयन्तः। पुनः किं कुर्वन्तः। गगनेति। गगनेऽवततैर्विस्तृतैः पक्षपुटैः पत्त्रच्छदैः कदलीनां रम्भाणां दलैरिव। नीलत्वसाम्यात्तदुपमानम्। दिनकरस्य सूर्यस्य खरास्तीक्ष्णा ये कराः किरणास्तेषां निकरः समूहस्तेन परिखेदितानि संक्लामितानि यान्याशामुखानि दिग्वदनानि वीजयन्तो व्यजनवातकर्म कुर्वन्तः। पुनः किं कुर्वन्तः। वियतीति। वियत्याकाशे। विसारिणीं विस्तारिणीं शष्पवीथीं बालतृणोपयुक्तपद्धतिमिवारचयन्तो विरचयन्तः। सेन्द्रायुधमिति। इन्द्रायुधं शक्रधनुस्तेन सह वर्तमानमिवान्तरिक्षं गगनमादधानाः कुर्वाणाः। अन्वयस्तु प्रागेवोक्तः। कृतेति। कृतो विहित आहारो भोजनं यैस्ते क्षपास्त्रियामाः क्षपयन्ति स्मेत्यनेनान्वयः। 'क्षिप प्रेरणे' णिजन्तस्य रूपम्। किं कृत्वा। पुनरिति। स्वतृप्त्यनन्तरं प्रतिनिवृत्य परावृत्य। आत्मेति। आत्मीयाः स्वकीया ये

सी श्यामल धारायें आकाश में बिखर गई हों। ऐरावत से उखाड़कर फेंकी गई आकाश गंगा की पद्मिनी के तने हों। सूर्य के रथ में जुते हुये घोड़ों की हरी आभा से आकाश रंग गया हो। संचरण शील मरकत मणि की वेदिका ही हों। आकाशरूपी सरोवर में जैसे शेवाल के पल्लवों का पुंज पसार रहे हों। सूर्य की तीखी किरणों से क्लेशित दिग्वधुओं के मुँह पर केले के पत्तों के समान अपने हरे और कोमल पंखोंको आकाश में फैलाकर पंखा झल रहे हों। आकाश में हरी हरी घासों की कतार लगा रहे हों। अन्तरिक्ष को इन्द्रधनुष से भरपूर कर रहे हों।

१. विप्रकीर्णं, २ उपजनयन्तः, ३ अनुलिप्तगगनतलम्, ४ उपपादयन्तः, ५ गगनविततैः, ६ दिनकरकर, ७ परिखेदिताशामुखानि, ८ परिवीजयन्तः, ९ विस्तारिणीम्, १० स शुकशकुनयः,

पुनः प्रतिनिवृत्त्यात्मकुलायावस्थितेभ्यः शावकेभ्यो विविधान्फलरसान्कलममञ्जरीविकारांश्च प्रहतहरिणरुधिरानुरक्तशार्दूलनखकोटिपाटलेन चञ्चुपुटेन दत्त्वा दत्त्वाधरीकृतसर्वस्नेहेनासाधारणेन गुरुणापत्यप्रेम्णा तस्मिन्नेव क्रोडान्तर्निहिततनयाः क्षपाः क्षपयन्ति स्म।

एकस्मिंश्च जीर्णकोटरे जायया सह निवसतः पश्चिमे वयसि वर्तमानस्य कथमपि पितुरहमेको विधिवशात्सूनुरभवम्। अतिप्रबलया चाभिभूता ममैव जायमानस्य प्रसववेदनया जननी मे परलोकमगमत्। अभिमतजायाविनाशशोकदुःखितोऽपि खलु तातः सुतस्नेहादभ्यन्तरे निरुध्य पटुप्रसरमपि शोकमेकाकी

कुलाया नीडानि तत्रावस्थितेभ्य उषितेभ्यः शावकेभ्यः पोतेभ्यो विविधान्नानाप्रकारान्फलरसान्सस्यनिर्यासान्। कलमेति। कलमः कलामकस्तस्य मञ्जर्यो वल्लर्यस्तासां विकाराः परिपाकविशेषेण परिणताः कणास्तांस्तथापत्येषु संतानेषु यत्प्रेम स्नेहस्तेन। कीदृशेन। अधरीति। अधरीकृतो न्यूनत्वमापादितः सर्ववस्तुसंम्बन्धी स्नेहो येन स तथा तेन। पुनः कीदृशेन। असाधारणेन तन्मात्रवृत्तिना गुरुणा परावृत्तेन तथा प्रहतो व्यापादितो यो हरिणो मृगस्तस्य रुधिरं रक्तं तेनानुरक्तारुणीकृता या शार्दूलस्य सिंहस्य नखकोटिर्नखराग्रं तद्वत्पाटलेन श्वेतरक्तेन चञ्चुपुटेन त्रोटीसंपुटेन दत्त्वा दत्त्वा। वारंवारं तेभ्यो भक्ष्यदानं वितीर्येत्यर्थः। ततो दिवसकार्यानन्तरम्। तस्मिन्निति। तस्मिन्वृक्षकुहरे क्रोड उत्सङ्गस्तदन्तर्निहितास्तन्मध्यस्थापितास्तनया अपत्यानि यैस्ते तथा। अन्वयस्तु पूर्वमुक्तः।

एकस्मिंश्चेति। एकस्मिञ्जीर्णकोटरे चिरकालीननिष्कुहे जायया पत्न्या सह निवसत आसेदुषः पश्चिमे तान्त्ये वयसि दशायां वर्तमानस्य स्थितवतः कथमपि महता कष्टेन पितुर्जनकस्य विधिवशाद्दैववशात्। अहमित्यात्मनिर्देशः। एको नापरः सूनुः सुतोऽभवमजनिषम्। अतिप्रबलेति। मम जायमानस्यैवोत्पद्यमानस्यैव अतिप्रबलया अत्यन्तया प्रसववेदनया प्रसूति-

भोजन के पश्चात् पुनः वापस आकर अपने २ घोसलों में स्थित शावकों को अनेकों फलोंके रस तथा धान की मंजरी के कोमल तण्डुल कणों को उन चंचुपुटों से जो मारे गये मृग के रक्त से रंजित सिंह के नखाग्र की भाँति लाल थे दे देकर सब प्रकार के प्रेम से बढ़कर महान् वात्सल्य से अपनी २ गोद में उन बच्चों को छाती से चिपका कर वे पक्षी उसी वृक्ष पर रात बिताया करते थे।

एक पुराने कोटर में सपत्नीक निवास करने वाले पिता की वृद्धावस्था में भाग्यवश मैं एक पुत्र उत्पन्न हुआ। मेरे जन्म के समय ही अत्यन्त तीव्र प्रसव पीडा से मेरी माँ परलोक सिधार गई। अतीव प्रिय पत्नी के निधन जनित शोक से विह्वल होने पर भी पिता जी पुत्र प्रेम से अपने भीतर ही पूर्णतः व्याप्त शोक को रोककर अकेले मेरे संवर्धन में

१ फलविकाराम्, २ प्रसक्त, ३ स्वस्मिन्नेव, ४ सुखं क्षपाः, ५ तत्र निवसतः, ६ अहमेवैकः, ७ प्रबलतया, ८ लोकान्तरम्, ९ अगच्छत्, १० दुःखदुःखितः, ११ अन्तर्निगृह्य, १२ शोकवेगम्,

मत्संवर्धनपर एवाभवत्। अ¹तिपरिणतवयाश्च कुशचीरानुकारिणीमल्पावशिष्टजीर्णपिच्छजालज²र्जरामवस्रस्तांसदेश³शिथिलामपगतोत्पतनसंस्कारां पक्ष⁴संततिमुद्वहन्, उपारूढकम्प⁵तया संतापकारिणीमङ्गलग्नां जरामिव विधुन्वन्नकठोरशेफालिकाकु⁶सुमनालपिञ्जरेण कलममञ्जरीदलनमसृणित⁷क्षीणोपा⁸न्त्यलेखेन स्फुटिताग्रकोटिना चञ्चुपुटेन परनीड⁹पतिताभ्यः शालिवल्लरीभ्यस्तण्डुलकणानादायादाय वृ¹⁰क्षमूलनिपतितानि च शुककुलावदलितानि फलशकलानि समाहृत्य परिभ्रमितुमशक्तो म¹¹ह्यमदात्। प्रतिदिवसमात्मना च म¹²दुपभुक्तशेषमकरोदशनम्।

व्यथयाभिभूता पीडिता सती मे मम जननी परलोकं भवान्तरमगमदयासीत्। अभिमतेति। अभिमताया अभीष्टाया जायाया विनाशेन मरणेन रोदनादिरूपः शोकस्तेन दुःखितोऽपि। अपिः स्नेहदार्ढ्यसूचकः। खलु निश्चितम्। तातः पिता, पटु स्पष्टः प्रसरो विस्तारो यस्यैवंभूतमपि शोकं दुःखं मम सुतस्य पुत्रस्य स्नेहादभ्यन्तर एव मध्य एव निरुध्यात्रलब्ध्यैकाकी पत्नीवियुक्तो ममैव यत्संवर्धनं वृद्धिस्तस्यामेव परः तत्परोऽभवत्। अतीति। अतिपरिणतमत्यन्तं पक्वं वयो यस्य स तथा। अतिजरीयानित्यर्थः। किं कुर्वन्। एतादृशीं पक्षसंततिं वाजसमूहमुद्वहन्दधत्। इतः पक्षसंततिं विशेषयन्नाह—कुशेति। कुशो दर्भश्चीरं जीर्णवस्त्रखण्डं तदनुकरोति तत्सादृश्यं भजति या सा ताम्। वार्धक्यवशादल्पानि स्तोकान्यवशिष्टान्युर्वरितानि जीर्णानि पुरातनानि पिच्छानि बर्हाणि तेषां जालं तेन जर्जरां विशीर्णाम्। अवेति। अवस्रस्तो गलितोंऽसदेशो यस्याः सा ताम्। अथवा स्कन्धदेशादवस्रस्तांसदेशा तामत एव शिथिलां श्लथामदृढावयवसंयोगाम्। अपेति। अपगतो दूरीभूत उत्पतने वियद्गमने संस्कारः शक्तिविशेषो यस्याः सा ताम्। उपेति। उपारूढः प्राप्तो यः कम्पश्चलनं तस्य भावस्तत्ता तया। चः समुच्चये। संतापकारिणीं दुःखदायिनीमङ्गलग्नां जरां वृद्धावस्थामिव विधुन्वपरित्यजन्निवाकठोरं यच्छेफालिका

संलग्न हो ही गये। पिता जी की अवस्था अधिक हो जाने के कारण परिभ्रमण करने में वे असमर्थ हो गये थे। उनके डैने कुश के पुरातन चीरों के समान, थोड़े से बचे हुये जीर्ण पिच्छ (बालों) से जर्जर, कंधे के ढीलेपन से शिथिल और उड़ने के संस्कार को विस्मृत कर चुकने वाले हो गये थे। उनके शरीर में निरन्तर कम्पन हुआ करता था मालूम होता था कि सन्ताप देने वाली जरा जो शरीर में सट गई है उसे झाड़ रहे हों। वे कोमल हर सिंगार के कुसुम नाल के समान पीत, धान्य की मंजरी के विदलन से चिकने और क्षीण उपान्त्य वाले एवं जिसका अगला हिस्सा फट गया है—ऐसे चंचुपुट से दूसरे घोसलों से गिरी हुई अगहनी धान की मंजरियों से चावल के दाने ला ला कर और पेड़ की जड़ पर गिरे हुये तोतों से कुतरे हुये फल के टुकड़ों को इकट्ठा कर मुझे दिया करते थे। मेरे भोजन से बचे हुये आहार को, वे प्रतिदिन करते थे।

---

१ अतिपरिणततया च, २ जर्जरीम्, ३ देशाम्, ४. संहितम्, ५. कम्पतया च, ६. कुसुमपिञ्जरेण, ७. क्षीर, ८. उपान्त, ९. निपतिताभ्यः, १०. तरु, ११. मह्यमाहारसदात्, १२. मदुपयुक्तम्,

एकदा तु प्रभातसंध्यारागलोहिते [1]गगनतले, कमलिनी[1]मधुरक्त[2]पक्षपुटे[3] वृद्धहंस इव मन्दाकिनीपुलिनादपरजलनिधितटमवतरति चन्द्रमसि, परिणतरङ्कुरोमपाण्डुनि व्रजति विशालतामाशाचक्रवाले, गजरुधिररक्तहरिसटालोमलोहिनीभिः प्र[4]तप्तलाक्षिकतन्तुपाटलाभि[5]रायामिनीभिरशिशिरकिरणदीधितिभिः पद्मराग[6]शलाका[7]-संमार्जनीभिरिव समुत्सार्यमाणे गगनकुट्टिमकुसुमप्रकरे तारागणे, संध्यामुपासितुमुत्तरा-

---

निर्गुण्डी तस्याः कुसुमं पुष्पं तस्य यन्नालं तद्वत्पिञ्जरेण। कलमेति। कलमस्य या मञ्जरी तस्या दलनं विदारणं तेन मसृणिता संजातचिक्कणतात एव क्षीणा घृष्टोपान्त्यलेखा प्रान्तसमीपवर्तिनी राजिर्यस्यैवंभूतेन चञ्चुपुटेन त्रोटीसंपुटेन श्रमवशात्स्फुटिता स्फोटं प्राप्ता अग्रकोटिरग्रिमतीक्ष्णतरभागो यस्य स तेन। परेति। अशक्तिवशात्परेषां नीडानि तेभ्यः पतिताः स्रस्ता याः शालिवल्लर्यस्ताभ्यस्तण्डुलकणानादायादाय गृहीत्वा गृहीत्वा। वृक्षेति। वृक्षमूलनिपतितानि शुकानां कुलानि तैरवदलितानि खण्डितानि फलशकलानि तानि सहाहृत्य एकीकृत्य परिभ्रमितुमशक्तो मह्यमदाद्दौ। घुसंज्ञकदाधातोर्लुङि रूपम्। एवं प्रतिदिवसं प्रत्यहममेवं प्रकारेणानीतं भक्ष्यं मह्यं दत्त्वा मयोपभुक्तं ततः शेषमुद्वरितमात्मनाशनमकरोत्। ध्यप्रत्ययानुशासनवशाच्चतुर्थ्यर्थे तृतीया।

एकदा त्विति। एकदैकस्मिन्समये कोलाहलमश्रृणवमिति दूरेणान्वयः। प्रभातेति। प्रभातस्य प्रातःकालस्य या संध्या तत्संबन्धी यो रागस्तेन लोहिते रक्ते। गगनेति। गगनतलमेव कमलिनी वियद्गङ्गा कमलिनी वा। तस्या मधु रसस्तेनानुरक्तं पक्षपुटं छदसंपुटं यस्य तस्मिन्वृद्धहंस इव जरत्कलहंस इव मन्दाकिनी गङ्गा तस्याः पुलिनं सैकतं तस्माच्चन्द्रमसि निशानाथेऽपरो यो जलनिधिः पश्चिमसमुद्रस्तस्य तटं तीरं प्रत्यवतरत्युत्तीर्णे सति। परीति। परिणतः पक्वो यो रङ्कुर्मृगविशेषस्तस्य रोमाणि तनूरुहाणि तद्वत्पाण्डुनि शुभ्रे विशालतां विस्तीर्णतामाशाचक्रवाले दिक्समूहे व्रजति गच्छति सति। गजेति। गजानां हस्तिनां यद्रुधिरं तेन रक्ताः शोणिता या हरिसटाः सिंहस्कन्धकेसरास्तत्संबन्धि यल्लोम

एक समय, प्रभात काल की सन्ध्या के आरुण्य से जब आकाश लाल हो रहा था, पद्मिनी के मकरन्द से रंगे हुये पक्षपुट वाले बूढ़े हंस के समान चन्द्रमा जब स्वर्गङ्गा के तीर से पश्चिम समुद्र के तट पर उतर रहे थे, विशाल दिङ्मण्डल जब वृद्ध रंकु नामक मृगविशेष के रोम के समान पाण्डु वर्ण का हो रहा था, हाथी के रक्त से रञ्जित केसर (सटा) के रोमों के समान अरुण तथा तपाये हुये लाख की तन्तुओं के समान आरक्त, पद्मराग मणि से बनाई गई सम्मार्जन (झाड़ू) के समान सूर्य की सुदीर्घ किरणों से जब नील नभ के नीलम मणिमय फर्श से पुष्प प्रकर की भाँति तारे हटाये जा रहे थे, सप्तर्षिमण्डल सन्ध्योपासना के लिये उत्तर दिशा में

---

१. गगततलगगने च; गगनकमलिनी, २. मध्वनुरक्त, ३. पक्षसंपुटे, ४. आतप्तलाक्षिक; अनन्तलाक्षा, संतप्तलाक्ष; ५. आगामिनीभिः, ६. रत्नशलाका, ७. संमार्जिनीभिः,

शावलम्बिनि मा[1]नससरस्तीरमिवा[2]वतरति सप्तर्षिमण्डले, तटगतविघ[3]ट्टितशुक्तिसंपुट-
विप्रकीर्णमरुणकरप्रेरणाधोगलितमुडुगणमिव मुक्ताफलनिकरमुद्वहति धवलि[4]तपुलिन-
मुदन्वति पूर्वेतरे, तुषारबिन्दुवर्षिणि विबुद्धशिखिकुले विजृम्भमाणकेसरिणि करिणी-
कदम्बकप्रबोध्यमा[5]नसमदकरिणि क्षपाजलजडकेसरं कुसुमनिकरमुदयगिरिशि[6]खरस्थितं
सवितारमिवोद्दिश्य पल्लवाञ्जलिभिः स[7]मुत्सृजति कानने, रासभरोम[8]धूसरासु वन-

---

तद्वत् लोहिनीभिः आरक्ताभिः प्रतप्ता ये लाक्षिका जतुविकारोद्भवास्तन्तवस्तद्वत्पाटलाभिः श्वेतरक्ताभिरायामिनीभिर्विस्तारवतीभिरशिशिरा उष्णाः किरणा यस्यैवंभूतः सूर्यस्तस्यदीधितिभिर्दीप्तिभिः । काभिरिव । पद्मरागा लोहितकमणयस्तेषां शलाका इषीकास्तासां संमार्जनीभिरिव बहुकरीभिरिव समुत्सार्यमाणे दूरीक्रियमाणे गगनमेव कुट्टिमं वहिर्द्वारं तत्र यः कुसुमप्रकारः पुष्पसमूहस्तस्मिन्निव तारागणे नक्षत्रसमूहे । उत्तरेति । उत्तराशोदीची दिक्तामवलम्बत इत्येवंशीलः स तथा तस्मिन्सप्तर्षिमण्डले सप्तर्षिसमुदाये मानससरस्तीरं प्रति संध्यामुपासितुमिव सायंतनविधिं कर्तुमिवावतरति सति । अत्र रूपकम् । अत्र सतीति प्रत्येकमन्वये योजनीयम् । पुनः कस्मिन्सति । तटेति । तटगतानि तीरप्राप्तानि विघट्टितानि यानि शुक्तिसंपुटान्यब्धिमण्डूकीपुटानि तेभ्यो विप्रकीर्णं पर्यस्तम् । कीदृशमिव । अरुणस्य सूर्यस्य ये कराः किरणास्तेषां प्रेरणा नोदना तस्मादधो गलितमधः पतितं उडुगणमिव । धवलितं शुभ्रीकृतं पुलिनं जलोज्झितं तटं येनैवंभूतं मुक्ताफलानां निकरं समूहमुद्वहति धारयत्युदन्वति समुद्रे सति । पूर्व इतरो यस्मादिति बहुव्रीहिः । तस्मान्न सर्वादित्वम् । पश्चिमसमुद्रे सतीत्यर्थः । यद्वा पूर्वस्मान्नीचः पूर्वेतरः । 'इतरस्त्वन्यनीचयोः' इत्यमरः । तस्मिन् । अतो नीचार्थवाचित्वान्न सर्वादित्वम् । पुनः कस्मिन्सति । कानने सति । अथ काननं विशेषयन्नाह—तुषारेति । तुषारस्य तुहिनस्य बिन्दूनां पृषतां वर्षो यस्मिंस्तत्तथा तस्मिन् । विबुद्धेति । विबुद्धं शिखिकुलं मयूरकुलं यस्मिंस्तत्तथा, विजृम्भायुक्ताः केसरिणः सिंहा यस्मिंस्तत्तथा । करिणीति । करिणीनां हस्तिनीनां कदम्बकं समूहस्तेन प्रबोध्यमाना जागरावस्थां प्राप्यमाणाः समदा मदेन सह वर्तमानाः करिणो

लटक कर जब मानस सर के तीर पर उतर सा रहा था, तट की खुली हुयी सीपियों के सम्पुट से विकीर्ण सूर्य के कर (हाथ, किरण) से धक्का खाकर नीचे गिरे हुए तारकपुंज की भाँति मुक्ताफल के समूह को धारण करने से जब पश्चिमी सागर का तट उज्ज्वल हो रहा था, जङ्गल में जब ओस की बूँदें बरस रही थीं, मयूरों का मण्डल जग चुका था, शेर जम्भाई लेने लग गये थे, हथिनियों का यूथ जब यूथपति मत्त गजराज को जगाने में संलग्न हो रहा था, उदयाचल के शिखर पर स्थित सविता को लक्ष्य करके मानो पल्लव रूपी अञ्जलियों से ओस से जिनके केसर निश्चल थे ऐसे पुष्पपुञ्ज को जब कानन समर्पण कर रहा था, रासभ के रोम के सदृश धूसर,

---

१. मानससरसः, २. अम्बरादवतरति, ३. विघटित, ४. पृक्लिनतटम्; पुलिनतलम्, ५. मानमदकरिणी स्पष्टे च जाते प्रभाते, ६. स्थित, ७. उत्सृजति, ८. धूसरासु वनराजिषु,

देवताप्रासादानां तरूणां शिखरेषु पारावतमालायमानासु धर्म[1]पताकास्विव समुन्मिषन्तीषु तपोवनाग्निहोत्रधूमलेखासु, अवश्यायसीकरिणि लुलितकमलवने [2]रतखिन्न[3]शबरसीमन्तिनीस्वेदज[4]लकणापहारिणि वनमहिषरोमन्थफेनबिन्दुवाहिनि चलितपल्लवलतालास्योपदेशव्यसनिनि विघटमानकमलखण्डमधुसीकरासारवर्षिणि कुसुमामोदतर्पितालिजाले निशावसानजातजडिम्नि मन्दमन्दसंचारिणि प्रवाति

हस्तिनो यस्मिन्। क्षपेति। क्षपाजलेन रात्रिसंबन्धितुषारेण जडानि स्तम्भितानि केसराणि किञ्जल्कानि यस्यैतादृशं कुसुमनिकरं पुष्पसमूहम्। उदयेति। उदयगिरिरुदयाद्रिस्तस्य शिखरं शृङ्गं तत्र स्थितं सवितारं श्रीसूर्यमिवोद्दिश्याश्रित्य। पल्लवेति। पल्लवा एव किसलयान्येवाञ्जलयस्तैः समुत्सृजति प्रयच्छति सति। पुनः कासु सतीषु। रासभेति। रासभस्य बालेयस्य रोमाणि तनूरुहाणि तद्वद्धूसरासु धूम्रवर्णासु। वनेति। वनदेवताः काननाधिष्ठात्र्यस्तासां प्रासादाश्चैत्यानि तेषां तरूणां च शिखरेषु प्रान्तेषु पारावतानां कपोतानां माला श्रेणिस्तद्वदाचरन्तीति ण्यन्तत्वाच्छानच्। तासु। धर्मेति। धर्मे यज्ञादौ पताका वैजयन्त्यस्तास्विव समुन्मिषन्तीषु समुत्सर्पन्तीषु। तप इति। तपोवने यदग्निहोत्रमग्न्याधानं तस्य धूमलेखा धूमस्तोमपङ्क्तयस्तासु। पुनः कस्मिन्सति। प्राभातिकेति। प्राभातिके प्रत्यूषसंबन्धिनि मातरिश्वनि वायौ। 'मातरिश्वा जगत्प्राणः पृषदश्वो महाबलः' इति कोशः। प्रवाति प्रवहमाने सति। कीदृशे। अवेति। अवश्यायो हिमं तस्य सीकरा यस्मिन्। 'वातास्तं वारि सीकरः' इति कोशः। वायुं विशेषयन्नाह—लुलितेति। लुलितं कम्पितं कमलानां नलिनानां वनं खण्डं येन स तस्मिन्। रतेति। रतं मैथुनं तत्र खिन्नाः खेदं प्राप्ता याः शबरसीमन्तिन्यो भिल्लवध्वस्तासां यत्स्वेदजलं प्रस्वेदवारि तस्य कणा बिन्दवस्तेषामपहारिणि हरणशीले। वनेति। वनमहिषाः सैरिभास्तेषां रोमन्थश्चर्बितचर्वणं तस्य फेनः कफस्तस्य बिन्दवः पृषन्ति तान्वहतीत्येवंशीलः स तस्मिन्। चलितेति। चलिताः कम्पिताः पल्लवाः किसलयानि यासामेवंविधा या लता वल्लयस्तासां लास्यं नृत्यं तस्योपदेशः शिक्षणं तस्य व्यसनं विद्यते यस्य स तस्मिन्। विघटेति। विघटमानानि विकाशं प्राप्यमाणानि यानि कमलखण्डानि नलिनवनानि तेषां मधु रसस्तस्य सीकरा वाताक्षिप्तकणास्तेषामासारो वेगवान्वर्षो विद्यते यस्मिन्स तथा तस्मिन्। कुसुमामोदेति।

बन देवता के उन्नत भवन स्वरूप उत्तुङ्ग तरुओं के शिखरों पर पारावत की माला सी एवं धर्म की पताकाओं जैसे तपोवन के अग्निहोत्र की धूम लेखा जब ऊपर उठने लग गई थी, ओस की कणिकाओं से सम्पृक्त, कमलवन को हिला देने वाला, सुरतश्रान्त शबररमणियों के स्वेद जल की बूँदों को पोंछ देने वाला, जङ्गली भैंसों की जुगालियों से गिरे हुये फेन की बूँदों को वहन करने वाला, चञ्चल पल्लव वाली लताओं को कोमल नृत्य की शिक्षा देने का व्यसनी, खिलते हुये कमल बनों से मकरन्दबिन्दुओं की तीव्र वर्षा करा देने वाला, फूलों के सौरभ से भ्रमरों को तृप्त कर देने वाला तथा रात्र्यन्त होने से जाड्य युक्त प्राभातिक पवन जब धीरे २ चलने लग गया

---

१. पताकासु, २. रति, ३. स्विन्न, ४. स्वेदजलकणिका; स्वेदकणिका,

प्राभातिके मातरिश्वनि, [1]कमलवनप्रबोधमङ्गलपाठकानामिभगण्डडिण्डिमानां [2]मधुलिहां कुमुदोदरेषु घटमा[3]नदलपुटनिरुद्ध[4]पक्षसंहतीनामुच्चरत्सु हुं[5]कारेषु, प्रभातशिशिरवाय्वाह[6]तमुत्तप्तजतुरसाश्लिष्ट[7]पक्ष्ममालमिव सशेषनिद्राजिह्मतार[8] चक्षुरुन्मीलयत्सु शनैः शनैरूषरशय्याधूसरक्रोडरोम[9]राजिषु वनमृगेषु, इतस्ततः संचरत्सु वनचरेषु, विजृम्भमाणे श्रोत्रहारिणि पम्पासरः[10]कलहंसकोलाहले, समुल्लसति नर्तितशिख[11]ण्डिनि मनोहरे वनगजकर्णतालशब्दे, क्रमेण च ग[12]गनतलमवतरतो दिवसकरवा-

कुसुमानामामोदः परागस्तेन तर्पितं प्रीणितमलिजालं भ्रमरसमूहो येन स तस्मिन् । निशेति । निशाया रात्रेर्यदवसानं प्रान्तस्तेन जाता जडिमा जडत्वं यस्मिन्स तथा तस्मिन् । अत एव मन्दं मन्दं संचरत इत्येवंशीलः स तथा तस्मिन् । पुनः केषु । कुमुदोदरेषु मधुलिहां हुङ्कारेष्वव्यक्तशब्देषूच्चरत्सु ब्रुवत्सु सत्सु । इतो मधुलिहो विशेषयन्नाह—कमलेति । कमलवनानां प्रबोधपाठका मङ्गलपाठकास्तेषाम् । तथेभगण्ड एव हस्तिकरट एव डिण्डिमः पटहो येषां ते तथा तेषां मधुलिहां भ्रमराणां विघटमानानि संकोचं प्राप्यमाणानि यानि दलानि पत्राणि तेषां पुटानि कोशानि तेषु निरुद्धावरुद्धा पक्षसंहतिश्छदसमूहो येषां ते तथा तेषाम् । पुनः केषु सत्सु । वनमृगेति । वनमृगेष्वरण्यहरिणेषु शनैः शनैश्चक्षुर्नेत्रमुन्मीलयत्सु विकासयत्सु । अथ चक्षुर्विशेषयन्नाह—प्रभातेति । प्रभातं प्रत्यूषस्तस्य यः शिशिरः शीतलो वायुः समीरस्तेनाहतं पीडितम् । उत्तप्तेति । उत्तप्त उष्णीकृतो यो जतुरसो लाक्षारसस्तेनाश्लिष्टालिङ्गिता पक्ष्ममाला नेत्ररोमपङ्क्तिर्यस्य तदिव । सशेषेति । सशेषोऽवशिष्टा या निद्रा तया जिह्मा कुटिला तारा कनीनिका यस्य तत् । कीदृशेषु वनमृगेषु । ऊषरेति । ऊषरा तृणरहिता या शय्या शयनस्थलं तेन धूसरा धूम्रवर्णा क्रोडरोमराजिर्हृदयलोमपङ्क्तिर्येषां तेषु । पुनः कीदृशेषु । इतस्ततः समन्ततो वनचरेष्वरण्यचारिषु संचरत्सु गच्छत्सु । पुनः केषु सत्सु । विजृम्भेति । श्रोत्रहारिणि कर्णमनोहरे पम्पानाम्नः सरसः कलहंसकोलाहले कादम्बकलकले विजृम्भमाणे प्रसृते सति । पुनः केषु सत्सु । समुल्लसतीति । नर्तिताः शिखण्डिनो मयूरा येन तस्मिन्मनोहरे

था, कुमुदकोशों में बन्द होती हुई पंखुड़ियों से जिनकी पक्षसन्तति निरुद्ध हो गई थी, ऐसे कमलवन को प्रबुद्ध करने के लिये मङ्गल पाठ करने वाले तथा हाथियों के कपोल तल पर डिंडिम घोष करने वाले मधुकरों का हुंकार जब उच्चरित होने लग गया था, ऊसर भूमि पर सोने के कारण जिनके उदरभाग की रोमावली धूसर हो गई है ऐसे जङ्गली हिरनों के सावशेष निद्रा से वक्र पुतली वाले नेत्र—जो कि प्रभात के शीतल पवन से क्लेशित तथा तपाये हुये लाक्षा रस से सटाये गये पलक वाले जैसे दीख रहे थे जब धीरे २ खुल रहे थे, जब वनेचर लोगों का इधर-उधर सञ्चार आरम्भ हो चुका था, जब पम्पा सरोवर के कलहंसों का श्रोत्रहारी कोलाहल बढ़ने लग गया था, जङ्गली हाथियों के कर्णताल का मधुर शब्द जब समुल्लसित होने लग गया था, आकाशतल में क्रमशः उतरते हुये दिनपतिरूपी गजराज के मजीठ की रक्तिमा से

१. कमलप्रबोध, २. मधुलिहां पटलेषु, ३ विघटमान; घनघटमान, ४. निबद्ध, ५. झङ्कारेषु; टङ्कारेषु, ६. मारुताहत, ७. पक्ष्मजालम्, ८. जिह्मिततारम्; जिह्मिततारकम्, ९. राजिषु च, १०. कलहंसकुल, ११. शिखण्डिमण्डले, १२. गगमतलमार्गः; गगनमार्ग,

रणस्याव[1]चूलचामरकलाप इवोपलक्ष्यमाणे मञ्जिष्ठारागलोहिते, किरणजाले, शनैः शनैरुदिते भगवति सवितरि, पम्पासरःपर्यन्ततरुशिरःसं[2]चारिण्यध्यासितगिरिशिखरे दिवसकरजन्मनि हृततारे पुनरिव कपीश्वरे वनमभिपतति बालातपे, स्पष्टे जाते प्रत्यूषसि, नचिरादिव दिवसाष्टम[3]भागभाजि स्पष्टभासि भास्वति भूते, प्रयातेषु च[4]यथाभिमतानि दिगन्तराणि शुककुलेषु, कु[5]लायनिलीननिभृतशुकशावकसनाथेऽपि

रुचिरे वनगजानामरण्यकरिणां कर्णा एव ताला वाद्यविशेषास्तेषां शब्दो ध्वनिस्तस्मिन्समुल्लसति सति सम्यक्प्रकारेण प्रसरति सति । क्रमेणेति । क्रमेण परिपाट्या गगनतलमाकाशमार्गमवतरतोऽधिरोहतो दिवसकरवारणस्य सूर्यगजस्य । अवचूलेति । अवचूलोऽधोमुखकूर्चको यश्चामरकलापस्तस्मिन्निवोपलक्ष्यमाणे दृश्यमाने मञ्जिष्ठस्य वस्तुविशेषस्य रागो रक्तिमा तेन लोहिते रक्तीभूते किरणजाले रश्मिसमूहे सति शनैः शनैर्नातिशीघ्रं भगवति माहात्म्यवति सवितरि श्रीसूर्य उदिते उदयं प्राप्ते सति । कीदृशे । पम्पेति । पम्पासरःपर्यन्तानि यानि तरुशिखराणि तेषु संचारो विद्यते यस्य स तथा तस्मिन् । अध्येति । अध्याश्रितान्याश्रितानि गिरिशिखराणि पर्वतशृङ्गाणि येन स तस्मिन् । अथ बालातपं विशेषयन्नाह—दिवसेति । दिवसकरात्सूर्याज्जन्म यस्य स तथा तस्मिन् । हृता दूरीकृता तारा येन स तथा तस्मिन् । पुनस्तदनन्तरं कपीश्वरे सुग्रीव इव । तरुशिखरचारित्वात्तदुद्धततारत्वाच्च तदुपमानम् । तं वृक्षं पूर्वोक्तमभिपतति व्याप्नुवति बालातपे नवीनालोके सति । तथा प्रत्यूषसि प्रभाते स्पष्टे व्यक्ते जाते सति नचिरादिव स्तोककालेनेव दिवसस्याष्टमो भागश्चतुर्घटिकात्मकस्तं भजतीति भाक् । ण्विप्रत्ययान्तः । तस्मिन्स्पष्टा भा कान्तिर्यस्य स तथा तस्मिन्भास्वति श्रीसूर्ये भूते जाते सति । पुनः केषु । शुककुलेषु कीरव्रजेषु यथाभितानि यथेप्सितानि दिगन्तराणि दिग्विभागान् प्रयातेषु गतेषु सत्सु । कुलायेति । कुलाया नीडानि तेषु निलीनाः सुप्ता निभृतमत्यन्तं शुकशावकाः कीरशिशवस्तैः सनाथेऽपि

अरुण किरण-कलाप जब हाथी के सर पर उलटे लटकने वाले चामर की भाँति उपलक्षित होने लग गया था, धीरे २ भगवान् सविता जब उदित हो चुके थे, पम्पा सरोवर की सीमा पर विराजमान वृक्षों की चोटियों पर सञ्चरण करने वाले एवं पर्वतीय शिखरों पर अधिष्ठित सूर्य पुत्र सुग्रीव तारा के अपहृत होने पर जैसे वन में भटक रहे थे वैसे ही पम्पा के सीमान्त तरुओं के शिखर पर पसरने वाला तथा पर्वतीय शृंगों पर समासीन तारों को विलुप्त करने वाला सूर्य से सम्भूत बालातप जब वन में फैलने लग गया था, प्रभातकाल जब पूर्णतः स्पष्ट हो चुका था, थोड़े ही समय के पश्चात् दिन के आठवें भाग पर पहुँचने वाले सूर्य की प्रभा जब परिस्फुट हो चुकी थी, शुकवृन्द जब अपने २ अभिमत दिगन्तराल में प्रस्थान कर चुके थे, घोंसले में लीन तथा मौन शुकशावकों से विराजमान रहने पर भी नीरवता के कारण जब वह वनस्पति सूना २ सा

---

१. अवघत, २. संचारिणां, ३. अष्टभाग, ४. तेषु, ५. कुलायनीभृतशायक,

निःशब्दतया शून्य इव तस्मिन्वनस्पतौ, स्वनीडावस्थित एव ताते, मयि च शैशवा[1]दसंजातबलसमुद्भिद्यमानपक्षपुटे पितुः[2] समीपवर्तिनि कोटरगते; सहसैव तस्मिन्महावने संत्रासितसकलवनचरः [3]सरभससमुत्पतत्पतत्त्रिपक्षपुटशब्दसंततः भीतकरिपोतचीत्कार-पीवरः [4]प्रचलितलताकुलमत्तालिकुलक्वणितमांसलः परिभ्रमदुद्घोणवन[5]वराहरवघर्घरो गिरिगुहासुप्तप्रबुद्धसिंहनि[6]नादोपवृंहितः कम्पयन्निव तरून्भगीरथा[7]वतार्यमाणगङ्गा-

संयुक्तेऽपि बालकानामेकाकित्वेन भयवशान्निःशब्दतया तस्मिन्वनस्पतौ शाल्मलीवृक्षे शून्य इव सति । स्वेति । स्वस्य नीडं कुलायस्तत्रावस्थित एव ताते पितरि मयि चेति । चः पुनरर्थे । मयि पितुर्जनकस्य समीपवर्तिनि निकटवर्तिनि सति । अथ शिशुं विशेषयन्नाह—कोटरेति । कोटरगते निष्कुहस्थिते । शैशवादिति । शैशवाद्बाल्यादसंजातमनुत्पन्नं यद्बलं तेन समुद्भिद्यमानं पक्षपुटं यस्य स तथा तस्मिन् । विधेयमाह—सहसैवेति । तस्मिन्पूर्वोक्ते महावने सहसैवाकस्मादेव मृगयाखेटकस्तस्याः कोलाहलध्वनिः कलकललक्षणः शब्द उदचरदुदतिष्ठत् । अथ ध्वनिं विशेषयन्नाह—संत्रासितेति । संत्रासिता भयं प्रापिताः सकलवनचराः समग्रारण्यचारिणो येन स तथा । सरभसेति । सरभसेन वेगेन समुत्पतन्तो ये पतत्त्रिणः पक्षिणस्तेषां पक्षपुटानि छदपुटानि तेषां शब्दो निनादस्तेन सम्यक्प्रकारेण ततो विस्तीर्णः । भीतेति । भीतास्त्रस्ता ये करिपोताः कलभास्तेषां चीत्काराः शब्दविशेषास्तैः पीवरः पुष्टः । प्रचलितेति । प्रचलिताः कम्पिता या लता वल्लयस्ताभ्याकुला व्याकुला ये मत्तालयो मत्तभ्रमरास्तेषां कुलानि तेषां क्वणितेन शब्दितेन मांसलः पुष्टः । परीति । परिभ्रमन्त इतस्ततः संचरन्त उद्घोणा उच्चनासा ये वनवराहा अरण्यशूकरास्तेषां रवः शब्दस्तेन घर्घरः कठोरः । गिरीति । गिरिगुहासु शैलकन्दरासु पूर्वं सुप्ताः पश्चात्प्रबुद्धा उत्थिता ये सिंहाः केसरिणस्तेषां यो निनादः शब्दस्तेनोपवृंहितो वृद्धिं प्राप्तः । पुनः किं कुर्वन्निव । तरून्वृक्षान् कम्पयन्निव चालयन्निव । भगीति । भगीरथेन राज्ञावतार्यमाणोऽधस्तादानीयमानो यो गङ्गाप्रवाहः स्वर्धुनीस्रोतस्तस्य यः

दिखाई देने लग गया था, पिता जी जब अपने घोंसले में अवस्थित ही थे एवं बचपन के कारण निर्बल एवं सद्यः निकलने वाले पक्ष पुटों से युक्त मैं पिता के पास ही कोटर में स्थित था—उस महान् वन में अकस्मात् ही (एकाएक) शिकार का हो हल्ला होने लगा जिससे सभी वनवासी संत्रस्त हो रहे थे, जो घबड़ा कर वेग से उड़ने वाले पक्षियों के पक्षपुट की फड़-फड़ाहट से बढ़ा हुआ था, जो डरे हुये हाथी के बच्चों के चिग्घाड़ से विवृद्ध हो रहा था, जो हिली हुई लताओं से व्याकुल तथा मतवाले भ्रमरों के गुंजार से परिपुष्ट हो रहा था, जो भ्रमणशील एवं उन्नत नासिका वाले जङ्गली सूकरों की घर-घराहट वाली आवाज से मिश्रित था, जो पर्वत की कन्दरा में सोकर जगे हुये सिंहों की दहाड़ से विवर्धित था, जो वृक्षों को कँपाता हुआ सा विदित हो रहा था, भगीरथ के प्रयास से अवतीर्ण करायी जाती हुई गङ्गा के प्रवाह की प्रचुर

१ असंजातबले, २ तातस्य समीप; तातसमीप ३ सततम्, ४ प्रचलितलताकुलित; प्रचलितमत्तालिकुल, ५ वराहघर्घरकठोरः, ६ नाद, ७ आवार्यमाण,

प्रवाहकलकलबहलो भीतवनदेवताकर्णितो मृगयाकोलाहलध्वनिरुदचरत्। 'आकर्ण्य च तमहमश्रुतपूर्वमुपजातवेपथुरर्भकतया जर्जरितकर्णविवरो भयविह्वलः समीपवर्तिनः पितुः प्रतीकारबुद्धया ज'राशिथिलपक्षपुटान्तरमविशम्।

अनन्तरं च सरभसमितो गजयूथपतिलुलितकमलिनीपरिमलः, इतः क्रोडकुलदश्यमानभद्रमुस्तारसामोदः, इतः करिकलभभज्यमानसल्लकीकषायगन्धः, इतो निपतितशुष्कपत्रमर्मरध्वनिः, इतो वनमहिषविषाणकोटिकुलिशभिद्यमानवल्मीकधूलिः,

---

कलकलस्तद्वद्बहलः प्रभूतः। भीतेति। भीता भयं प्राप्ता या वनदेवतास्ताभिराकर्णितः श्रवणविषयीकृतः। आकर्ण्य चेति। अहमश्रुतपूर्वं तं शब्दमाकर्ण्य श्रुत्वा प्रतीकारबुद्धया भयनिवृत्युपायधिया समीपवर्तिनो निकटस्थस्य पितुर्जनकस्य जरया विस्रसया यच्छिथिलं श्लथं पक्षपुटं तस्यान्तरं मध्यमाविशं प्रविष्टोऽभवम्। कीदृशोऽहम्। उपेति। उपजातवेपथुः सजातकम्पोऽर्भकतया बालतया तादृशशब्दश्रवणादेव जर्जरितं प्रतिरुद्धं कर्णयोः श्रवणयोर्विवरं छिद्रं यस्य स तथा।

अनन्तरं चेति। पितुः पक्षपुटान्तरप्रवेशानन्तरम्। चकारः पूर्वसमुच्चये। कोलाहलसंश्रणवमित्यग्रेतनेन संबन्धः। तदेव दर्शयति—सरभसमित्यादि। इतोऽस्मिन्प्रदेशे सरभसं वेगवत्तरं गजयूथपतिना लुलिता मर्दिता या कमलिनी नलिनी तस्याः परिमल आमोदः। इत इति पूर्ववत्। क्रोडकुलैररण्यशूकरसमुदायैर्दश्यमाना भक्ष्यमाणा या भद्रमुस्ता गुन्द्रास्तासां रसो द्रवस्तस्यामोदः परिमलः। इत इति प्राग्वत्। करिणां कलभास्त्रिंशदब्दकास्तैर्भज्यमाना आमर्द्यमाना याः सल्लक्यो गजप्रियास्तासां कषायः तुवरो गन्धः। इत इति प्राग्वत्। इतःप्रदेशे निपतितानि पर्यस्तानि यानि शुष्कपत्राणि तेषां मर्मरध्वनिर्मर्मर इति शब्दः। 'मर्मरो वस्त्रपत्रादेः' इति कोशः। इत इति। वनमहिषा गवलास्तेषां विषाणानि शृङ्गाणि तेषां कोटिरग्रं तदेव कुलिशं वज्रम्। अभेद्यत्वात्तदुपमानम्। तेन भिद्यमानं छिद्यमानं यद्वल्मीकं शक्रशिरस्तस्य

कलकलाहट से जो साम्य रखता था एवं जिसे डरे हुये वनदेवता सुन रहे थे। उस अश्रुतपूर्व कोलाहल को सुन कर मैं काँप गया एवं बचपन के कारण कान के रन्ध्र जर्जर होने लगे तथा भय से विह्वल मैं बचाव की आशा से समीपवर्ती पिता के जराजीर्ण पक्षपुट के भीतर घुस गया।

और इसके अनन्तर परस्पर बात चीत करते हुये वृक्षों के सघन वन में जिनका शरीर छिपा हुआ था ऐसे मृगयारत लोगों का कानन में क्षोभ पैदा करने वाला कोलाहल मैंने सुना। जो वेग से कह रहे थे कि इधर से गजों के यूथपति से रौंदी गई कमलिनी का सौरभ आ रहा है, इधर से जंगली वराहों से काटे गये नागरमोथे के रस की खुशबू आ रही है, इधर से हाथियों के बच्चों से तोड़े जाने वाले सल्लकी तरु की कसैली सुरभि आ रही है, इधर से गिरे हुये सूखे पत्तों की मर्मर ध्वनि आ रही है, इधर जंगली भैंसों के शृंग की नोक रूपी वज्र से तोड़े जाते हुए वल्मीक (दीमकों के ढूह) की धूल उड़ती दीख रही है, इधर हिरनों

---

१ आकर्ण्यं तम्, २ जरातिशिथिल,

इतो मृगकदम्बकम्, इतो वनगजकुलम्, इतो [1]वनवराहयूथम्, इतो वनमहिषवृन्दम्, इतः शिखण्डिमण्डलविरुतम्, इतः कपिञ्जलकुलकलकूजितम्, इतः कुररकुलक्वणितम्, इतो मृगपतिनखभिद्यमानकुम्भकुञ्जररसितम्, इयमार्द्रपङ्कमलिना व[2]राहपद्धतिः, इयमुन्मदगन्धगजगण्डकण्डूयनपरिमलनिलीन[3]मुखरमधुकरविरुतिः, एषा निपतितरुधिरबिन्दुसिक्तशुष्कपत्रपाटला रुरुपदवी, एतद्द्विरदचरणमृदितविटपपल्लवपटलम्, एतत्ख[4]ङ्गिकुलक्रीडितम्, एष नख[5]कोटिविकटविलिखितपत्रलेखो रुधिरपाटलः

धूलिः पांसुः। इत इति। मृगाणां हरिणानां कदम्बकं समुदायः। इत इति। वनगजानामरण्यहस्तिनां कुलं समुदायः। इत इति। वनवराहा वनक्रोडास्तेषां यूथं वृन्दम्। इत इति। वनमहिषाणां वृन्दं कुलम्। इत इति। शिखण्डिनां मयूराणां मण्डलं समूहस्तस्य विरुतं कूजितम्। इत इति। कपिञ्जलानां गौरतित्तिराणां कुलं समुदायस्तस्य कलं मधुरं कूजितं शब्दितम्। इत इति। कुररो मत्स्यनाशनस्तस्य कुलं पुत्रपौत्रादि। तस्य क्वणितं शब्दितम्। इत इति। मृगपतिः सिंहस्तस्य नखाः पुनर्भवास्तैर्भिद्यमानो विदार्यमाणः कुम्भः शिरःपिण्डो येषामेवंभूताः कुञ्जरा हस्तिनस्तेषां रसितमाक्रन्दितम्। इयमिति। इयं प्रत्यक्षाद्र्रोऽशुष्को यः पङ्कः कर्दमस्तेन मलिना मलीमसा वराहपद्धतिर्वनक्रोडमार्गः। इयमिति। इयमिति पूर्ववत्। अभिनवान्यचिरोत्पन्नानि यानि शष्पाणि बालतृणानि तेषां कवलो गुडस्तस्य रसस्तेन श्यामला मलिनैवंविधा हरिणानां मृगाणां यो रोमन्थश्चर्वितचर्वणं तस्य फेनः कफस्तस्य संहतिः समूहः। इयमिति। उन्मदा मदोन्मत्ता ये गन्धगजा गन्धेभाः। -सुरभिमदयुक्ता इत्यर्थः। तेषां गण्डः करटस्तस्य कण्डूयनेन कण्डूत्या यः परिमल आमोदस्तस्मिन्निलीना आसक्ता मुखरा वाचाला ये मधुकरा भ्रमरास्तेषां विरुतिर्झंकारः एषा दृश्यमानेत्यर्थः। निपतितेति। निपतिता भूमौ स्रस्ता ये रुधिरबिन्दवो रक्तपृषतास्तैः सिक्तानि सिञ्चितानि यानि शुष्कपत्राणि तैः पाटला श्वेतरक्ता रुरुपदवी मृगविशेषमार्गः। एतदिति। एतत्समीपतरवर्ति द्विरदा हस्तिनस्तेषां चरणाः पादास्तै-

---

का झुण्ड है, इधर जंगली हाथियों का समूह है, इधर जंगली सूअरों का यूथ है, इधर बनैले भैंसों का वृन्द है, इधर मयूरों का विराव हो रहा है, इधर कपिंजल नामक पक्षियों का मनोहर कूजन हो रहा है इधर कुररों का क्वणन चल रहा है, इधर केसरी के नखों से कुम्भस्थल के विदारण किये जाने पर कुंजरों का चिग्घाड़ हो रहा है, यह गीले कीचड़ से मलिन बनाया गया सूकरों का मार्ग है, यह ताजी घास के ग्रास के रस से हरा बनाया गया मृगों के रोमन्थ (चर्वित चर्वण) से जनित फेन का पुंज है, यह उन्मत्त गन्धगज के कपोल कण्डूयन से लग्न सौरभ में निलीन वाचाल अलियों का विराव है, यह गिरे हुये रुधिर की बूंदों से रंजित सूखे पत्तों वाला रुरुमृगों का अरुण मार्ग है, यह गज के पदों से रौंदे हुए डालों के पल्लव पुंज हैं, यह गैड़ों की क्रीडा है, यह नखाग्र से निकट रूप में चिह्नित पत्र की रेखा

---

१. वराहयूथम्, २. वराहकुलपद्धतिः, ३. आलीन, ४. शिखण्डिकुल, ५. कोटिविलिखितविकपटत्रः,

करिमौक्ति[1]कदलदन्तुरो मृगपतिमार्गः, एषा प्रत्यग्रप्रसूतवनमृगीगर्भरुधिरलोहिनी भूमिः, इयमटवीवेणिकानु[2]कारिणी प[3]क्षचरस्य यूथपतेर्मदजलमलिना संचारवीथी, चमरीपङ्क्तिरियमनुगम्यताम्, उच्छुष्कमृगकरीषपांसुला त्वरिततरमध्यास्यतामियं वनस्थली, तरुशिखरमारुह्यताम्, आलोक्यतां दिगियम्, आकर्ण्यतामयं शब्दः, गृह्यतां धनुः, अवहितैः स्थीयताम्, विमुच्यन्तां श्वान इत्यन्योन्यमभि[4]वदतो मृ[5]गयासक्तस्य महतो जनसमूहस्य तरुगहनान्तरितविग्रहस्य क्षोभितकाननं कोलाहलमश्रृणवम्।

मृदितं मर्दितं विटपानां वृक्षाणां पल्लवपटलं किसलयसमूहो यस्मिन्नेतादृशं स्थलमित्यर्थः। एतदिति। एतद् दृश्यमानं खड्गिनां वार्ध्रीणसानां कुलं पौत्रादि तस्य क्रीडितं चेष्टितम्। एष इति। एष प्रत्यक्षोपलक्ष्यमाणो मृगपतिमार्गो नखरायुधपन्थाः। कीदृक्। नखकोटिभिर्नखराग्रैर्विकटा विपुला विलिखिता निर्भिन्ना पत्रलेखा पर्णपङ्क्तिर्यस्मिन्स तथा; रुधिरैः रक्तैः पाटलः श्वेतरक्तः करिणां गजानां मौक्तिकानि मुक्ताफलानि तेषां दलानि खण्डानि तेन दन्तुरः स्थपुटः। एषेति। प्रत्यग्रप्रसूता नवप्रसविनी या वनमृग्यरण्यहरिणी तस्या गर्भो भ्रूणस्तस्य रुधिरं रक्तं तेन लोहिनी रक्तैषा भूमिः पृथ्वी। इयमिति। इयमटव्यरण्यभूमिर्वेणिकामलकपङ्क्तिमनुकरोतीत्येवंशीला सा तथा। कीदृशी। पक्षचरस्य समुदायचारिणो यूथपतेर्यूथनाथस्य मदजलेन दानवारिणा मलिना श्यामा। अनेन वेण्या साम्यमरण्यस्य सूचितम्। संचारेति। संचारवीथ्यां गोचरमार्गे चमर्या गोविशेषस्य पङ्क्तिः परंपरा सा अनुगम्यतामनुव्रज्यताम्। युष्माभिरिति शेषः। उच्छुष्केति। इयं वनस्थली त्वरिततरं वेगवत्तरमध्यास्यतामधिश्रियताम्। कीदृशी। उत्प्राबल्येन शुष्कं वानं यन्मृगकरीषं हरिणच्छगणं तेन पांसुला निन्दिता। तर्विति। तरुशिखरं वृक्षाग्रमारुह्यतामारोहविषयीक्रियताम्। इयमभिमुखा दिगालोक्यतामालोकविषयीक्रियताम्। अयं शब्द आकर्ण्यतां श्रूयताम्। धनुश्चापो गृह्यतां स्वीक्रियताम् अवहितैःसावधानैःस्थीयतामुपविश्यताम्। श्वानः कौलेयका विमुच्यन्तां प्रस्थाप्यन्तामित्यन्योन्यमिति पूर्वोक्तप्रकारेणान्योन्यं परस्परमभिवदतो जल्पतो मृगयासक्तस्याखेटकासक्तस्य

वाला, रक्त से लाल तथा गजमुक्ताओं के दानों से ऊबड़-खाबड़ केसरी का मार्ग है, यह सद्यः प्रसव करने वाली वन मृगी के गर्भ से गलित रक्त से रंजित भूमि है, यह इस अटवी की वेणी का अनुकरण करने वाला यूथचारी यूथपति के मदजल से मलिन बनाया गया संचरण मार्ग है। चमरी मृगों का पीछा करो। हिरनों के सूखे हुये करीष (करसी) से धूलिमय इस वनस्थली में अतिशीघ्र बैठ जाओ। पेड़ की चोटियों पर चढ़ जाओ। इस दिशा को देखो। यह आवाज सुनो। धनुष उठा लो। सावधानी से खड़े हो जाओ। कुत्तों को छोड़ दो।

---

१. मौक्तिकदन्तुरः, २. अनुसारिणी, ३. एकचरस्य; समीपचरस्य, ४. अभिददतः, ५. मृगयाप्रसक्तस्य,

अथ नातिचिरादेवा[1]नुलेपनार्द्रमृदङ्गध्व[2]निधीरेण गिरिविवरविजृम्भितप्रति[3]-नाद[4]गम्भीरेण [5]शबरशरताडितानां केसरिणां निनादेन, संत्रस्तयूथमुक्तानामेकाकिनां च संचरतामनवरतकरास्फोटमिश्रेण जलधररसितानुकारिणा गजयूथपतीनां कण्ठ[6]-गर्जितेन, सरभससारमेयविलुप्यमानावयवानामा[7]लोलतरलतारकाणामेणकानां च करुणकूजितेन, निहतयूथपतीनां वियोगिनीनामनुगतक[8]लभानां च स्थित्वा स्थित्वा समाकर्ण्य कलकलमुत्कर्णपल्लवानामितस्ततः परिभ्रमन्तीनां प्रत्यग्रपतिविनाशशोक-

---

महतो महीयसो जनसमूहस्य जनवृन्दस्य तरूणां वृक्षाणां गहनं निकुञ्जस्तेनान्तरितो व्यवधानी-कृतो विग्रहः शरीरं यस्य स तथा तस्य क्षोभितकाननमान्दोलितारण्यं यथा स्यात्तथा कोलाहलं कलकलमश्रृणवमश्रौषम् ।

अथेति । अथेत्यानन्तर्ये । नातिचिरादेव स्वल्पकालेनैव सर्वतोऽभितः प्रचलितमि[illegible] कम्पितमिव तदरण्यमभवत् । केन । अन्विति । अनुलेपनं द्रवद्रव्यं तेनार्द्रः स्विन्नो यो मृदङ्गो मुरजस्तस्य ध्वनिः शब्दस्तद्वद्धीरेण गम्भीरेण । गिरीति । गिरिविवरेषु पर्वतच्छिद्रेषु विजृम्भितः प्रसृतो यः प्रतिनादः प्रतिच्छन्दस्तेन गम्भीरेण मन्द्रेण । पुनः केन । शबरेति । शबरा भिल्लास्तेषां शरा बाणास्तैस्ताडितानां व्यथितानां केसरिणां सिंहानां निनादेन शब्देन । पुनः केन । संत्रस्तेति । संत्रस्तं चकितं यद्यूथं तेन मुक्तानामेकाकिनां च संचरतां गच्छतामनवरतं निरन्तरं यः करास्फोटः शुण्डाघातस्तेन मिश्रः शबलितो जलधरो मेघस्तस्य रसितं गर्जितं तदनुकारिणा गजयूथपतीनां हस्तिसमुदायनाथानां कण्ठगर्जितेन निगरणरसितेन । पुनः केन । सरभसेति । सरभसं वेगवत्तरं सारमेयैः श्वभिर्विलुप्यमाना दूरीक्रियमाणा अवयवा अपघना येषां ते तथा तेषामालोलाश्चञ्चला अत एव तरला स्फुटिता तारककनीनिका येषामेवंविधानामेण-कानां हरिणानां करुणं करुणरसोत्पादकं यत्कूजितं शब्दितं तेन । पुनः केन । करिणीनां हस्तिनीनां चीत्कृतेन चीत्कारशब्देन । कीदृशेन । प्रत्यग्रेति । प्रत्यग्रस्तत्कालीनो यः पतिविनाश-

---

इसके बाद वह जंगल सभी ओर से काँप सा उठा । वहाँ सद्यः द्रव द्रव्य के लेप से आर्द्र मृदंग की ध्वनि के समान धीर तथा गिरिकन्दरा में परिवर्धित प्रतिध्वनि से गम्भीर उन सिंहों की गर्जना हो रही थी जो शबरों के शरों से आहत थे । भय से त्रस्त होने के कारण झुंड से बिछुड़े हुये अतएव अकेले भटकने वाले यूथपतियों के सूंड़ों के निरन्तर आघात से मिला हुआ मेघगर्जनानुकारी उनके कण्ठों का गर्जन चल रहा था । उन हिरनों का करुण कूजन हो रहा था जिनके अंगों को तेज शिकारी कुत्तों ने नोच डाला था तथा जिनकी पुतलियाँ भय के कारण चंचल हो गई थीं । आहत यूथपतियों की वियोगिनी हथिनियों के सद्यः विनष्ट पति के शोक से चीत्कार चल रहा था, एवं उनके पीछे पीछे हाथियों के बच्चे चल रहे थे तथा उन करि शावकों के कल-कल निनाद को रुक रुक कर कान खड़ा करके वे सुन रहीं थीं और इधर

---

१. इव, २. ध्वान, ३. प्रतिनिनाद, ४. गभीरेण, ५. शरताडितानाम्, ६. गर्जितेन, ७. आलोलकातरतरलतर; विलोलकातरतरलतर, ८. कलभकानाम्,

दीर्घेण करिणीनां चीत्कृतेन, कतिपयदिवसप्रसूतानां च खड्गिधेनुकानां त्रासपरिभ्रष्ट-[1]पोतकान्वेषिणीनामुन्मुक्तक[2]ण्ठमारसन्तीनामाक्रन्दितेन, तरुशिखरसमुत्पतितानामा-कुलाकुलचारिणां च पत्त्ररथानां कोला[3]हलेन, रूपानुसारप्र[4]धावितानां च मृग[5]यूथानां युगपदतिरभसपा[6]दपाताभिहताया भुवः कम्पमिव जनयता चरणशब्देन कर्णान्ता-कृष्टज्या[7]नां च मदकलकुररकामिनीकण्ठकूजित[8]कलशबलितेन शरनिकरवर्षिणां धनुषां निनादेन, पव[9]नाहतिक्वणितधाराणामसीनां च कठिनमहिषस्कन्धपीठ[10]पातिनां रणितेन, शुनां च सरभसविमुक्तघर्घरध्वनीनां वनान्तरव्यापिना ध्वानेन सर्वतः प्रचलितमिव

शोकस्तेन दीर्घेणायतेन। हस्तिनीं विशेषयन्नाह—इतस्तत इति। इतस्ततः समन्ततः परिभ्रम-न्तीनां परिभ्रमणं कुर्वतीनाम्। उत्कर्णेति। उदूर्ध्वं कर्णपल्लवा यासां तास्तासाम्। किं कृत्वा। स्थित्वा स्थित्वा पूर्वोक्तं कलकलं समाकर्ण्य श्रुत्वा। अन्विति। अनुगताः पश्चाल्लग्नाः कलभा यासां तास्तथा तासां वियोगिनीनां विप्रलम्भयुक्तानाम्। निहतेति। निहता व्यापादिता यूथपतयो यासां तास्तथा तासाम्। पुनः केन। आक्रन्दितेन रुदितेन। कासाम्। खड्गिधेनु-कानां गण्डकस्त्रीणाम्। किं कुर्वतीनाम्। उन्मुक्तकण्ठं यथा स्यात्तथातिकरुणशब्दमारसन्ती-नामारटन्तीनाम्। पुनः कीदृशीनाम्। त्रासेति। त्रासेन भयेन परिभ्रष्टो नष्टो यः पोतकः स्तनंधयस्तदन्वेषिणीनां तद्विलोकनशीलानाम्। कतिपयेति। कतिपये कियन्तो ये दिवसा वासरास्तत्र प्रसूतं याभिस्तासाम्। पुनः केन। पत्त्रेति। पत्त्ररथानां पक्षिणां कोलाहलेन कलकलशब्देन। पक्षिणो विशेषयन्नाह—तर्विति। तरुशिखराणि वृक्षप्रान्तानि तेभ्यः समुत्प-तितानामुड्डीनानाम्। आकुलेति। आकुलाकुलं यथा स्यात्तथा चारिणां गामिनाम्। पुनः केन। मृगेति। मृगा हरिणास्तेषां यूथानि वृन्दानि तेषां चरणशब्देन क्रमणोत्थरवेण। कीदृशानाम्। रूपेति। रूपं शक्तिस्तदनुसारेण प्रधावितानां प्रचलितानाम्। कीदृशेन चरणशब्देन। युगपदिति। युगपत् एकदैवातिरभसं वेगवत्तरं पादानां चरणानां पातः पतनं तेनाभिहताया

उधर भटक रही थीं। कुछ ही दिनों पूर्व प्रसव करने वाली गैंडों की स्त्रियों का आक्रन्दन मचा हुआ था, वे डर के मारे विछुड़े हुये बच्चों की खोज में संलग्न थीं तथा गला फाड़ कर चीख रही थीं। वृक्षों की चोटियों से उड़े हुये पक्षियों का कोलाहल हो रहा था तथा वे अत्यन्त व्याकुलता से संचार कर रहे थे। पूरी ताकत से दौड़ने वाले मृगयूथ के एक साथ ही होने वाले तीव्र पादाघातों से भूकम्प सा उत्पन्न करने वाली पदध्वनि हो रही थी। कानों तक खिंची हुई प्रत्यंचा वाले बाण-वर्षी धनुषों का टंकार हो रहा था और उस टंकार में मदमत्त कुररियों के कण्ठकूजन का मनोहर मिश्रण भी हो गया था। पवनाघात से सनसनाती हुई तथा प्रौढ भैंसों के स्कन्धपीठोंपर गिरने वाली तलवारों का अनुरणन हो रहा था। प्रबल वेग से गुर्राने वाले कुत्तों की घरघराहट से वन का अन्तराल पूर्णतः परिव्याप्त था।

---

१. पोतान्वेषिणीनाम्, २. कण्ठकरुण; कण्ठं करुण; कण्ठमतिकरुण, ३. निनादेन ४. प्रस्थितानाम्, ५. मृगयूणाम्, ६. पादवातात्, ७. ज्याघोषमद, ८. कलेन; कलशबलेन; कलकलेनेव; कलकलशबलेन, ९. आहत्त, १०. पाटितानाम्,

[1]तदरण्यमभवत्। अचिराच्च प्रशान्ते तस्मिन्मृगयाकलकले निर्वृष्टमूकजलधरवृन्दानु-कारिणि मथनावसानोपशान्तवारिणि सागर इव स्तिमि[2]ततामुपगते का[3]नने मन्दी-भूतभयोऽहमुपजातकुतूह[4]लः पितुरुत्सङ्गादीषदिव निष्क्रम्य कोटरस्थ एव शिरोधरां प्रसार्य संत्रास[5]तरलतारकः शैशवात्किमिद[6]मित्युप[7]जातदिदृक्षुस्तामेव दिशं चक्षुः प्राहिणवम्।

भुवः पृथिव्याः। बलवद्द्रव्याघाताभावेन कम्पाभावेऽपि कम्पभ्रम इत्याह—कम्पमिवेति। जनयतोत्पादयता। पुनः केन। धनुषां निनादेन चापशब्देन। धनूंषि विशेषयन्नाह—कर्णेति। कर्णान्तं श्रोत्रपर्यन्तमाकृष्टाकर्षिता ज्या गुणो येषां तानि तथा तेषाम्। शरेति। शराणां बाणानां निकरः समूहस्तं वर्षन्तीत्येवंशीलानि यानि धनूंषि तेषाम्। चापध्वनिं विशेषयन्नाह—मदेति। मदेन कला मनोज्ञा या कुररस्य मत्स्यनाशस्य कामिनी स्त्री तस्याः कण्ठकूजितं तस्य कलो मधुरो ध्वनिस्तेन शबलितेन मिश्रितेन। पुनः केन। असीति। असीनां खड्गानां रणितेन शब्दितेन। असीन्विशेषयन्नाह—पवनेति। पवनस्य समीरणस्याहत्याहननेन क्वणिताः शब्दिता धारा येषां ते तथा तेषाम्। कठिनेति। कठिनः कठोरो यो महिषस्कन्धो लुलायभुजशिरः स एव पीठं स्थलं तत्र पातिनां पतनशीलानाम्। पुनः केन। शुनां सारमेयाणां वनान्तरव्यापिनारण्यमध्य-प्रसरणशीलेन ध्वानेन शब्देन। शुनो विशिनष्टि—सरभसेति। सरभसं सवेगं विमुक्ता घर्घर-ध्वनयो यैस्ते तथा तेषाम्। अचिराच्चेति। अचिरात् बहुकालेन प्रशान्ते शान्ति-मुपगते मृगयाकलकलशब्दे सागर इव समुद्र इव स्तिमिततां निश्चलतामुपगते प्राप्ते काननेऽरण्ये सति। सागरं विशेषयन्नाह मथनेति। मथनस्य विलोडनस्यावसानं पर्यन्तस्तेनोपशान्तं स्वस्वरूपेणावस्थितं वारि जलं यस्मिन्। निर्वृष्टेति। निर्वृष्टाः कृतवर्षा मूकाः स्तनितशून्या ये जलधरा मेघास्तेषां वृन्दं तदनुकर्तुं शीलं यस्य स तस्मिन्। मन्दीति। मन्दीभूतं मन्दतां प्राप्तं भयं भीतिर्यस्य स तथा। उपेति। उपजातमुत्पन्नं कुतूहलमाश्चर्यं यस्य सोऽहं पितुर्जनकस्यो-त्सङ्गात्क्रोडादीषदिव निष्क्रम्य किंचिदिवोन्नतो भूत्वा कोटरस्थ एव शिरोधरां ग्रीवां प्रसार्य विस्तार्य संत्रासेन भयेन तरला चञ्चला तारका कनीनिका यस्य स तथा। शैशवाद्बाल्यात्किमिदमिति हेतोः। तामेव दिशं ककुभं प्रति चक्षुर्नेत्रं प्राहिणवम् प्रैषयम्। किमिदमदृष्टपूर्वमित्युपजाता समुत्पन्ना दिदृक्षा द्रष्टुमिच्छा यस्य सः।

इसके तुरत बाद उस शिकार के कोलाहल के शान्त हो जाने पर वह अरण्य बरस चुकने के पश्चात् वारिदमाला तथा मन्थन के अनन्तर सुस्थिर जल वाले समुद्र की भाँति जब निःस्तब्ध हो गया तब मेरा भय कम हुआ और कुतूहलवश पिता की गोद से थोड़ा सा निकल कर कोटर के भीतर से ही गरदन पसार कर डर के मारे चंचल पुतलियों वाले मैंने बचपन के कारण, यह सब क्या हो रहा है—यह देखने की इच्छा से उसी दिशा में अपनी आँखें प्रेरित कीं।

---

१. तदा, २. उपागते, ३. तस्मिन्कानने, ४. मन्दीभूतसाध्वसः, ५. तरलतर, ६. किमिति, ७. समुपजातविस्मयो दिदृक्षुः; समुपजातदिदृक्षः; संजातदिदृक्षः,

अभिमुखमा[1]पतच्च तस्माद्वनान्तरादर्जुनभुजदण्डसहस्रविप्रकीर्णमिव नर्मदा-प्रवाहम्, अनि[2]लच[3]लितमिव तमालकाननम्, एकीभूतमिव कालरात्रीणां यामसंघातम्, अञ्जनशिलास्तम्भसंभारमिव क्षितिकम्पविघूर्णितम्, अन्धकारपुञ्ज[4]मिव रविकिरणाकु[5]-लितम्, अन्तकपरिवारमिव परिभ्रमन्तम्, अवदारितरसातलोद्भू[6]तमिव दानवलोकम् अशुभकर्मसमूहमिवैकत्र समागतम्, अ[7]नेकदण्डकार[8]ण्यवासिमुनिजनशापसार्थमिव संचरन्तम्, अनवरतशरनिकरवर्षिरामनिह[9]तखरदूषणबल[10]निवहमिव तदपध्याना-त्पिशाचतामु[11]पगतम्, कलिकालब[12]न्धुवर्गमिवैकत्र संगतम्, [13]अवगाहप्रस्थितमिव

अभीति। तस्माद्वनान्तरान्ममाभिमुखं संमुखमापतदागच्छच्छबरसैन्यं भिल्ला-नीकम्। तदद्दसद्राक्षमित्यग्रिमेणान्वयः। तत्सैन्यं विशेषयन्नाह—अर्जुनेति। सहस्रार्जुनस्य राज्ञो भुजदण्डसहस्रं बाहुसहस्रं तेन विप्रकीर्णमितस्ततः पर्यस्तं नर्मदाप्रवाहमिव मेकलाद्रिजास्रोत इव। अनिलवशाद्वायुवशाच्चलितमितस्ततः पर्यस्तं तमालानां तापिच्छानां काननं वनमिव। एकीभूतं मिश्रीभूतं कालरात्रीणां तमस्विनीनां यामसंघातमिव। अञ्जनशिलानां श्यामशिलानां ये स्तम्भाः स्थूणास्तेषां संभारमिव व्रातमिव। क्षितीति। क्षितिकम्पेन पृथ्वीप्रचलितेन विघूर्णितं मूर्च्छितम्। अन्धकारपुञ्जमिव ध्वान्तपटलमिव। रवीति। रविकिरणैः सूर्यरश्मिभिराकुलितं व्याकुलीभूतम्। अन्तकस्य यमस्य परिवारमिव परिच्छदमिव। किं कुर्वन्तम्। परिभ्रमन्त-मितस्ततः पर्यटन्तम्। अवेति। अवदारिताद्विदीर्णाद्रसातलाद्भूतलादुद्भूतं प्रकटीभूतं दानव-लोकमिव दैत्यलोकमिव। अशुभेति। एकत्र समागतं मिलितमशुभकर्मणः पापप्रकृतेः समूह-मिव संघातमिव। अनेकेति। अनेके च ये दण्डकारण्यवासिमुनिजनास्तेषां शापानां सार्थः समूहस्तमिव। किं कुर्वन्तम्। संचरन्तं व्रजन्तम्। अनवरतेति। अनवरतं निरन्तरं शरनिकरं बाणसमूहं वर्षतीत्येवंशीलो यो रामो दशरथात्मजस्तेन निहतो व्यापादितः खरदूषणस्य पाताललङ्काधिपतेर्बलनिवहः सैन्यसमूहस्तमिव। कीदृशम्। तस्मिन्रामचन्द्रेऽपध्यानं दुश्चिन्तनं

और उस वन के अन्दर से सामने की ओर आते हुये भीलों के सैन्य को मैंने देखा जो सहस्रार्जुन के हजारों भुजदंडों से विकीर्ण नर्मदा के प्रवाह के समान था, पवन से संचालित तमाल वनके सदृश था, कालरात्रियों के प्रहर-पुंज जैसे एकत्र हो गये हों, भूकम्प से हिलाये जाते अंजन के चट्टानों के खम्भों जैसे हों, सूर्य की किरणों से व्याकुल जैसे अन्धकार-पुंज हो, परिभ्रमण करता हुआ जैसे यमराज का परिवार हो, धरती को फाड़कर रसातल से निकला हुआ जैसे दानवों का गण हो, एकत्र हुआ जैसे पातक-पुंज हो, दण्डक वन के निवासी अनेक मुनियों का शापसमूह जैसे संचरण कर रहा हो, निरन्तर वाणों की वर्षा करने वाले राम के द्वारा मारा हुआ खर-दूषण का विशाल सैन्य जैसे राम के अशुभ चिन्तन से पिशाच हो गया हो, कलिकाल

---

१. आपतन्तं च; आपतितम्, २. अनिलवल; अनिलवर्षात्, ३. संचलित, ४. पूरम्; बलम्, ५. आकुलम्, ६. उद्गतमिव, ७. अशेष, ८. वासित, ९. निहतम्; हत, १०. वलमिव, ११. उपगतम्, १२. वर्गमिव समुद्गतम्; वर्गमिव संगतम्, १३. अवगाह्योत्थित,

वनमहिषयूथम्, अचलशिख[1]रस्थितकेसरिकराकृष्टिपतनवि[2]शीर्णमिव [3]कालाभ्र-पटलम्, अखिलरूपविनाशाय धूमकेतुजालमिव समुद्गतम्, अन्धकारित[4]काननम् अनेकसहस्रसंख्यम्, अतिभयज[5]नकमुत्पातवेतालव्रातमिव शबरसैन्यमद्राक्षम्।

मध्ये च तस्य म[6]हतः शबरसैन्यस्य प्रथमे वयसि वर्तमानम्, अतिकर्कशत्वा[7]-दायसमयमिव निर्मितम्, एकलव्यमिव जन्मान्तरग[8]तम्, उद्भिद्यमानश्मश्रुराजितया

तस्मात्पिशाचतां भूततामुपगतं प्राप्तम्। कलीति। कलिकालः कलियुगस्तस्य बन्धुवर्गं सहचर-समुदायमिव। एकत्रेति। एकत्र एकस्मिन्नेव स्थले संगतं मिलितम्। अवेति। अवगाहो मज्जनं तदर्थं प्रस्थितं वनमहिषयूथमिव। अचलेति। अचलः पर्वतस्तस्य शिखरं शृङ्गं तत्र स्थितो यः केसरी महानागस्तस्य करौ हस्तौ ताभ्यामाकृष्टिराकर्षणं तस्माद्यत्पतनं भ्रंशस्तेन विशीर्णं विशरारुतां प्राप्तं कालाभ्रपटलमिव मेघमालामिव। अखिलेति। अखिलानां समग्राणां यद्रूपं तस्य विनाशाय नाशनाय समुद्गतमुदयं प्राप्तं धूमकेतुजालमिव केतुसमूहमिव। अन्धेति। अन्धकारितं संजातान्धकारं काननं येन तादृशम्। अनेकेति। अनेकानि सहस्राणि संख्या यस्य तत्तथा। अतीति। अतिभयमुत्कृष्टभीतिस्तस्य जनकमुत्पादकम्। किमिव। उत्पातोऽजन्यं तस्य वेतालव्रातं देवविशेषसमूहमिव भयोत्पादकमित्यर्थः। अन्वयस्तु प्रागेवोक्तः।

मध्ये चेति। तस्य पूर्वव्यावर्णितस्य महतः शबरसैन्यस्य भिल्लबलस्य मध्ये मातङ्गनामानं शबरसेनापतिमपश्यमद्राक्षमित्यन्वयः। तमेव विशेषयन्नाह—प्रथमे इति। अत्र प्राथम्यमापेक्षि-कम्। तेन वार्धकापेक्षया प्रथमं वयस्तत्र वर्तमानम्। अतिकर्कशत्वादतिकठिनत्वादायसमयमिव लोहमयमिव निर्मितं रचितम्। कमिव। एकेति। एकलव्यो द्रोणाचार्यशिष्यः शबरस्तमिव। कीदृशम्। जन्मेति। एकस्माज्जन्मनोऽन्यज्जन्मान्तरं तत्र गतं प्राप्तम्। उदिति। उद्भिद्यमाना-न्युत्पद्यमानानि यानि श्मश्रूणि तेषां राजिः पंक्तिस्तस्या भावस्तत्ता तया प्रथमाद्या या मदलेखा

के बन्धु-बान्धव जैसे एक स्थान पर मिल गये हों, स्नान करने के लिये प्रस्थान किये हुये जंगली भैंसों का जैसे समूह हो, पर्वत की चोटी पर अवस्थित केसरी के कराकर्षण से गिर कर विशीर्ण हो जाने वाला जैसे काले बादलों का पटल हो, समस्त जंगली जानवरों के विनाश के लिये जैसे धूमकेतुओं का समुदाय उग आया हो, समूचे जंगल को अन्धकाराच्छन्न किये हुए, जिनकी संख्या अनेक हजारों की थीं, अत्यन्त भय के उत्पादक थे और उपद्रव करने वाले वैतालों के समूह जैसे थे।

और उस शबरों की विशाल सेना के मध्य में शबर सेनापति को मैंने देखा जो युवावस्था में वर्तमान था, अत्यन्त कर्कश-काय होने के कारण मानों केवल लोह से ही जैसे निर्मित था, एकलव्य ही जैसे दूसरा जन्म लेकर आ गया था, निकलती हुई दाढी की रोम-राजि से जो

---

१. शिखरस्थसिंह, २. शीर्णम्, ३. कालमेघ, ४. अशेषकाननम्, ५. जननम्, ६. अतिमहतः, ७. आयसम्, ८. आगतम्,

प्रथमसमदलेखामण्ड्यमानगण्डभित्तिमिव गजयूथपतिकु¹मारकम्; असितकुवलय²-श्यामलेन देहप्रभाप्रवाहेण कालिन्दीजलेनेव पू³रितारण्यम्, आकुटिलाग्रेण स्कन्धावलम्बिना कुन्तलभारेण केसरिणमिव गजमदमलिनीकृतेन केसरकलापेनोपेतम्, आयतललाटम्⁴, अ⁵तितुङ्गघोरघोणम्, उपनीतस्यैककर्णाभरणतां भु⁶जगफणाम⁷णेरापाटलैरंशुभिरालोहितीकृतेन पर्णशयनाभ्यासाल्लग्नपल्लवरागेणेव वामपार्श्वेन विराजमानम्, अचिरप्रहत⁸गजकपोलगृहीतेन सप्तच्छदपरिमलवाहिना कृ⁹ष्णागरुपङ्केनेव

तथा मण्ड्यमानालंक्रियमाणा गण्डभित्तिः कपोलभित्तिर्यस्यैवंभूतो यो गजयूथपतिर्गजनायकस्तस्य कुमारकः कलभस्तमिव। असितेति। पूरितं भृतमरण्यं काननं येन स तथा तम्। केन देहस्य शरीरस्य या प्रभा कान्तिस्तस्याः प्रवाहेणौघेन। तमेव विशेषयन्नाह—असितेति। असितं कृष्णं यत्कुवलयं कुवेलं तद्वत् श्यामलेन श्यामेन। केनेव। कालिन्दीजलेनेव यमुनाम्भसेव। यमुनाजलं नीलम्, शबरदेहप्रभापि तादृशी, अतस्तयोः साम्यम्। कमिव। आकुटिलेति। आ ईषत्कुटिलमग्रं यस्यैवंभूतेन स्कन्धावलम्बिना कुन्तलभारेण केशकलापेनोपेतं सहितं गजानां व्यापादनलक्षणेन। तन्मदेन दानवारिणा मलिनीकृतेन केसराणां कलापेन सटानां कलापेनोपेतं सहितं केसरिणमिव सिंहमिव। आयतेति। आयतं विस्तीर्णं ललाटमलिकं यस्य स तम्। अतीति। अतितुङ्गात्युच्चा घोरा रौद्रा घोणा नासिका यस्य स तम्। वामेति। वामपार्श्वेन सव्यपार्श्वेन विराजमानं शोभमानम्। तदेव विशेषयन्नाह—पर्णेष्विति। पर्णेषु पत्रेषु यच्छयनं स्वापस्तत्र योऽभ्यासः परिचयस्तेन लग्नः पल्लवानां राग आरुण्यं यस्मिंस्तत्तथा तेन। अत्रोत्प्रेक्षा—नायं पल्लवैररुणः किंत्वेकस्मिन्कर्णे आभरणतां भूषणतां उपनीतस्य प्रापितस्य भुजगफणामणेरापाटलैः श्वेतरक्तैः अंशुभिः किरणैः आलोहितीकृतेन अरुणीकृतेनेव। इवः भिन्नक्रमः। अचिरेति। अचिरं तत्कालं प्रहतो यो गजस्तस्य कपोलाभ्यां गृहीतेन सप्तच्छदानामयुक्छदानां यः परिमलो गन्धस्तं वहतीत्येवंशीलः स तथा तेन। केनेव। कृष्णागरुः काकतुण्ड-

पहली वार मद-रेखा से विभूषित कपोलपालि वाले गजोंके यूथपति के कुमार जैसा प्रतीत हो रहा था, नील कमलके समान श्यामल शारीरिक कान्ति के प्रवाह से अरण्य को उस तरह भर दिया था जैसे कालिन्दी के नील नीर से जंगल भर दिया गया हो, जिसका अग्रभाग थोड़ा कुंचित हो ऐसे कन्धों पर लटकने वाले कचोंके भार से जो गज के मद से मलिन बनाई गई सटा के आटोप से युक्त केसरी की भाँति दिखलाई पड़ता था, जिसका भाल विशाल और नासिका भयंकर तथा अत्यन्त ऊँची थी, साँप के फणामणि से निर्मित आभूषण को एक कान में पहनने के कारण उसकी आरक्त किरणों से अरुण बनाये गये वायें भाग से जो इस तरह विराज रहा था मानों पत्तों की शय्या पर सोने के अभ्यास से पल्लवों का आरुण्य सट गया हो, सद्यः मारे गये गज के कपोल से गृहीत, छितवन की सुगन्ध से युक्त उस मद से अंगों में अनुलेपन किये हुये था जो सुरभित कृष्णागुरु के पंक जैसा था, उस अनुलेप के सौरभ से

१. कुमारम्, २. श्यामेन, ३. पूरयन्तमरण्यम्, ४. ललाटभासिनम्, ५. तुङ्गघोर, ६. भुजंग, ७. फणा, ८. आहत, ९. कृष्णागरु,

सुरभिणा मदेन कृताङ्गरागम्, उ[1]परि तत्परिमलान्धेन [2]भ्रमता [3]मायूरपिच्छातपत्रा-नुकारिणा मधुकरकुलेन तमालपल्लवेनेव निवारितातपम्, [4]आलोलपल्लवव्याजेन भुजबलनिर्जितया भयप्रयुक्तसेवया विन्ध्याटव्येव करतलेनापमृज्यमानगण्डस्थलस्वेद[5]-लवम्, आपाटलया [6]हरिणकुलकालरात्रिसंध्यायमानया शोणितार्द्रयेव दृष्ट्या [7]रञ्जयन्त-मिवाशाविभागानाम्[8], [9]जानुलम्बेन [10]कुञ्जरकरप्रमाणमिव गृहीत्वा निर्मितेन [11]चण्डि-कारुधिरबलिप्र[12]दानायाऽसकृन्निशितशस्त्रोल्लेखविषमितशिखरेण भुजयुगलेनोपशोभि-

---

स्तस्य पङ्केनेव कर्दमेनेव सुरभिणा सुगन्धिना मदेन कृतोऽङ्गरागो विलेपनं येन स तथा तम्। उपरीति। तस्य मदस्य यः परिमलो गन्धस्तेनान्धेन विह्वलेनेति हेतुः। उपर्युपरिष्टाद्भ्रमता भ्रमणं कुर्वता। मायूरेति। मायूरं मयूरसम्बन्धि यदातपत्रं तदनुकारिणा मधुकरकुलेन भ्रमरसमुदायेन। केनेव। तमालपल्लवेनेव तापिच्छकिसलयेनेव निवारितो दूरीकृत आतपः सूर्यालोको यस्य स तथा तम्। आलोलेति। विन्ध्याटव्या विन्ध्यवनस्थल्या लोलाश्चञ्चला ये पल्लवाः किसलयानि तेषां व्याजेन छलेन करतलेन हस्तेनेवापमृज्यमाना गण्डस्थलस्यमदलेखा यस्य तम्। विन्ध्याटवीं विशिनष्टि—भुजेति। भुजयोर्यद्बलं वीर्यं तेन निर्जितया पराजितया। भयेति। भयमातङ्कस्तेन प्रयुक्तारब्धा सेवा यया। दृष्ट्या चक्षुषा। कीदृश्या आपाटलयेषच्छ्वे-तरक्तया। मृगेति। मृगकुलानां हरिणवंशानां या क्षयरात्रिर्विनाशयामिनी तस्याः संध्याय-मानया सायंकालवदाचरितया शोणितार्द्रयेव रक्तलिप्तयेव रञ्जयन्तं शोभयन्तम्। केषाम्। आशाविभागानां दिग्विभागानाम्। अत्र कर्मणि षष्ठी। जान्विति। भुजयोर्युगलं बाहुद्वन्द्वं तेनोपशोभितं विराजमानम्। भुजयुग्मं विशेषयन्नाह—जान्विति। जानुर्नलकील-स्तत्पर्यन्तं चावलम्बेनायतेन। महापुरुषलक्षणमिदम्। कुञ्जरेति। कुञ्जरो गजस्तस्य करप्रमाणं शुण्डापरिमाणं गृहीत्वेव निर्मितेन कृतेन। चण्डिकेति। चण्डिका काली तस्या रुधिरबलि-प्रदानायासकृन्निरन्तरं निशितानि तेजितानि यानि शस्त्राणि तेषामुल्लेखो घर्षणं तेन विषमितं

अन्ध होकर ऊपर मँडराते हुये भ्रमरों से—जो मयूर पिच्छ के छत्र का अनुकरण कर रहे थे तथा तमाल पल्लवों के सदृश थे—जिसके आतप का निवारण किया जा रहा था, बाहुबल से पराजित तथा भय के कारण सेवा में संलग्न विन्ध्याटवी मानो ईषत् कम्पित पल्लवों के व्याज से करतल द्वारा जिसके कपोल-स्थल की स्वेद बिन्दुओं का मार्जन किया करती थी, जो हरिण कुल की कालरात्रि की सन्ध्या के समान रक्त से भीगी हुई सी आरक्त दृष्टि से दिग्विभागों को रँगता था, जो चण्डी को रुधिर की बलि देने के लिये बारम्बार तेज शस्त्रों के घर्षण से विषम अग्रभाग वाले थे एवं हाथियों के सूँड़ की नाप लेकर जो बनाये गये थे ऐसे आजानु-लम्बे

---

१. उपरिपतत्परिमल, २ परिभ्रमता, ३ मायूरातपत्र; मयूरपिच्छातपत्र; मयूरहिच्छ-छत्र, ४ आलोलकर्णपल्लव, ५ स्वेदसलिल, ६ मृगकुलक्षयरात्रि, ७ रञ्जयन्तमाशा, ८ विभा गाम्, ९ आजानुलम्बिना, १० वनकुञ्जर; दिक्कुञ्जर, ११ कालिका, १२ प्रदानार्थमसकृत,

तम्, अन्तरा[1]न्तरालग्नाऽऽश्यानहरिणरुधिरबिन्दुना स्वेदजलक[2]णिकाचितेन गुञ्जाफल[3]मिश्रैः करिकुम्भमुक्ताफलैरिव र[4]चिताभरणेन विन्ध्यशि[5]लाविशालेन व[6]क्षःस्थलेनोद्भासमानम्, अविरतश्रमाभ्यासादु[7]ल्लिखितोदरम्, इभमदमलिनमालानस्तम्भयुगलमुपहसन्तमिवोरुदण्डद्वयेन, लाक्षालोहितकौशेयपरिधानम् अकारणेऽपि क्रू[8]रतया बद्धत्रि[9]पताकोदग्रभ्रुकुटिकराले ललाटफ[10]लके प्रबलभक्त्याराधितया मत्परिग्रहोऽयमिति कात्यायन्या त्रिशूलेनेवाङ्कितम्, उपजातपरिचयैरनुगच्छद्भिः श्रमवशाद्[11]दूरवि-

---

स्थपुटितं शिखरं भुजाग्रं यस्य स तथा तेन। चक्षुरिति। चक्षुःस्थलेन नेत्रस्थानेनोत्प्राबल्येन भासमानं शोभमानम्। चक्षुःस्थलं विशिनष्टि—लग्नेति। अन्तरा मध्ये लग्नाश्यानाशुष्का हरिणस्य मृगस्य यद्रुधिरं रक्तं तस्य बिन्दवो यस्मिन् तेन। स्वेदेति। स्वेदजलं प्रस्वेदवारि तस्य कणिकाः क्षुद्ररजःकणिकास्ताभिराचितेन व्याप्तेन। रक्तश्वेतसादृश्योपमानमाह गुञ्जेति। रचितं विरचितमाभरणं भूषणं यस्य तत्तथा तेन। कैः। करिकुम्भमुक्ताफलैरिव हस्तिशिरः पिण्डरसोद्भवैरिव। कीदृशैः। गुञ्जाफलानि प्रसिद्धानि तैर्मिश्रैः संयुक्तैः। विन्ध्येति। विन्ध्यपर्वतस्य जलबालकाद्रेर्या शिला तद्वद्विशालेन विस्तीर्णेन। अविरतेति। अविरतं निरन्तरं यः शक्त्यतिशयार्थं श्रमस्तत्राभ्यासः पुनः पुनः करणं तस्मादुल्लिखितं चिह्नितमुदरं यस्य स तम्। इभेति। ऊर्वोर्यद्दण्डद्वयं तेनेभो गजस्तस्य मदो दानवारि तेन मलिनं श्याममालानं गजबन्धनस्तम्भस्तयोर्युगलं द्वन्द्वमुपहसन्तमिव तिरस्कुर्वन्तमिव। लाक्षेति। लाक्षया जतुना लोहितं रक्तीकृतं यत्कौशेयं कृमिकोशोत्थं तदेव परिधानमधोंशुक यस्य स तथा तम्। अकारेति। अकारणेऽपि क्रोधाभावेऽपि क्रूरतया दुष्टतया बद्धा त्रिपताका त्रिवलिर्यैर्यैवंभूता या भ्रुकुटिर्भ्रुकुटिस्तस्या कृत्वा कराले विकराले ललाटफलकेऽलिकपट्टे प्रबलभक्त्याराधितयात्युत्कृष्टभक्तिवशीकृतया कात्यायन्या भवान्या मत्परिग्रहोऽयमिति मदीयोऽ-

---

बाहु युगल से जो सुशोभित था, बीच-बीच में संलग्न सूखे हुये मृग के रक्त बिन्दुओं से पसीने की बूँदों का मिश्रण ऐसा भासित हो रहा था जैसे गुँजा के फल से मिश्रित गजमुक्ताओं के दानों से निर्मित आभूषण हो, उससे विन्ध्य की शिला के खण्ड की भाँति विशाल वक्षःस्थल जिसका उद्भासित हो रहा था, निरन्तर परिश्रम (व्यायाम) के अभ्यास से जिसका उदर कृश था, जो अपने युगल ऊरु-दण्ड से मद से मलिन गज बन्धन के युग्म खम्भों का उपहास सा कर रहा था, जो द्रवीभूत लाख के समान लाल रेशमी वस्त्र पहने हुए था, कारण के अभाव में भी क्रूरता वश बँधी हुई त्रिपताका (त्वचा की तीन सिकुड़न) से उदग्र भौंह से भयंकर ललाट-पट्ट पर प्रबल भक्ति से आराधित कात्यायनी ने यह मेरा परिग्रह (स्वीकृत पदार्थ) है' मानो यह समझ कर त्रिशूल से चिह्नित कर दिया है, जिसके पीछे-पीछे परिचित एवं रंग विरंगे कुत्ते अनुगमन कर रहे थे जिनकी जीभ परिश्रम करने से बाहर निकलती हुई थी, जो (जीभ) नैसर्गिक रक्तिमा से सूखी होनेपर भी मृग

---

१ अन्तरालग्ना, २ कणचितेन, ३ विमिश्रैः, ४ विरचिता, ५ विन्ध्यशिलातल ६ कक्षस्थलेन, चक्षुःस्थलेन ७ उल्लिखिताम्बरम्, ८ क्रूरजातितया, ९ त्रिपताकाग्रभ्रुकुटि, १० पट्टे, ११ दर,

निर्गताभिः स्वभावपाटलतया शुष्काभिरपि हरिणशोणितमिव क्षरन्तीभिर्जिह्वाभिरावेद्यमानखेदैर्विवृतमुखतया स्पष्टदृष्टदन्तांशून्दंष्ट्रान्तरालग्नकेसरिस[3]टानिव सृक्कभागानुद्वहद्भिः स्थूलवराटकमालिकापरिगतकण्ठैर्महावराहदंष्ट्राप्रहारजर्जरैरल्पकायैरपि महाशक्तित्वादनुपजातकेसरैरिव केसरिकि[4]शोरकैर्मृगवधूवैध[5]व्यदीक्षादानदक्षैरनेकवर्णैः श्वभिरतिप्रमाणाभिश्च केसरिणामभयप्रदानयाचनार्थमागताभिः सिंहीभिरिव कौलेयकुटुम्बिनीभिरनुगम्यमानम्, कैश्चिद्गृहीतचमरबालगजदन्तभारैः कैश्चिदच्छिद्र-

थमिति त्रिशूलेन शस्त्रविशेषेणाङ्कितमिव चिह्नितमिव। श्वभिरिति। श्वभिः श्वानैरनुगम्यमानमनुव्रज्यमानम्। शुनो विशेषयन्नाह उपेति। उपजातः समुत्पन्नः परिचयः सांगत्यं यैस्ते तथा तैः। अन्विति। अनु पश्चात् गच्छद्भिः गामिभिः। आवेद्येति। आवेद्यमानोऽन्येभ्यो ज्ञाप्यमानः खेदो विषण्णता यैः। काभिः जिह्वाभी रसनाभिःएता विशिनष्टि—श्रमेति। श्रमवशात्खेदमाहात्म्यान्मुखाद्दूरं विनिर्गताभिर्निःसृताभिः। स्वभावेति। स्वभावो जातिस्वभावस्तेन पाटलतया श्वेतरक्ततया शुष्काभिरपि निर्लेपाभिरपि हरिणशोणितं मृगरुधिरं क्षरन्तीभिरिव स्रवन्तीभिरिव। किं कुर्वद्भिस्तैः। विवृतेति। विवृतं विदीर्णं यन्मुखं तस्य भावस्तत्ता तया सृक्कभागानोष्ठप्रान्तदेशान्। 'दन्तवस्त्रं च तत्प्रान्तौ सृक्किणी' इति कोशः। उद्वहद्भिरुत्प्राबल्येन वहमानैः। तान्विशेषयन्नाह—स्पष्टमिति। स्पष्टं प्रकटं दृष्टा अवलोकिता दन्तांशवो दशनत्विषो येषु ते तथा तान्। किमिव। दंष्ट्रान्तराले दाढामध्ये लग्न्या या केसरिसटा सिंहस्कन्धकेसरा तामिव। स्थूलेति। स्थूला स्थविष्ठा ये वराटकाः कपर्दकास्तेषां मालिका माक्षास्ताभिः परिगतः सहितः कण्ठो येषां ते तथा तैः। महेति। महावराहा वनक्रोडास्तेषां दंष्ट्रा दाढास्तासां प्रहारा अभिघातास्तैर्जर्जरैर्जः शिथिलाङ्गैः। अल्पेति। अल्पकायैः स्वल्पशरीरैरपि महाशक्तित्वात्प्रौढपराक्रमत्वादनुपजातकेसरैरनुत्पन्नसटैः केशरिकिशोरःकैरिव सिंहशावकैरिव। मृगेति। मृगवधूनां हरिणपत्नीनां यद्वैधव्यदीक्षादानं विगतभर्तृकात्वव्रतदानं तत्र दक्षैर्निपुणैः। अनेकेति अनेके बहवो वर्णा रक्तपीतादयो येषु ते

के रक्त का क्षरण कर रही थीं, जिससे उनकी खिन्नता प्रकट हो रही थी इस तरह मुँह खुले रहने से उनके दाँतो की किरणें स्पष्टतया दिखाई पड़ रही थीं और दोनों होठों के किनारे का भाग ऐसा दीख रहा था जैसे उनके जबड़ों के अन्दर केसरी का केसर (कन्धे का बाल) सट गया हो, बड़ी-बड़ी कौड़ियों की माला से उनका गला अलंकृत था, बड़े बड़े सूकरों की दंष्ट्रा के प्रहार से वे जर्जर हो गये थे, शरीर के छोटा होने पर भी महा बलशाली होने के कारण अजात-केसर केसरी के किशोर की भाँति प्रतीत हो रहे थे, मृगों की वधुओं को वैधव्य की दीक्षा देने में वे दक्ष थे, केसरियों को अभय दान की प्रार्थना करने के लिये आई हुई सिंहिनियों की भाँति बड़ी-बड़ी कुत्तियाँ उनके पीछे चल रही थीं, जो विविध प्रकार के वृत्तान्तों वाले शबरों से घिरा हुआ था, जिनमें कुछ चमरके बाल और हाथी के दातों का भार ढो रहे थे,

२ दृष्टदष्टांशून्दन्तान्तराल, ३ सटानिव, ४ किशोरैः, ५ वैधव्यदान,

पर्णबद्धमधुपुटैः कैश्चिन्मृगपतिभिरिव [1]गजकुम्भमुक्ताफलनिकरसनाथपाणिभिः कैश्चिद्यातुधानैरिव गृहीतपिशित[2]भारैः कैश्चित्प्रमथैरिव केसरिकृत्तिधारिभिः कैश्चित्क्षपणकैरिव मयूरपिच्छधा[3]रिभिः कैश्चिच्छिशुभिरिव काकपक्षधरैः कैश्चित्कृष्ण-चरितमिव दर्शयद्भिः समुत्खातविधृतगजदन्तैः कैश्चिज्जलदागमदिवसैरिव जलधरच्छायास[4]लिनाम्बरैरनेकवृत्तान्तैः शबरवृन्दैः परिवृतम्, अरण्यमिव सखड्ग-

---

तथा तैः पुनः काभिः। अतीति। अतिप्रमाणाभिः प्रचण्डाभिः केसरिणां सिंहानामभयप्रदानं जीवरक्षणं तस्य याचना प्रार्थना तदर्थमागताभिः प्राप्ताभिः सिंहीभिरिव कौलेयककुटुम्बिनीभिः श्वानपत्नीभिश्च सहेति भावः। शबरेति। शबरवृन्दैर्भिल्लसमूहैः परिवृतमावेष्टितम्। कीदृशैः। कैश्चिदिति। गृहीताः स्वीकृताश्चमराणा गवयानाम् बालाः केशाः गजानां दन्ताश्च तेषां भारः समूहो यैस्ते तथा तैः। कैश्चिदिति। मृगपतिभिरिव सिंहैरिव गजानां हस्तिनां कुम्भाः शिरः-पिण्डाः तेषां मुक्ताफलानि मौक्तिकानि तेषां निकरः समूहस्तेन सनाथः सहितः पाणिर्येषां ते तथा तैरित्यभङ्गश्लेषः। कैश्चिदिति। यातुधानैरिव राक्षसैरिव गृहीतः पिशितस्य मांसस्य भारो यैस्ते तथा तैः। अत्राप्यभङ्गश्लेषः। कैश्चिदिति। प्रमथैरिव पार्षदैरिव केसरिणां सिंहानां कृत्तयश्चर्माणि धरन्तीत्येवंशीलैस्तद्धारिभिः। कैश्चिदिति। क्षपणकैरिव दिगम्बरैरिव मयूराणां बर्हिणां पिच्छानि छदानि धरन्तीत्येवंशीला धारिणस्तैः। भिल्ला अपि हतमयूरपिच्छधारिणो भवन्तीति श्लेषः। कैश्चिदिति। शिशुभिरिव बालकैरिव काकपक्षः शिखण्डकस्तद्धारिभिः। भिल्लपक्षे काकानां सकृत्प्रजानां पक्षाश्छदास्तद्धारिभिः। कैश्चिदिति। कृष्णचरितं विष्णु-विजृम्भितं दर्शयद्भिः प्रकाशयद्भिरिव पूर्वं समुत्खाताः सम्यक्प्रकारेणोत्पाटिताः पश्चाद्विशेषेण धृता गजदन्ता यैस्ते तथा तैः। कृष्णेनापि बाल्ये गजहननक्षण इत्थमेवाचरितमिति साम्यम्। कैश्चिदिति। जलदस्य मेघस्यागमो येष्वेवंविधैर्दिवसैर्वासरैरिव जलधरो मेघस्तस्य छायातपाभावस्तद्वन्मलिनानि कश्मलान्यम्बराणि वस्त्राणि येषां ते तथा तैः। पक्षे जलधरच्छायया मलिनमम्बरं व्योम येष्विति विग्रहः। अनेकेति। अनेके बहवो वृत्तान्ताश्चरित्राणि येषां ते तथा

कुछ विना छिद्र के पत्तों से निर्मित पुट (दोने) में मधु लिये हुये थे, कुछ शेरों की तरह हाथ में गजकुम्भ से निकाले गये मुक्ताकलाप धारण किये हुये थे, कुछ राक्षसों की भाँति माँस का भार ढो रहे थे, कुछ शंकर के गणों की भाँति व्याघ्र चर्म धारण किये हुये थे, कुछ जैन साधुओं की भाँति मयूर पिच्छ धारण किये हुये थे, कुछ शिशुओं की भाँति काकपक्ष (विशेष प्रकार के बाल, तथा कौवों के डैने) धारण किये हुये थे, कुछ कृष्ण के चरित की झाँकी दिखाते हुये से उखाड़ कर गजदन्त लिये हुये थे, [कृष्ण ने कुवलयापीड नामक हाथी को मारकर उसका दाँत उखाड़ लिया था] कुछ वर्षाकाल के दिन की भाँति बादलों के समान मलिन वस्त्र धारण किये हुये थे तथा दिन जलधर की घटा से मलिन गगन वाला हो गया था, जो अरण्य की भाँति था (अरण्य में गैंडे रहते हैं और उसके पास छोटी तलवार थी) जो नवीन नीरद के

---

१. विभिन्नगजकुम्भ, २. पिशिताहरैः, ३. बर्हिभिः, ४. मलिनैः,

धेनुकम्, अभिनवजलधरमिव मयूरपिच्छचित्रचापधारिणम्, बकराक्षसमिव गृहीतैक-चक्रम्, अरुणानुजमिवोद्धृतानेकमहानागदशनम्, भीष्ममिव शिखण्डिशत्रुम्, निदाघदिवसमिव सतताविर्भूतमृगतृष्णम्, विद्याधरमिव मानसवेगम्, [1]पाराशरमिव योजनगन्धानुसारिणम्, घटोत्कचमिव भीमरूपधारिणम्, अचलराजकन्यकाकेशपाश-

तैः। अरण्येति। अरण्यं वनं तदिव। उभयोः सादृश्यमाह सखड्गेति। खड्गः कौक्षेयको धेनुका कृपाणिका ताभ्यां सह वर्तमानम्। पक्षे खड्गो वार्ध्रीणसः धेनुका बशा ताभ्यां युक्त-मित्यर्थः। अभीति। अभिनवः प्रत्यग्रो यो जलधरो मेघस्तमिव मयूराणां पिच्छानि तद्वच्चित्रं विविधवर्णधारि यच्चापं धनुस्तद्धत्त इत्येवंशीलः स तथा तम्। पक्षे मयूरपिच्छवच्चित्रं चापमिन्द्र-धनुस्तद्धारिणम्। बकेति। बकाभिधानो राक्षसो यातुधानस्तद्वदिव। उभयोः साम्यमाह—गृहीतेति। गृहीतं धृतमेकमद्वितीयं चक्रं येन स तम् पक्षे गृहीता स्वायत्तीकृतैकचक्राभिधाना पुरी येनेति विग्रहः। अरुणेति। अरुणानुजो गरुडस्तद्वदिव। उभयोरैक्यं प्रदर्शयन्नाह—उद्धृ-तेति। उद्धृता उत्पाटिता अनेकेषां महानागानां बहुमहाहस्तिनां दशना दन्ता येन स तथा तम्। पक्ष उद्धृता मुखान्निष्कासिता अनेलमहानागानां महाभोगिनां दशना दन्ता येनेति विग्रहः। भीष्मेति। भीष्मो गाङ्गेयस्तमिव। उभयोः सादृश्यमाह—शिखण्डीति। शिखण्डिनो बर्हिणस्तेषां शत्रुम्। तद्वधकारित्वात्। पक्षे शिखण्डी पाण्डवपक्षीयो वर्षवरस्तस्य शत्रुं विप-क्षम्। निदाघेति। निदाघो ग्रीष्मकालस्तस्य दिवसमिव। उभयोः साम्यमाह–सततेति। सततं निरंतरं वनादाविर्भूता प्रकटीभूता ये मृगा हरिणास्तेषु तृष्णा हननेच्छा यस्य स तम्। पक्ष आविर्भूता प्रकटिता मृगतृष्णा मरीचिका येष्विति विग्रहः। विद्येति। विद्याधरो व्योमगस्तद्व-दिव। उभयोः साम्यार्थमाह—मानसेति। मानेनाहंकारेण सवेगः सर्वदा तीव्रगतिः। पक्षे

समान था (नीरद मयूर पंख के समान सतरंगी इन्द्र धनुष को धारण किये हुये है) जो बक राक्षसके समान था, (वक ने एकचक्रा नामक नगरी को निगृहीत कर रखा था और वह अद्वितीय चक्र नामक अस्त्र धारण किये हुये था) जो गरुड के सदृश था (गरुड ने बड़े-बड़े नागों के विषदन्त उखाड़ लिये थे और इसने विशालहाथियों के दाँत निकाल दिये थे) जो भीष्म के समान था (भीष्म शिखण्डी के शत्रु थे और वह मयूरों का नाशक था) जो गर्मी के दिन की भाँति था (ग्रीष्म के दिन में मृगतृष्णाओं का सतत आविर्भाव होता रहता है और वह मृगों के मारने की तृष्णा की जन्म भूमि है) जो विद्याधरों के समान था (विद्याधरों की गति मानस सरोवर के तट पर थी और इसका वेग मन के समाज तीव्र है) जो पराशर मुनि के समान था (पराशर योजनगन्धा नामकी धीवर कन्या के अनुगामी थे और वह कस्तूरी मृग का अनुसरण करने वाला है) जो घटोत्कच की भांति भीम रूप धारण किये था। (घटोत्कच अपने पिता भीम की आकृति धारण किये हुये था और वह भयङ्कररूप धारण किये हुये था) जो पार्वती के केशपाश के समान था (केशपाशने शंकर की चन्द्रकला को भूषण बना रखा था और वह

१. पराशरम्,

मिव नीलकण्ठचन्द्रकाभरणम्, 'हिरण्याक्षदानवमिव महावराहदंष्ट्राविभिन्नवक्षःस्थलम्, अतिरागिणमिव कृतबहुब²न्दीपरिग्रहम्, पिशिताशनमिव ³रक्तलुब्धकम्, गीतक⁴लाविन्यासमिव निषादानुगतम्, अम्बिकात्रिशूलमिव महिषरुधिरार्द्रकायम्, अभिनव-

---

मानसे मानसाभिधाने सरसि गतिर्गमनं यस्येति विग्रहः। पारेति। पाराशरो व्यासस्तमिव। उभयोः सादृश्यमाह—योजनेति। योजनं गन्धो विद्यते यस्मिन्नित्यर्शआदित्वादच्प्रत्ययः। योजनगन्धः कस्तूरीमृगस्तमनुसरतीत्येवंशीलः स तम्। योजनगन्धा शीतं तमनुसारिणमिति वा। पक्षे 'व्यासमातरि। कस्तूरीशीतयोश्च' इति कोशः। घटेति। घटोत्कचो हिडिम्बासुतस्तमिब। उभयोः सादृश्यमाह भीमेति। भीमं भयकारि यद्रूपं तद्धारिणम्। पक्षे भीमस्य वृकोदरस्य रूपमाकृतिस्तद्धारिणम्। तत्पुत्रत्वात्। अचलेति। अचलराजो हिमाचलस्तस्य कन्यका पार्वती तस्याः केशपाशः केशकलापस्तमिव। उभयोस्तुल्यतामाह—नीलेति। नीलकण्ठो मयूरस्तस्य चन्द्रका मेचकास्तेषामा समन्ताद्भरणं धारणं यस्मिन्स तथा तम्। पक्षे नीलकण्ठो महादेवस्तस्य यश्चन्द्र एव चन्द्रकस्तदेवाभरणं यस्मिन्। अर्धनारीत्वादिति भावः। हिरण्येति। हिरण्याख्यो हिरण्यकशिपुः दानवः दैत्यस्तमिव। उभयोः साम्यं दर्शयन्नाह महेति। महावराहा वनसूकरास्तेषां दंष्ट्रा दाढास्ताभिर्विभिन्नं विहितक्षतं वक्षःस्थलं भुजान्तरं यस्य स तथा तम्। द्वितीयपक्षे भगवता कृष्णेन महावराहरूपमाधाय हिरण्याक्षस्य वक्षःस्थलं विदारितमिति प्रसिद्धिः। अतीति। अतिरागिणमतिरागाभिभूतमतियशोभिलाषुकं तमिव। उभयोस्तुल्यतामाह—कृतेति। कृतो विहितो बहुबन्दीनां ग्रहाणां परि सामस्त्येन ग्रहो येन स तम्। पक्षे कृतो बहुबन्दिनां वैतालिकानां परिग्रहः स्वीकारो येनेति विग्रहः। 'श्लेषे खरो न गण्यते' इति ह्रस्वदीर्घार्थः श्लेषः। पिशितेति। पिशिताशनो मांसभक्षकस्तद्वदिव। उभयोस्तुल्यत्वमाह—रक्तेति। रक्ता अनुरक्ता लुब्धका व्याधा यस्मिन्स तथा तम्। पक्षे रक्ते रुधिरे लुब्ध एव

मयूर के चित्र पंखों की भूषा धारण किये हुये था) जो हिरण्याक्ष दानव के समान था (दानव के वक्षःस्थल को वराह रूप धारी भगवान्‌की तीक्ष्ण दंष्ट्रा ने विदीर्ण कर दिया था और उसका सीना विशालकाय वराहों की दंष्ट्रा से क्षत-विक्षत हो गया था) जो अत्यन्त विषयी व्यक्ति के समान था (विषयी बहुत सी बाँदियों का परितःग्रहण किये रहता है और वह बहुत से वैतालिकों को साथ लिये हुये था), जो मांसभक्षी के समान था (मांसभक्षी रक्त का लोभी होता है और उसमें व्याध अनुरक्त थे) जो गीत की कलाओंके विन्यास सदृश था (गीत कला में निषाद स्वर का प्राधान्य होता है और उसके पीछे निषाद जाति के लोग चल रहे थे) जो जगदम्बिका के त्रिशूल के समान है (त्रिशूल महिषासुर के रक्त से आर्द्र था और उसका शरीर भैंसों के रुधिर से गीला था) [अरण्यमिव से महिष रुधिरार्द्र कायम् तक पूर्णोपमा का भव्य विन्यास है। इसके अनन्तर अभिनवराजसेवानभिज्ञ तक विरोधाभास की छटा दर्शनीय है] जो नवीन यौवन वाला होकर भी

---

१. हिरण्याख्य, २. बन्दि, ३. बहुरक्त, ४. कलाविलास; कलाभिलाष,

यौवनमपि [1]क्षपितबहुवयसम्, कृतसारमेयग्रहमपि फलमूलाशनम्, कृष्णमप्यसुदर्शनम्, स्वच्छन्दचा[3]रमपि दुर्गैकशरणम् क्षितिभृत्पादानुवर्तिनमपि राजसेवानभिज्ञम्, अपत्यमिव [4]विन्ध्याचलस्य, अंशकावतारमिव कृतान्तस्य, सहोदरमिव पापस्य, [5]सारमिव कलिकालस्य, भीषणमपि महासत्त्वतया गम्भीरमिवोपलक्ष्यमाणम्, [6]अभिभवनीयाकृतिं [7]मातङ्गनामानं [8]शबरसेनापतिमपश्यम्। अभिधानं तु [9]पश्चात्तस्याहमश्रौषम्।

लुब्धकः। सस्पृह इत्यर्थः। गीतेति। गीतकला गेयविज्ञानं तस्या विन्यासो रचना तमिव। उभयोः साम्यमाह—निषादेति। निषादा भिल्लास्तैरनुगतं पश्चाद्गतम्। पक्षे निषादस्तन्त्रीकण्ठोद्भवः स्वरः। 'निषादर्षभगान्धार'—इति कोशः। तेनानुगतं सहितम्। अम्बिकेति। अम्बिका भवानी तस्यास्त्रिशूलं शस्त्रविशेषस्तद्वदिव। उभयोः सादृश्यमाह—महिषेति। महिषो रक्ताक्षस्तस्य रुधिरं रक्तं तेनार्द्रः स्विन्नः कायो देहो यस्य स तम्। तदपि तादृशमित्यभङ्गश्लेषः। अभिनवेति। अभिनवं मनोहारि प्रत्यग्रं वा यौवनं तारुण्यं यस्यैवंभूतमपि क्षपितानि बहूनि वयांसि येनेति विरोधः। परिहारपक्षे क्षपिता बहवो वयसः पक्षिणो येनेति विग्रहः। कृतेति। कृतो विहितः सारस्य धनस्य मेयस्य मातुं योग्यस्यान्नादेः संग्रहः स्वीकारो येनैवंभूतमपि फलमूलान्येवाशनं भक्षणं यस्येति विरोधः। परिहारपक्षे कृतः सारमेयाणां कुक्कुराणां संग्रहो येनैवंभूतम्। कृष्णेति। कृष्णं विष्णुमपि सुदर्शनेन रहितमिति विरोधः। परिहारपक्षे कृष्णं श्यामवर्णमत एवासुदर्शनं भीमदर्शनम्। भयोत्पादकत्वादिति भावः। स्वच्छन्देति। स्वच्छन्देन स्वेच्छया चारश्चरणं यस्यैवंभूतमपि दुर्गं कोट्टमेकमद्वितीयं शरणमाश्रयो यस्येति विग्रहः। क्षितिभृदिति। क्षितिभृद्राजा तस्य पादाश्चरणास्तदनुवर्तिनमपि तत्समीपस्थायिनमपि राजसेवा नृपसपर्या तस्या अनभिज्ञमकुशलमिति विरोधः। तत्परिहारपक्षे क्षितिभृत्पर्वतस्तस्य पादाः पर्यन्तपर्वतास्तदनुवर्तिनं तत्र स्थायिनमिति विग्रहः। अपत्येति। विन्ध्याचलस्य जलबालकाद्रेरपत्य-

---

बहुत वय (अवस्था) विता चुका था—विरोध परिहार पक्ष में—बहुत से पक्षियों का वध कर चुका था, जो धन, धान्य का संग्रह करके भी फल मूल का ही भोजन करता था, विरोध परिहार पक्ष में सारमेय कुत्तोंका संग्रह किये हुआ था। जो कृष्ण होने पर भी सुदर्शन चक्र से रहित था सुदर्शन कृष्ण का नियत अस्त्र है। विरोध परिहार पक्षमें कृष्ण (काला) होनेपर भी वह सुन्दर दर्शन से रहित था। जो स्वच्छन्दचारी होने पर भी केवल किले में आश्रय लिये हुये था। विरोध परिहार में एक मात्र दुर्गा की शरण में था जो भूभृत् (राजा) के चरणों का अनुवर्तन करते रहने पर भी राज सेवा में अनभिज्ञ था विरोध परिहार में क्षितिभृत् पर्वतों के प्रत्यन्त देश में घूमता रहता था। [अत्र उत्प्रेक्षा की छटा देखिये] जो मानों विन्ध्य पर्वत की सन्तान था, मानो यमराज का अंशावतार था, मानों पाप का सोदर था, मानो कलिकाल का सार तत्त्व था। जो भयंकर होने पर भी अत्यन्त शक्तिशाली होने के कारण गम्भीर सा दीख पड़ता था, जिसका चेहरा तिरस्कार योग्य था। एवं जिसका नाम मातंग था। नाम तो उसका बाद में मैंने सुना।

---

१. क्षयितपयस्कम्, २. फलाशिनम् ३. प्रचार, ४. विन्ध्यस्य, ५. सारथिम्, ६. अनभिभव, ७. मातङ्गक, ८. सर्वशबर, ९. तस्य पश्चात्,

आसीच्च मे मनसि—'अहो, 'मोहप्रा'यमेतेषां' जीवितं साधुजनग'र्हितं च चरितम्। तथा हि—पुरुषपिशितोपहारे धर्मबुद्धिः, आहारः साधुजनग'र्हितो मधु-मांसादिः, श्रमो मृगया, ६शास्त्रं शिवारुतम्, ७समुपदेष्टारः सदसतां कौशिकाः, प्रज्ञा शकुनिज्ञानम्, परिचिताः श्वानः, राज्यं ८शून्यास्वटवीषु, आपानकमुत्सवः, मित्राणि

मिव प्रसूतिमिव। अंशेति। कृतान्तस्य यमस्यांशावतारमिवैकदेशावतारमिव। सहोदरेति। पापस्यैनसः सहोदरमिव सोदरमिव। सारेति। कलिकालस्य कलियुगस्य सारमिव सर्वस्वमिव। भीषणेति। भीषणमपि भयजनकमपि महच्च तत्सत्त्वं च महासत्त्वं तस्य भावस्तत्ता तया गाम्भीरमिव गाम्भीर्यगुणयुक्तमिवोपलक्ष्यमाणं परिदृश्यमानम्। परैरिति शेषः। अभीति। अभिभवनीया तिरस्करणीयाकृतिराकारो यस्येति स तम्। अन्वयस्तु प्रागेवोक्तः। अभिधानं तु पश्चात्तस्याहमश्रौषं तस्य सेनापतेरभिधानं नामाहं पश्चात्तद्दर्शनामन्तरमश्रौषमाकर्णयम्। अनुचर-मुखादिति शेषः।

आसीच्चेति। मे मम मनसि चित्त आसीद्बभूव। खेद इति शेषः। तदेव दर्शयति—अहो इत्यादिना। अहो इत्याश्चर्येति। एतेषां भिल्लानां जीवितं प्राणितं मोहोऽज्ञानं प्रायः प्रचुरं यत्र तादृशम्। चः पुनरर्थे। चरितमाचरणं साधुजनैः सज्जनजनैर्गर्हितं निन्दितम्। तदेव विशेषतो दर्शयति—तथा हीति। पुरुषेति। पुरुषस्य पुंसो यत्पिशितं मांसं तस्य य उपहारो भगवत्यै नैवेद्यदर्शनं तस्मिन्धर्मबुद्धिः श्रेयोधीः। आहार इति। आहारः प्रत्यवसानं साधुजनैर्गर्हितो निन्दितो मधुमांसादिर्मधु मद्यं माक्षिकं वा। मांसं प्रतीतम्। ते आदौ यस्येति बहुव्रीहिः। आदिशब्दात्कन्दादिपरिग्रहः। श्रम इति। श्रमः शक्तिसाधनायासः। शास्त्रमिति। शिवा शृगाली तस्या रुतं शब्दितं शास्त्रमुच्चस्वरवेदपाठः। प्रबोधजनकत्वसाम्यात्तदुपमानम्। सदिति। सदसतां शुभाशुभानां समुपदेष्टारो बोधकाः कौशिका उलूकाः। प्रज्ञेति। शकुनयः पतत्रिणस्तेषां स्थूलमहत्त्वादिना ज्ञानं तदेव प्रज्ञा विवेकबुद्धिः। परीति। श्वानः सारमेयाः परिचिता विश्वासपात्राणि। राज्यमिति। शून्यासु जनरहितासु अटवीषु विन्ध्याटवीषु राज्यं स्वामित्वम्। आपानकेति। उत्सवः संतुष्टिकार्यं तदेवापानमेवापानकम्। स्वार्थे कः। पान-गोष्ठिका। मित्राणीति। क्रूरं यत्कर्म तत्साधनानि तद्धेतुभूतानि धनूंष्येव चापान्येव मित्राणि

और मेरे मन में विचार आने लगा कि ओह! इनका जीवन किस तरह मोह से परि-पूर्ण है और आचरण सज्जनों से निन्दित। क्योंकि पुरुषों के मांस से बलि देने को ये धर्म समझते हैं, साधुजनों से निन्दित शराब और मांस इनका आहार है, शिकार (हिंसा ही) इनका व्यायाम है, शृगालियों का शब्द ही इनका शास्त्र है, इनके लिये सत् और असत् के शिक्षक कौशिक (उलूक) हैं, पक्षियों की पहचान इनकी विशद बुद्धि है, कुत्तों से परिचय है, सूने जंगल में इनका राज्य है, इनका उत्सव शराब पीना है, क्रूर कर्म के साधन

१. घोर, २. प्राज्य, ३. एषाम्, ४. निर्वाहितम्, ५. निन्दितः; विगर्हितः, ६. शास्त्रे, ७. उपदेष्टारः, ८. शून्याटवीषु,

क्रू[1]रकर्मसाधना[2]नि धनूंषि, सहाया [3]विषदिग्धमुखा भु[4]जंगा इव सायकाः, गीतमुत्साह[5]कारि मुग्धमृगाणाम्, कलत्राणि ब[6]न्दीगृहीताः परयोषितः, क्रूरात्मभिः शार्दूलैः सह संवासः, [7]पशुरुधिरेण देवतार्चनम्, मांसेन बलिकर्म, चौर्येण जीवनम्[8], भूषणानि [9]भुजंगमणयः, [10]वनकरिमदैरङ्गरागः, [11]यस्मिन्नेव कानने निवसन्ति तदेवोत्खातमूलमशेषतः [12]कुर्वते' इतिचिन्तयत्येव[13] मयि [14]शबरसेनापतिरटवीभ्र[15]मणस[16]मुद्भवं श्रममपनिनीषुरागत्य तस्यैव [17]शाल्मलीतरोरधश्छा[18]यायामवतारितकोदण्डस्त्वरितपरिज[19]नोपनीतपल्लवासने समुपाविशत्।

सुहृदः। हितचिन्तकानीति यावत्। सहाया इति। विषेण दिग्धं लिप्तं मुखमाननं येषामेवंविधाः सायका बाणास्त एव सहाया इष्टकार्यकर्तृत्वात्साहाय्यकारिणः। क इव। भुजंगाः सर्पा इव। एतेषां विषदिग्धमुखत्वं स्वाभाविकम्। तेषामौपाधिकमिति भावः। गीतमिति। मुग्धा अनभिज्ञा ये मृगा हरिणास्तेषामुत्साहकारि स्तब्धताविधायि गीतं गानम्। कलत्रेति। परयोषितोऽन्यस्त्रिय एव बन्दी ग्रहस्तद्रूपत्वेन गृहीताः स्वीकृताः कलत्राणि स्वपत्न्यः। क्रूरेति। क्रूरात्मभिर्दुष्टात्मभिः शार्दूलैश्चित्रकैः समं संवासः सहावस्थानम्। पश्चिति। पशवो महिषास्तेषां रुधिरेण रक्तेन देवतार्चनं देवपूजनम्। मांसेनेति। मांसेन पिशितेन बलिर्हन्तकारस्तत्कर्म तत्कृत्यम्। चौर्येणेति। चौर्येण परद्रव्यापहारेण जीवनं प्राणधारणम्। भूषणानीति। भूषणान्याभरणानि भुजंगमणयः सर्परत्नानि। पर्वतवासित्वात्तेषां ते सुलभा इति भावः। वनेति। वनकरिणामरण्यहस्तिनां मदैर्दानवारिभिरङ्गरागो विलेपनम्। यस्मिन्निति। यस्मिन् अनिर्दिष्टनामनि कानने वने निवसन्ति निवासं कुर्वन्ति तदेव काननमशेषतः समग्रत उत्खातमुत्पाटितं मूलं मध्यभागो यस्यैवंभूतं कुर्वते विदधत इति पूर्वोक्तप्रकारेण मयि चिन्तयति ध्यायति सत्येव स शबरसेनापतिस्तस्यैव शाल्मलीतरोरधश्छायायामागत्य। त्वरितेति। त्वरितं शीघ्रं परिजनेन परिच्छदेनोपनीतमानीतं यत्पल्लवासनं किसलयासनं तस्मिन्समुपाविशत्तस्थिवान्। किं कर्तुमिच्छुः। अपनिनीषुः अपनेतुं दूरीकर्तुमिच्छुः। कम्। श्रमं खेदम्। एतदेव

धनुष इनके मित्र हैं, भुजंगों की भाँति विष से बुझे हुये मुख वाले बाण इसके सहायक हैं, भोले भाले हिरनों में उत्साह पैदा करने वाला इनका गान हैं, बन्दी बनाई गई पराई औरतें ही इनकी भार्यायें हैं, क्रूरस्वभाव वाले सिंहों के साथ ही इनका आवास हैं, पशुओं के रक्त से देवता की पूजा, मांस से बलि–वैश्व देव, चोरी से जीवन यापन, सर्पों के मणियों का ही भूषण, जंगली हाथियों के मद से अंगराग तथा जिस वन में रहते हैं उसकी पूर्णतः जड़ खोदना इनका सहज स्वभाव है—इस तरह जब मैं सोच ही रहा था कि शबर सेनापति जंगल में परिभ्रमण करने से उत्पन्न थकान को दूर करने की इच्छा से उसी सेमल पेड़ के नीचे छाया में धनुष को उतार कर परिजनों द्वारा तत्काल लाये गये पल्लवों के आसन पर बैठ गया।

---

१. क्रूरकर्माणि, २. धनं धनूंषि, ३. दग्ध, ४. भुजंगमाः, ५. उत्साद, ६. बन्दि, ७. पशुरुधिरेणैव, ८. जीवितम्, ९. फणामयः, १०. गज, ११. यस्मिन्येव च, १२. कुर्वन्ति, १३. मयि सः, १४. शबरसेनापतिश्च, १५. परिभ्रमण, १६. समुद्भव, १७. शाल्मलि, १८. छायाम्, १९. उपनीते,

[1]अन्यतरस्तु शबरयुवा ससंभ्रममवतीर्य तस्मात्करयुगलपरिक्षोभिताम्भसः सरसो वैडूर्यद्रवानुकारि, प्रलयदिवसकरकिरणोपतापादम्बरैकदेशमिव विलीनम्, इन्दुमण्डलादिव प्रस्यन्दितम्, [2]द्रुतमिव मुक्ताफलनिकरम्, अत्यच्छतया स्पर्शानुमेयं [3]हिमजडम्, अरविन्दकोशरजःकषायमम्भः कमलिनीपत्रपु[4]टेन प्रत्यग्रोद्धृताश्च धौतपङ्कनिर्मला[5] मृणालिकाः समुपाहरत्। आपीत[6]सलिलश्च सेनापतिस्ता मृणालिकाः शशिकला इव सैंहिकेयः क्रमेणादशत्। अपगतश्रमश्चोत्थाय परिपीताम्भसा सकलेन तेन शबरसैन्येनानुगम्यमानः शनैःशनैरभिमतं दिगन्तरमयासीत्।

विशेषयन्नाह-अटवीति। अटव्यां भ्रमणमितस्ततः पर्यटनं तस्मात्समुद्भवं समुत्पन्नम्। सेनापतिं विशेषयन्नाह—अवेति। अवतारितं अनधिज्यं कृतं कोदण्डं धनुर्येन स तथा। तुः पुनरर्थे। अन्यतरः कश्चिदनिर्दिष्टनामा। शबरश्चासौ युवा चेति कर्मधारयः। न तु शबराणां युवेति निर्धारणे षष्ठ्या समासः। 'न निर्धारणे' इति षष्ठ्या सह समासनिषेधात्। ससंभ्रमं सवेगमवतीर्य तदन्तः प्रविश्य तस्मात्पम्पाभिधानात्सरसः कासारात्कमलिनी नलिनी तस्याः पत्रपुटेनाम्भः पानीयं तथा धौतः क्षालितः पङ्कः कर्दमो यासां ता अत एव निर्मला विशदा या मृणालिकाः कमलिन्यस्ताश्च समुपाहरदानीतवानित्यन्वयः। सरो विशिनष्टि। करेति। करयुगलेन हस्तद्वयेन परिक्षोभितं विलोडितमम्भः पानीयं यस्य तत्तथा तस्मात्। अथाम्भो विशेषयन्नाह—वैडूर्येति। वैडूर्यं वालवायजं तस्य द्रवः कल्कस्तदनुकारि तत्सदृशम्। अत्युज्ज्वलवर्णत्वात्तदुपमानम्। प्रलयेति। प्रलयस्य कल्पान्तस्य यो दिवसकरः सूर्यस्तस्य किरणा दीधितयस्तेषामुपतापादुष्णाद्विलीनं क्षरितमम्बरस्याकाशस्यैकदेशमिवैकप्रविभागमिव। इन्दुमण्डलाच्चन्द्रबिम्बात्प्रस्यन्दितं क्षरितमिव। तथा मुक्ताफलस्य रसोद्भवस्य निकरं समूहं द्रुतमिव द्रवोपयुक्तमिव। अत्यच्छतया अतिस्वच्छतया तादृशश्रमेऽपि शीतस्पर्शेनानुमेयमनुमातुं योग्यं

सेनापति के बैठते ही किसी शबर-युवा ने समीपवर्ती पम्पा-सरोवर में सहसा उतर कर अपने दोनों हाथों से उस सर के जल को हिला कर कमल के पत्तों के दोने में हिमशीतल जल को निकाला जो द्रवीभूत वैदूर्य मणि के समान था अथवा प्रलय काल के प्रचण्ड सूर्य के उग्र आतप से पिघल कर विलीन हुये आकाशखण्ड के समान था अथवा चन्द्रमण्डल से चूआ सा था तथा द्रवीभूत मोतियों के पुंज जैसा अत्यन्त निर्मल था जो केवल स्पर्श से ज्ञातव्य था तथा कमल कोष से पराग के गिरने से कसैलापन जिसमें आ गया था और तत्काल निकाले गये तथा खूब साफ धो लेने के कारण अतीव स्वच्छ कमल नाल को उपस्थित किया। सेनापति ने जलपान कर क्रमशः उन मृणालिकाओं को उस तरह खाया जैसे राहु चन्द्रकला को खाता है। थकान दूर होते ही वह उठकर धीरे धीरे अपनी अभिमत दिशा की ओर चल पड़ा और पानी पीकर समस्त सेना उसके पीछे पीछे चल पड़ी।

---

१. अन्यतमः, २. हतम्, ३. जलशिशिरम्, ४. संपुटेन, ५. निर्मल, ६. सलिलः सेनापतिः; सलिलश्च शबरसेनापतिः,

[1]एकतमस्तु जरच्छबरस्तस्मात्पुलिन्दवृन्दादनासादितहरिणपिशितः पिशिताशन इव विकृत[2]दर्शनः पिशितार्थी तस्मिन्नेव [3]तरुतले मुहूर्तमिव व्यलम्बत। अन्तरिते च[4] शबरसेनापतौ स जीर्णशबरः पिबन्निवास्माकमायूंषि रुधिरबिन्दुपाटलया कपिलभ्रू[5]-लतापरिवेषभीषणया दृष्ट्या गणयन्निव शु[6]ककुलकुलायस्थानानि श्येन इव विह[7]-गामिषस्वादलालसः सु[8]चिरमारुरुक्षुस्तं वनस्पतिमामूलादपश्यत्। उत्क्रान्तमिव

हिमेन तुहिनेन जडं स्तब्धतां प्रापितम्। अरविन्दस्य कमलस्य यः कोशः कर्णिकाधारस्तस्य रजः परागस्तेन कषायं तुवरम्। कमलिनीर्विशेषयन्नाह—प्रत्यग्रेति। प्रत्यग्रं तत्कालमुद्धृता उत्खाताः। आपीतेति। आपीतं पानविषयीकृतं सलिलं येनैनंभूतः सेनापतिः सैन्यनायकः। क्रमेण जलपानानन्तरं ता मृणालिका अदशदभक्षयत्। कः कामिव। सैंहिकेयो राहुः स यथा शशिकलाश्चन्द्रकला अश्नाति। अपेति। अपगतो दूरीभूतः श्रमः खेदो यस्य स उत्थायोत्थानं कृत्वा परिपीताम्भसा कृतजलपानेन सकलेन समग्रेण तेन पूर्वोक्तेन शबरसैन्येन भिल्लबलेनानु-गम्यमानः शनैः शनैः कृताखेटकवृत्तित्वेन त्वराभावादभिमतं समीहितम्। एकस्या दिशः सकाशादन्या दिशो दिगन्तरमयासीदगमत्। 'या प्रापणे' इत्यस्य लुङि रूपम्।

एकतमस्त्विवति। तुः पुनरर्थे। एकतमः कश्चिज्जरच्छबरः स्थविरभिल्लस्तस्मात्पुलिन्द-वृन्दाच्छबरसमुदायादनासादितमप्राप्तं हरिणपिशितं मृगमांसं येनैवंभूतः पिशितार्थी मांसार्थी। पिशितेति। पिशितमश्नातीति पिशिताशनो व्याघ्रस्तद्वदिव विकृतं दर्शनं यस्य स तस्मिन्नेव तरुतले पूर्वोक्तवृक्षाध एकमुहूर्तमिव घटिकाद्वयमिव व्यलम्बत तद्गमनानन्तरं विलम्बं चकार। तथा शबरसेनापतौ भिल्लनायकेऽन्तरिते वृक्षादिना व्यवहिते सति स पूर्वोक्तो जीर्णशबरोऽस्माकं पक्षिणामायूंषि जीवितानि पिबन्निव पानं कुर्वन्निव शुकानां कीराणां यानि कुलानि तेषां कुलाया नीडानि तेषां स्थानानि स्थलविशेषाणि गणयन्निव तत्संख्यां कुर्वन्निव। कया। दृष्ट्या। इतो दृष्टिं विशेषयन्नाह—रुधिरेति। रुधिरस्य रक्तस्य यो बिन्दुः पृषत्तद्व-त्पाटलया श्वेतरक्तया। कपिलेति। कपिला पिङ्गला या भ्रूलता तस्याः परिवेषः परिधिस्तेन भीषणया भयकारिण्या। पुनः प्रकारान्तरेण तमेव विशेषयन्नाह—श्येनेति। श्येन इव शशादन इव विहगानां पतत्रिणां यदामिषं मांसं तस्यास्वादो भक्षणं तत्र लालसो लम्पटस्तं वनस्पतिं शाल्मलीवृक्षमारुरुक्षुरारोढुमिच्छुः सुचिरं चिरकालं यावत्। आ मूलान्मूलं मर्यादीकृत्यामूलं

किन्तु उस भीलमण्डली से एक बूढ़ा शबर जो राक्षस की भाँति भयंकर तथा मांस का लोभी था तथा जिसे शबर-समुदाय से हिरन का मांस प्राप्त नहीं हो सका था—उसी पेड़ के नीचे क्षण भर के लिये ठहर गया। शबर सेनापति के आँखों से ओझल होते ही वह बूढ़ा शबर हम लोगों की आयु को पीता हुआ सा रक्त की बूँद जैसी लाल एवं पीली भौहों के घेरे से भीषण दृष्टि से शुक समूह के घोसलों को गिनता हुआ सा तथा बाजपक्षी की भाँति पक्षियों के मांस खाने की लालसा से बड़ी देर तक उस पेड़ पर चढ़ने की इच्छा से जड़ से शाखा तक

१. एकतरः, २. अतिविकृतदर्शनस्तस्मिन्नेव, ३. तरुमूले, ४. च तस्मिन्, ५. भ्रुवा परिवेष, ६. शुककुलाय, ७. विहङ्गा, ८. सुरुचिर,

तस्मिन्क्षणे 'तदालोकनभीतानां शुककुलानामसुभिः। किमिव हि दुष्करमकरुणानाम्। यतः स तमनेकतालतुङ्गमभ्रंकषशाखाशिखरमपि सोपानैरिवायत्नेनैव पादपमारुह्य[2] ताननुपजातोत्पतनशक्तीन्कांश्चिदल्पदिवसजातान्गर्भच्छविपाटलाञ्छाल्मली[3] कुसुमशङ्कामुपजनयतः, कांश्चिदुद्भिद्यमानपक्षतया नलिन[4] संवर्तिकानुकारिणः, कांश्चिदर्कफलसदृशान्, कांश्चिल्लोहितायमानचञ्चुकोटीनीषद्विघटितदलपुटपाटलमुखानां कमल-

---

तस्मात्प्रान्तपर्यन्तमपश्यद्व्यलोकयत। उत्क्रान्तमिवेति। तस्मिन्क्षणे तस्मिन्प्रस्तावे तस्य यदालोकनं वीक्षणं तेन भीतानां भयप्राप्तानां शुककुलानामसुभिः प्राणैरुत्क्रान्तमिव हि निर्गतमिव। हीति। हि यस्मात्कारणादकरुणानां निर्दयानां किमिव दुष्करम्। न किमपीत्यर्थः। सर्वमेवा कृत्यं कुर्वन्तीति भावः। यतः स भिल्लस्तं पादपमनेके ताला वृक्षविशेषास्तद्वत्तुङ्गमुच्चम्। अभ्रमिति। अभ्रंकषमभ्रंलिहं शाखानां शिखरं प्रान्तो यस्यैवंभूतमप्ययत्नेनैव प्रयासव्यतिरेकेणैव सोपानैरिवारोहणैरिवारुह्यारोहणं कृत्वा तस्य वनस्पतेः शाखान्तरेभ्यश्च शुकशावकानेकैकं प्रत्येकं तस्य भावस्तत्ता तया फलानीव सस्यानीव तानग्रहीदादत्तेत्यन्वयः। इतः शुकशिशून्विशेषयन्नाह— अनिवति। अनुपजातानुत्पन्नोत्पतनशक्तिर्नभोगमनसामर्थ्यं येषां ते तथा तान्। कांश्चिदिति। अल्पदिवसजातान्स्वल्पदिनप्रभवान्। गर्भेति। प्रत्यग्रोत्पन्नस्य गर्भस्य या छविः कान्तिस्तया पाटलाञ्श्वेतरक्तान्। किं कुर्वतः। उपजनयत उत्पादयतः। काम्। शाल्मलीवृक्षस्य यानि कुसुमानि पुष्पाणि तेषां शङ्कामारेकाम्। तत्कुसुमानामपि श्वेतरक्तत्वादेतेषां च तथात्वादुपमानोपमेयभावः। कांश्चिदिति। उद्भिद्यमानाः प्रादुर्भूयमाना ये पक्षास्तेषां भावस्तत्ता तया नलिनानां कमलानां संवर्तिका नवदलम्। 'संवर्तिका स्यान्नवदलम्' इति कोशः। अनेनातिनैर्मल्यं द्योत्यते। तदनुकारिणस्तत्सादृश्यभाजः। कांश्चिदिति। अर्को मन्दारस्तस्य फलानि तैः सदृशांस्तत्तुल्यान्। कांश्चिदिति। लोहितायमाना रक्तायमानाश्चञ्चूनां त्रोटीनां कोट्यः अग्रभागा येषां ते तथा तान्। कांश्चित्किं कुर्वतः। श्रियं शोभामुद्वहत उत्प्राबल्येन धारयन्तः। केषाम्। कमलमुकुलानां नलिनकुड्मलानाम्। कीदृशानाम्। ईषत्किंचिद्विघटितं विकसितं यद्दलपुटं तेन

देखता रहा उस समय उसके क्रूर आलोकन से डरे हुये तोतों के प्राण पखेरू उड़ से गये। क्रूर लोगों के लिये क्या दुष्कर है ? क्योंकि वह अनेक ताड़ों की उँचाई वाले तथा अपनी डालों के अग्रभागसे आकाश को चूमने वाले भी उस वनस्पति पर अनायास सीढ़ियों से मानों चढ़ गया और उन शुकशावकों को पकड़ लिया जो उड़ने की शक्ति से रहित थे। कुछ तो थोड़े ही दिन पहले उत्पन्न होने के कारण गर्भ की छवि से पाटल थे एवं सेमल के फूल का सन्देह उत्पन्न कर रहे थे। कुछ के डैने निकल रहे थे उनसे वे कमल के केसर की कोमल संवर्तिका (नई पत्तियों) का अनुकरण कर रहे थे, कुछ मदार के फूल के सदृश हो रहे थे, कुछ की चोंच धीरे-धीरे लाल होने लग गई थी जिससे वे किंचिद् उत्फुल्ल अतएव अरुण पत्रपुटों से विरा-

---

१. आलोकभीतानाम्। २. अधिरुह्य, ३. शाल्मलि, ४. नलिनी,

मुकुलानां श्रियमुद्वहतः[1], कांश्चिदनवरतशिरःकम्पव्याजेन निवारयत[2] इव प्रतीकारासमर्थानेकैकतया[3] फलानीव तस्य वनस्पतेः शाखान्तरेभ्यश्च[4] शुकशावकानग्रहीत्। अपगतासूंश्च कृत्वा क्षितावपातयत्।

तातस्तु तं महान्तमकाण्ड[5] एव प्राणहरमप्रतीकारमुपप्लवमुपनतमालोक्य[6] द्विगुणतरोपजातवेपथुर्मरणभयादुद्भ्रान्ततर[7]लतारको[8] विषादशून्यामश्रुजलप्लुतां दृशमितस्ततो दिक्षु विक्षिपन्, उच्छुष्कतालुरात्मप्रतीकाराक्षमस्त्राससस्तसंधिशिथिलेन

पाटलं श्वेतरक्तं मुखं येषां तानि तथा तेषाम्। पुनः शिशून्विशिनष्टि—अनेति। अनवरतं निरन्तरं यः शिरःकम्पस्तस्य व्याजो मिषं तेन निवारयत इव 'वयं बालकाः, अस्मासु दया कर्तव्या, मास्माञ्जहि, इति निवारणां कुर्वंत इव। कीदृशान्। प्रतीकारो वधनिवृत्त्युपायस्तत्रासमर्थान्सामर्थ्यवर्जितान्। अपेति। अपगता असवः प्राणा येषामेवंविधांस्तान्कृत्वा विधाय क्षितौ भूमावपातयदचिक्षिपत्।

तातस्तु मत्पिता तु मां क्रोडविभागेनोत्सङ्गप्रदेशेनावष्टभ्यालम्बनीकृत्य तस्थौ तस्थिवानित्यन्वयः। तथा महान्तं महीयसमकाण्ड एवाप्रस्ताव एव प्राणहरं जीवितनाशकृतं अप्रतीकारमचिकित्समुपप्लवमुपद्रवमुपनतं प्राप्तमालोक्य निरीक्ष्य। अथ तत्पितरं विशेषयन्नाह—द्विगुणतरेति। द्विगुणतरः पूर्वस्माद्द्विगुणित उपजातः समुत्पन्नो वेपथुः कम्पो यस्य स तथा। मरणेति। मरणभयान्मृत्युत्रासादुद्भ्रान्ता अतिशयेन भ्रमितास्तरलाश्चञ्चलास्तारकाः कनीनिका यस्य सः। किं कुर्वन्। दृशं दृष्टिमितस्ततः समन्ततो दिक्षु ककुप्सु विक्षिपन्विस्तारयन्। दृशं विशिनष्टि—विषादेति। विषादेन शोकेन शून्यां निस्तेजसम्। अश्विवति। अश्रुजलेन नेत्राम्बुना प्लुतां प्लावितम्। उदिति। उत्प्राबल्येन शुष्कमनार्द्रं तालु काकुदं यस्य स तथा। आत्मनः स्वस्य यः प्रतीकारो दुःखनिवृत्त्युपायस्तत्राक्षमोऽसमर्थः। किं कृत्वा। पक्षपुटेन छदपुटेन मामाच्छाद्य तिरोधाय। किं कुर्वाणः। मन्यमानो जानानः। किं। तत्कालोचितं तत्समययोग्यम्। इदमेव प्रतीकारमुपायम्। पक्षसंपुटं विशेषयन्नाह—त्रासेति। त्रासेन भयेन

जमान कमल के कोरकों की शोभा धारण कर रहे थे तथा प्रतीकार करने में असमर्थ कुछ निरन्तर होने वाले सिर के कम्पन के बहाने उसे रोक से रहे थे—ऐसे उन्हें एक-एक करके उस पेड़ के फल की तरह डालों के भीतर से निकाल लिया। और उन्हें मार-मार कर धरती पर गिरा दिया।

पिताजी तो असमय में ही महान् प्राण नाशक विप्लव को आया हुआ देखकर—जिसका कि प्रतिकार कर सकना सम्भव नहीं था, दूने वेग से काँपने लगे तथा मौत के भय से जिनकी चंचल पुतलियाँ भय से उद्भ्रान्त हो रही थीं उन आँसुओं से उतविल दृष्टि को इधर-उधर सभी दिशाओं में फेंकने लगे। उनका तालु सूख गया, वे आत्मरक्षा के उपाय में असमर्थ हो रहे थे, अत्यन्त त्रास से सन्धियों के ढीले हो जाने वाले अपने पक्षपुटों से मुझे ढक कर

१. उद्वहन्तः, २. निवारयन्तः, ३. ……नेकैकशः, ४. शाखासंधिभ्यः कोटरान्तरेभ्यश्च; शाखान्तरेभ्यः कोटरान्तरेभ्यश्च, ५ अतिमहान्तमकाण्ड इव, ६ अवलोक्य, ७ तरलतर, ८ तारकान्; तारकाम्,

पक्ष[1]संपुटेनाच्छाद्य[2] मां तत्कालोचितं[3] प्रतीकारं मन्यमानः स्नेहपरवशो मद्रक्षणाकुलः[4] किंकर्तव्यताविमूढः[5] क्रोडविभागेन[6] मामवष्टभ्य तस्थौ। असावपि पापः[7] शाखान्तरैः संचरमाणः कोटरद्वारमागत्य जीर्णासितभुजंगभोगभीषणं प्रसार्य विविधवनवराह-वसाविस्र[8]गन्धिकरतलं कोदण्ड[9]गुणाकर्षणव्रणाङ्कितप्रकोष्ठमन्तकदण्डानुकारिणं वाम-बाहुमतिनृशंसो मुहुर्मुहुर्दत्तचञ्चुप्रहारमुत्कूजन्तमाकृष्य[10] तातं गतासुम[11]करोत्। मां तु स्वल्पत्वा[12]द्भयसंपिण्डिताङ्गत्वात्सावशेषत्वाच्चायुषः[13] कथमपि पक्षसंपुटान्तर[14]गतं

स्रस्ता विदीर्णा ये संधयोऽस्थिबन्धास्तैः शिथिलेन श्लथेन स्नेहेन प्रीत्या परवशः परायत्तो मम यद्रक्षणं गुप्तिस्तत्राकुलः संभ्रान्तः। किमिदानीं कर्त्तव्यं विधेयमित्यस्य भावः किंकर्तव्यता तत्र विमूढो भ्रष्टमतिः। असावपीति। असौ जरच्छबरोऽपि पापः पापिष्ठः शाखान्तरैः शालान्तरैः संचरणमाणः प्रवर्तमानः कोटरद्वारं निष्कुहद्वारमागत्येत्य तातं मत्पितरं गतासुं विगत-प्राणमकरोदसृजदित्यन्वयः। किं कृत्वा। प्रसार्य विस्तार्य। कम्। वामबाहुं सव्यभुजम्। अथैनं विशेषयन्नाह—जीर्णेति। जीर्णो जरीयानसितः कृष्णो यो भुजंगः सर्पस्तस्य भोगः कायस्त-द्वद्भीषणं भयजनकम्। विविधेति। विविधा अनेके ये वनवराहा अरण्यक्रोडास्तेषां वसा स्नायुस्तया विस्रगन्ध्यामगन्धि करतलं हस्ततलं यस्य स तथा तम्। कोदण्डेति। कोदण्डस्य धनुषो ये गुणाः प्रत्यञ्चास्तेषामाकर्षणमाक्षेपस्तेन व्रणं किणं तेनाङ्कितश्चिह्नितः प्रकोष्ठः कलाचिका यस्य स तम्। अन्तकेति। अन्तकस्य यमस्य यो दण्डो लगुडस्तदनुकारिणम्। तत्सादृश्यधारिणमित्यर्थः। कीदृक्सः। अतिनृशंसोऽतिक्रूरः। कीदृशं तातम्। मुहुरिति। मुहुर्मुहुर्वारंवारं दत्तश्चञ्चुप्रहारस्त्रोटीप्रघातो येन स तथा तम्। किं कुर्वन्तम्। उत्प्राबल्येन कूजन्तं शब्दं कुर्वन्तम्। किं कृत्वा। आकृष्य। कोटराद्बहिरानीयेति शेषः। मां तु वैशम्पायनं कथमपि महता कष्टेन पक्षसंपुटान्तरगतं नालक्षयन्न ज्ञातवान्। अत्र हेतुमाह—स्वल्पत्वा-दित्यादि। स्वल्पत्वादत्यल्पत्वाद्भयसंपिण्डिताङ्गत्वात्त्राससंकुचिताङ्गत्वादायुषो जीवितव्यस्याव-

तात्कालिक बचाव समझते हुए स्नेह से परवश वे मेरी रक्षा के लिये व्याकुल थे। किंकर्तव्य विमूढ होकर वे मुझे अपने अंक में जकड़कर स्थित हो गये। ठीक इसी समय वह महापापी भी दूसरी डालों से संचार करता हुआ मेरे कोटर के द्वार पर आ गया और अपने, बायें हाथ को—जो पुराने काले नाग की काया के समान भीषण था, अनेक जंगली सूकरों की चर्बी से दुर्गन्ध-पूर्ण हथेली वाला था, धनुष की डोरी खींचने के कारण जिसकी कलाई घाव के चिह्नों से युक्त थी एवं जो यमदण्डका अनुकरण कर रहा था—पसार कर उस क्रूर कर्मा ने बारम्बार चोंच से प्रहार करने वाले तथा जोर-जोर से चीखते पिता जी को खींच कर मार डाला। लेकिन अत्यन्त छोटा होने से डर के मारे सिकुड़े हुये अंगों के कारण और आयुके सावशेष रहने से पिताजी के डैने के भीतर छिपे हुये मुझे वह देख

१ पक्षपुटेन, २ आच्छाद्य तत्कालोचितम्, ३ उचित, ४ मद्रक्षाकुलः, ५ मूढः, ६ भागेन, ७ पापः क्रमेण, ८ विमिश्र, ९ अनवरतकोदण्ड, १० उत्कूजन्तं तमाकृष्य, ११ अपगतासुम्, १२ स्वल्पशरीरत्वात्, १३ अवशेषत्वादायुषः, १४ तत्पक्षपुटान्तर,

नालक्षयत्। उपरतं[1] च तम[2]वनितले शिथिलशिरोधरमधोमुखममुञ्चत्। अहमपि तच्चरणान्तरे[3] निवेशित[4]शिरोधरो निभृतमङ्क[5]निलीनस्तेनैव सहापतम्। अवशिष्ट[6]-पुण्यतया तु पवनवश्येन[7] पुञ्जितस्य महतः शुष्कपत्रराशे[8]रुपरि पतितमा[9]त्मानम-पश्यम्। अङ्गानि येन[10] मे नाशीर्यन्त[11]। यावच्चासौ तस्मात्तरुशिखरान्नावतरति तावदहमवशीर्ण[12]पत्रसवर्णत्वादस्फुटोपलक्ष्यमाणमूर्तिः पितरमुपरतमुत्सृज्य नृशंस इव प्राणपरित्यागयोग्येऽपि काले बालतया[13] कालान्तरभुवः स्नेहरसस्यानभिज्ञो जन्म-

शेषेणोद्धरितभागेन सह वर्तमानत्वात्। उपेति। उपरतं मृतं तं पितरमवनितले पृथ्वीतले शिथिला श्लथा शिरोधरा कन्धरा यस्य स तमधोमुखमवाङ्मुखममुञ्चदचिक्षिपत्। अहमपि तस्य पितुश्चरणान्तरे क्रमणमध्ये निवेशिता स्थापिता शिरोधरा ग्रीवा येन सः। निभृतमत्यर्थमङ्क उत्सङ्गे निलीनो लग्नः। यथा पितुर्देहाच्छिन्नतया नोपलभ्यते तथा स्थित इत्यर्थः। तेनैव जनकेनैव सहापतम् अधःसंयोगफलिकां क्रियामकरवम्। 'पत्लृ पतने' इत्यस्य लुङि रूपम्। अवेति। अवशिष्टमुर्वरितं यत्पुण्यं श्रेयस्तस्य भावस्तत्ता तया। पवनेति। पवनः समीरणस्तस्य वश्यस्तदायत्तता तेन पुञ्जितस्य पिण्डितस्य महतो महीयसः शुष्कपत्रराशेः शुष्काणि वानानि यानि पर्णानि पत्राणि तेषां राशिः समुदायस्तस्योपरि पतितं स्वस्तमात्मानं स्वमपश्यमद्राक्षम्। येनेति। येन पुण्येन, शुष्कपत्रराश्युपरिपातेन वा मे ममाङ्गानि नाशीर्यन्त न विगलितानि। यावच्चासौ शबरो यावता कालेन तस्मात् तरुशिखराद्वृक्षाग्रान्नावतरति नोत्तरति तावदहम-वशीर्णानि विगलितानि यानि पत्राणि तैः सवर्णः सदृशस्तस्य भावस्तत्त्वं तस्मादस्फुटमप्रकट-मुपलक्ष्यमाणा दृश्यमाना मूर्तिराकृतिर्यस्यैवंभूतोऽहमतिमहतोऽत्युच्चस्य तमालविटपिनस्ता-पिच्छस्य मूलदेशं बुध्नप्रदेशमविशं प्रविष्टवानित्यन्वयः। उपेति। उपरतं व्यापन्नं पितर-मुत्सृज्य त्यक्त्वा। क इव। नृशंस इव क्रूर इव प्राणपरित्यागे योग्य उचितस्तस्मिन्वृद्धपितुर्मरणे मरणमेवोचितमिति योग्यता तस्मिन्नपि काले समये सति बालतयार्भकत्वेन कालान्तरेऽप्रबुद्धवयो-वस्थाविशेषे शयनासनभोजनादिषु यः स्नेहस्तद्विषयको रसस्तस्यानभिज्ञस्तदज्ञाता। किं

न सका। पिताजी को मर जाने पर—जब उनकी गरदन ढीली पड़ गई और मुंह नीचे की ओर लटक गया धरती पर गिरा दिया। मैं भी उनके पैरों के भीतर अपनी गरदन डाल देने के कारण चुपचाप उनकी गोद में छिपा हुआ उनके ही साथ गिर पड़ा। कुछ पुण्य के अव-शिष्ट रहने से पवन के झोंके से एकत्रित महान् शुष्क पत्र पुंज पर मैंने अपने आपको गिरा हुआ देखा। जिस कारण मेरे अंग छिन्न-भिन्न नहीं हुये। जब तक वह दुरात्मा उस पेड़ की चोटी से नहीं उतरा तब तक गिरे हुए पत्तों के समान रंग होने से स्पष्टतया स्वरूप के अलगाव न रहने के कारण मैं मरे हुए पिता जी को अत्यन्त कृतघ्न की भाँति छोड़कर प्राण छोड़ देने योग्य भी कुसमय में बचपन के कारण कालान्तर में होने वाले स्नेह के आनन्द

१ उपरतमेनम्, २ तातम्, ३ अन्तराले, ४ प्रवेशितः, ५ अङ्कदेश; अङ्कविलीन, ६ आयुषोऽवशिष्टतया, ७ पवनवशसंपुञ्जितस्य; पवनवशात्पुञ्जितस्य, ८ पर्णराशेः, ९ निपतितम्, १० मे येन, ११ नावाशीर्यन्त, १२ पर्ण, १३ बालकतया,

सहभुवा भयेनैव केवलमभिभूयमानः किंचिदुपजाताभ्यां पक्षाभ्यामीषत्कृतावष्टम्भो[1] लुठन्नितस्ततः कृतान्तमुखकुहरादिव विनिर्गतमात्मानं मन्यमानो नातिदूरवर्तिनः शबरसुन्दरीकर्णपूररचनोपयुक्तपल्लवस्य संकर्षणपटनीलच्छाय[2]योपहसत इव गदाधरदेहच्छविम्[3], अच्छैः कालिन्दीजलच्छेदैरिव विरचितच्छदस्य, वनकरिमदो[4]पसिक्तकिसलयस्य, विन्ध्याटवीकेशपाशश्रियमुद्वहतः[5], दिवाप्यन्धकारितशाखान्तरस्य, अप्रविष्टसूर्यकिरणमतिगहनमपरस्येव पितुरुत्सङ्गमतिमहतस्तमालविटपिनो मूलदेशमविशम् ।

क्रियमाणः । जन्मेति । जन्मसहभुवा उत्पत्तिसमयादारभ्य समुत्पन्नेन भयेनैव भियेव केवलं सर्वतोभिभूयमानः पीड्यमानः । पुनः कीदृक् । किंचिदिति । किंचिदीषदुपजाताभ्यां निष्पन्नाभ्यां पक्षाभ्यां छदाभ्यामीषत्कृतोऽवष्टम्भ आधार आश्रयो यस्य स तथा । किं कुर्वन् । लुठन्नितस्ततो भूमौ पतन् । कृतान्तेति । कृतान्तो यमस्तस्य मुखमिव मुखं यस्यैवंभूतात्कुहरात्सुषिराद्विनिर्गतं निःसृतमात्मानं स्वं मन्यमानो ज्ञायमानः । अथ तमालं विशेषयन्नाह—नातीति । न प्रतिषेधे । अतिदूरवर्ती दविष्ठप्रदेशस्थायी तस्य । शबरेति । शबराणां भिल्लानां सुन्दर्यः स्त्रियस्तासां कर्णपूराणि कर्णाभरणानि तेषां रचना विनिर्मितिस्तत्रोपयुक्ताः सोपयोगिनः पल्लवा यस्य स तथा तस्य । संकर्षणेति । संकर्षणो बलभद्रः । 'संकर्षणः प्रियमधुर्बलरौहिणेयौ' इति कोषः । तस्य पटो वस्त्रं तस्य नीला छाया कान्तिस्तया, गदाधरो विष्णुस्तस्य देहच्छविं शरीरदीप्तिमुपहसत इवोपहासं कुर्वत इव । अच्छैरिति । अच्छैर्निर्मलैः कालिन्दी यमुना तस्या जलं पानीयं तस्य छेदाः खण्डानि तैरिव विरचितानि निर्मितानि छदानि पत्राणि यस्य स तथा तस्य । वनेति । वनकरिणामरण्यहस्तिनां मदा दानानि तैरुपसिक्तानि सिञ्चितानि किसलयानि यस्य स तथा तस्य । विन्ध्येति । विन्ध्याटवी दण्डकारण्यं तस्याः केशपाशः केशकलापस्तस्य श्रियं शोभामुत्प्राबल्येन वहतो दधतः ।

से अनभिज्ञ केवल जन्मजात भय से अभिभूत होता हुआ थोड़े से निकले हुये डैनों से किंचित् अवलम्ब लेकर इधर-उधर गिरता-पड़ता हुआ सा अपने को काल के मुह से निकला हुआ समझने लगा और समीप ही विद्यमान अतिशय विशाल तमालतरु की जड़ में घुस गया जिसके पल्लव शबर सुन्दरियों के कर्णपूर बनाने के उपयुक्त थे, जिसकी छाया बलराम के नील वस्त्र के समान होने से नारायण की श्यामल देह कान्ति का उपहास कर रही थी, जिसके पत्ते यमुना के श्याम जल बिन्दुओं से मानो निर्मित थे, जिसके किसलय जंगली हाथियों के मदजल से सिक्त थे, जो विन्ध्याटवी के केशपाश की शोभा को धारण किये हुए था, दिन में भी जिसकी शाखाओं का अन्तराल अन्धकार से आवृत था जहाँ सूर्य की रश्मियों का प्रवेश वारित था ऐसे अत्यन्त गहन वह तमाल का मूल प्रदेश था जो द्वितीय पिता की गोद के समान ही मेरा रक्षक था ।

---

१ कृतगमनावष्टम्भः, २ नीलच्छायम्; नीलदलच्छायया; नीलया छायया, ३ गदाधरच्छविम् ४ मदसलिलैरिवोपसिक्त; मदसलिलैरिव संसिक्त, ५ उद्वहन्तः,

अवतीर्य[1] च स तेन समयेन क्षितितलविप्रकीर्णा[2]न्संहृत्य शुक[3]शिशूनेकलतापाशसंयतानाबध्य[4] पर्णपुटेऽतित्वरितगमनः सेनापतिगतेनैव वर्त्मना तामेव दिशमगच्छत्[5]। मां तु लब्धजीविताशं प्रत्यग्रपितृमरणशोकशुष्कहृदयमतिदूरपातादायासित[6]शरीरं संत्रासजाता[7] सर्वाङ्गोपतापिनी बलवती पिपासा परवशमकरोत्। अनया च कालकलया सुदूरमतिक्रान्तः[8] स पापकृदिति परिकलय्य किंचिदुन्नमितकन्धरो भयचकितया दृशा दिशोऽवलोक्य[9] तृणेऽपि चलति पुनः प्रतिनिवृत्त इति तमेव पदे पदे पापकारिणमुत्प्रेक्षमाणो निष्क्रम्य तस्मात्तमालतरुतलमूला[10]त्सलिलसमीपं सर्तु[11] प्रयत्नमकरवम्।

दिवापीति। दिवापि दिवसेऽपि अन्धकारितं जातान्धकारं शाखान्तरं शालान्तरं यस्य स तथा तस्य। कीदृशं मूलदेशम्। अप्रविष्टेति। अप्रविष्टा नान्तर्गताः सूर्यस्य रवेः किरणा यस्मिन्स तम्। अतीति। अतिशयेन गहनमपर्याप्तावकाशन्। कस्येव। अपरस्येव भिन्नस्येव पितुरभयदातुरुत्सङ्गक्रोडम् अवेति। अवतीर्योत्तीर्य स शबरस्तेन समयेनेति तत्कालेन क्षितितले पृथ्वीतले विप्रकीर्णानितस्ततः पर्यस्तान्शुकशिशून्कीरपाकान्संहृत्यैकीकृत्य। कीदृशान्। एकाद्वितीया या लता बल्ली तल्लक्षणो यः पाशो बन्धनरज्जुस्तेन संयतान्बद्धानेवंभूतान्पर्णपुट आबध्य बन्धनं कृत्वातित्वरितमतिशीघ्रं गमनं यस्य स तथा। सेनेति। येन सेनापतिर्गतस्तेनैव वर्त्मना मार्गेण तामेव दिशं सेनापतिगृहीतामेव ककुभमगच्छदगमत्। मांत्विति। तु पुनरर्थे। मां पिपासा तृट् परवशं परायत्तमकरोदित्यन्वयः। इतो मां विशेषयन्नाह—लब्धेति। तद्गमनादेव लब्धा प्राप्ता जीविताशा प्राणधारणसंभावना येन स तम्। प्रत्यग्रेति। प्रत्यग्रो नवीनो यः पितृमरणशोको जनकमृत्युविषादस्तेन शुष्कमनार्द्रं संकुचितं वा हृदयं चित्तं यस्य स तम्। अतीति। अतिदूरपाताद्विप्रकृष्टतरप्रदेशपतनात्। तद्वृक्षादिति शेषः। आयासितं परिश्रमितं शरीरं यस्य स तम्। तृषं विशेषयन्नाह—संत्रासेति। संत्रासेन भयेन जाता समुत्पन्ना। सर्वेति। सर्वाणि समग्राण्यङ्गानि हस्तप्रभृतीन्युपतापयति पीडयतीत्येवंशीला बलवती बलोपयुक्ता। अनयेति। अनया कालकलया

उसी समय उस शबर ने पेड़ से उतर कर भूमि पर बिखरे हुये तोतों के बच्चों को एकत्र कर पत्रपुट में उन्हें रख दिया और लता की एक रस्सी से उस गठ्ठर को बाँध कर बड़ी तीव्र-गति से उसी दिशा की ओर चल दिया जिस दिशा की राह से शबर सेनापति गया था। अब मुझे अपने जीवन की आशा हो गयी थी, पर पिता के सद्यः मरण के शोक से मेरा हृदय सूख गया था एवं अत्यन्त उँचाई से गिरने के आयास से शरीर श्रान्त हो गया था। फलतः संत्रास से उत्पन्न सभी अंगों को सन्तप्त करने वाली प्रबल प्यास से मैं परवश हो गया। इतनी देर में वह पापी काफी दूर निकल गया होगा—ऐसा सोचकर मैंने थोड़ी सी गरदन ऊपर उठायी और भय से चकित दृष्टि से सभी दिशाओं को देखने लगा। तिनके के भी हिलने पर पुनः वह वापस आ गया ऐसी सम्भावना मुझे पद-पद पर होने लगी, फिर भी मैं उस तमालतरु के मूलदेश से निकल कर जल के पास पहुँचने का प्रयास करने लगा।

---

१. अवतीर्य सः, २. विकीर्णान्, ३. तान्शुक, ४. आविध्य, ५. अन्वगच्छत्, ६. पातायासित, ७. जातत्रेपथुम्; जातसर्वाङ्ग, ८. आक्रान्तः, ९. विलोक्य, १०. तरुतलमूलात्, ११. उपसर्तुम्,

अजातपक्षतया[1] नातिस्थिरतरचरण[2]संचारस्य मुहुर्मुहुर्मुखेन[3] पततो मुहुस्तिर्यङ्निपतन्तमात्मानमेकया पक्षपाल्या संधारयतः क्षितितलसंसर्पण[4]श्रमातुरस्यानभ्यासवशादेकमपि दत्वा पदमनवरतमुन्मुखस्य स्थूलस्थूलं[5] श्वसतो[6] धूलिधूसरस्य संसर्पतो मम[7] समभून्मनसि—'अतिकष्टा[8]स्ववस्थास्वपि जीवितनिरपेक्षा[9] न भवन्ति खलु जगति प्राणिनां[10] प्रवृत्तयः[11]। नास्ति जीवितादन्यदभिमततरमिह जगति सर्वजन्तूनाम्[12], एवमुपरते[13]ऽपि

घटिकाया स पापकृत्क्लिल्लः सुदूरं दूरदेशमतिक्रांतो गत इति परिकलय्य चेतसि परिकलनां कृत्वा। किंचिदिति। किंचिदीषदुन्नमितोर्ध्वीकृता कन्धरा ग्रीवा येन स तथा। भयेति। भयेन भीत्या चकिता त्रस्ता या दृक्तया दिशोऽवलोक्य निरीक्ष्य तृणेऽपि यवसेऽपि चलति कम्पति सति पुनः प्रतिनिवृत्तः प्रत्यागत इति तमेव शबरमेव पदे पदे पापकारिणं कल्मषकारिणमुत्प्रेक्षमाण उत्पश्यमानो निष्क्रम्य बहिर्निर्गत्य। कस्मात्। तस्मात्तमालतरुतलमूलात्तापिच्छवृक्षाधःस्थलात्सलिलसमीपं जलोपान्तं सर्तुं गन्तुं प्रयत्नं प्रयासमकरवमकार्षम्।

अथ च मम मनस्येवमभूदित्यन्वयः। तं विशेषयन्नाह—अजातेति। अजातावनुत्पन्नौ यौ पक्षौ छदौ तयोर्भावस्तत्ता तया न विद्यतेऽतिस्थिरतरश्चरणयोः क्रमयोः संचारः स्थापनयोग्यता यस्य स तथा तस्य। किं कुर्वतः। मुहुर्मुहुर्वारंवारं मुखेनानेन पततः पतनं कुर्वतः। मुहुर्वारंवारं तिर्यक्तिरश्चीनं निपतन्तं भ्रश्यन्तमात्मानमेकया केवलया पक्षपाल्या छदसंहत्या संधारयतः पतनाद्रक्षां विदधतः। क्षितीति। क्षितितले संसर्पणं गमनं तस्माद्यो श्रमो भ्रान्तिस्तेनातुरस्य पीडितस्य। अभ्यासेति। अभ्यासः पुनः पुनः करणं तदभाववशादेकमपि पदं चरणं दत्वा निवेश्यानवरतं बहुकालमुन्मुखस्योर्ध्वाननस्य स्थूलस्थूलं यथा स्यात्तथा श्वसतः श्वासमोक्षणं कुर्वतः। एतेनैकपदस्थापनेऽपि श्रमबाहुल्यं व्यज्यते। धूली रेणुस्तया धूसरस्य धूम्रवर्णस्य। किं कुर्वतः। संसर्पतः प्रचलतः। चिन्तां विवृणोति। ममेति। मम मनस्येवं समभूत्। तदेव दर्शयति—खल्विति। खलु निश्चयेन जगति लोकेऽतिकष्टमतिकृच्छ्रं यास्वेवंविधास्ववस्थासु दशासु प्राणिनां जीवानां प्रवृत्तयः प्रवर्तनरूपाः क्रिया जीवितं प्राणितं तत्र निरपेक्षा गतस्पृहा न भवन्ति

अजात-पक्ष होने के कारण मेरे पद-संचार में अधिक स्थिरता नहीं आ सकी थी, बार-बार मैं मुह के बल लुढक जाता था तथा एक ओर टेढ़ा होकर गिरते समय दूसरी ओर के डैने से अपने को सँभाल लेता था। धरती पर रेंग कर चलने के परिश्रम से मैं विह्वल हो गया और अभ्यास न रहने से एक भी कदम आगे बढ़कर सदैव ऊपर मुह उठाये लम्बी-लम्बी साँस छोड़ने लगता। लोट-पोट कर चलने के कारण मेरा शरीर धूलि से धूसर हो गया। उस समय मेरे मन में विचार आने लगा कि संसार में प्राणियों की प्रवृत्तियाँ अत्यन्त कष्टपूर्ण अवस्थाओं में भी जीवन से निःस्पृह नहीं होती। इस संसार में सभी जीवों को जीवन से बढ़कर दूसरा कुछ भी प्रिय नहीं होता। अतएव जिसका नाम वात्सल्य के प्रसंग में सदैव

---

१. अजातपक्षतया च; अनुपजातपक्षतया, २. स्थिरचरण, ३. अधोमुखेनापततः, ४. श्रमा, ५. मुहुर्मुहुः स्थूलस्थूलम्, ६. निश्वसतः। ७. ममाभूत्, ८. अप्यवस्थासु, ९. स्वजीवित, १०. सर्वप्राणिनाम्, ११. वृत्तयः १२. जन्तूनामेव, १३. उपरते सुगृहीत,

सुगृहीतनाम्नि ताते यदहमविकलेन्द्रियः पुनरेव प्राणिमि। धिङ्मामकरुणमतिनिष्ठुरम[1]-कृतज्ञम्। अहो सोढपितृमरण[2]शोकदारुणं येन मया जीव्यते, उपकृतमपि नापेक्ष्यते[3], खलं हि खलु मे हृदयम्। मया[4] हि लोकान्तरगतायाम[5]म्बायां नियम्य शोकवेगमा[6]प्रसवदिवसात्परिणतवयसापि सता[7] तैस्तैरुपायैः संवर्धनक्लेशमतिमहान्त[8]मपि स्नेहवशादगणयता यत्तातेन[9] परिपालितस्तत्सर्वमेकपदे विस्मृतम्[10]। अतिकृपणाः खल्वमी प्राणाः[11], यदुपकारिणमपि तातं[12] क्वापि गच्छन्तमद्यापि नानुगच्छन्ति, सर्वथा[13] न कंचिन्न[14] खलीकरोति जीविततृष्णा, यदी[15]दृगवस्थमपि माम[16]यमायासयति[17] जलाभि-

न स्युः। इह जगत्यस्मिल्लोके सर्वजन्तूनामेव सर्वप्राणिनामेव जीवितादन्यत्किमप्यभिमततरं वाञ्छिततरं नास्ति। तत्रार्थे हेतुमाह—यदहमिति। यद्यस्मात्कारणात्सुगृहीतं सर्वदा ग्रहणयोग्यं नाम यस्यैवम्भूते ताते पितर्युपरतेऽपि मृतेऽप्यविकलानि विषयग्रहणासमर्थानीन्द्रियाणि यस्यैवंभूतोऽहं पुनरेव सांप्रतमेव प्राणिमि जीवामि। अतो मां धिगस्तु। अत्र धिग्योगे मामिति द्वितीया। मां विशेषयन्नाह—अकरुणेति। अकरुणम्। निर्घृणमित्यर्थः। अतिनिष्ठुरमतिक्रूरम्। कृतं जानातीति कृतज्ञं न कृतज्ञमकृतज्ञम्। अहो इति। अहो आश्चर्ये। सोढः क्षमितो यः पितृमरणशोकस्तेन दारुणं भीषणं यथा स्यात्तथा मया जीव्यते तेन बहुकालमुपकृतं तदपि नापेक्ष्यते। तस्याप्यपेक्षा न क्रियत इति भावः। खल्विति। खलु निश्चयेन। मे मम हृदयं चित्तं खलं पिशुनम्। उपकारानभिज्ञत्वादिति भावः। मयेति। हि निश्चितम्। मया तत्पूर्वोक्तं सर्वमखिलमेकपद एकदैव विस्मृतमित्यन्वयः। तत्किमित्यत आह—लोकान्तरेति। लोकान्तरगतायां परलोकप्राप्तायामम्बायां जनन्यां शोकवेगं शोचनप्रवाहं नियम्य निरुध्य प्रसवदिवसान्मज्जन्मदिनादारभ्य परिणतं वयो यस्यैवंभूतेनापि सता तैस्तैरुपायैः क्षुधानिद्रापिपासोपशमार्थप्रतीकारैः। संवर्धनक्लेशमिति। स्नेहवशात्पुत्रप्रीतिमाहात्म्यात् अतिमहान्तमतिप्रत्यायतमपि मत्संवर्धनक्लेशमगणयता क्लेशेषु तद्गणनामकुर्वता। यदिति हेत्वर्थे। तातेन पित्रा परि-

लिया जाता है ऐसे पिताजी के निधन हो जाने पर भी मेरी इन्द्रियाँ अविकल हैं और फिर भी मैं जी रहा हूँ। ऐसे अकरुण, अत्यन्त निष्ठुर तथा कृतघ्न मुझको धिक्कार है। ओफ़, पिताजी के मरण का दारुण शोक सहकर भी जो मैं जी रहा हूँ, उनके किये हुये उपकारों की याद भी नहीं कर पा रहा हूँ। अवश्य ही मेरा हृदय अत्यन्त खल है। मेरी मां के मर जाने पर अपने शोकावेग को रोक कर मेरे जन्मकाल से ही बूढ़ा होने पर भी पिताजी ने अनिर्वचनीय उपायों से मेरे संवर्धन के महान् क्लेश को भी जिस स्नेह से बिना गिने मेरा परिरक्षण किया—उसे मैं एक साथ ही भुला बैठा। निश्चय ही ये प्राण अत्यन्त कृपण हैं क्योंकि उपकारी भी

१. अतिनिष्ठुरं विशेष, २. मरणम्, ३. नापेक्षते, ४. अहम्, ५. लोकान्तरमुपगतायाम्, ६ शोकावेग, ७ सता तातेन तैस्तैः, ८ महान्त, ९ यत्परिपालितः, १० विस्मृतमिति, ११ मे प्राणाः, मम प्राणाः, १२ तातमद्यापि गच्छन्तम्; तातमद्यापि क्वापि गच्छन्तम्; तातमद्य क्वापि यान्तम्, १३ सर्वथा कंचिन्न, १४ कंचन, १५ यदीदृशावस्थम्, १६ मामावासयति, १७ अभिलाषयति,

लाषः। मन्ये चागगितपितृमरणशोकस्य निर्घृणतैव[1] केवलमियं मम सलिलपानबुद्धिः। अद्यापि दूर[2] एव सर[3]स्तीरम्। तथा हि—जलदेवतानूपु[4]ररवानुकारि दूरेऽद्यापि कलहंसविरु[5]तमेतत्। अस्फुटानि[6] श्रूयन्ते सारसरसितानि। विप्र[7]कर्षादाशामुखविसर्पणविरलः संचरति नलिनीखण्डपरिमलः। दिव[8]सस्येयं क[9]ष्टा दशा वर्तते। तथा हि—रविरम्बरतलमध्यवर्ती स्फुरन्तमातपमनवरतमनलधूलिनिकरमिव विकिरति करैः,

---

सामस्त्येन पालितो वृद्धिं प्रापितः। खलु निश्चयेन। अमी मे प्राणा अतिकृपणा अतिशयेन जीवितलोलुपा अतितुच्छाः। यदिति हेतौ। उपकारिणमप्युपकृतिविधायकमपि तातं पितरं क्वाप्यनिर्दिष्टस्थले गच्छन्तं व्रजन्तमद्यापि सांप्रतमपि नानुगच्छन्ति नानुव्रजन्ति। सर्वथा जीविततृष्णा न कंचिन्न खलीकरोति। 'द्वौ नञौ प्रकृतमर्थं सूचयत' इति सर्वमेव खलीकरोतीत्यर्थः। यदीदृगवस्थमपि शोकाकुलमपि मामयं जलाभिलाषः पानीयग्रहणाध्यवसाय आयासयति खेदं जनयति। च पुनरर्थे। अहं मन्ये जाने। इयं मम सलिलपानबुद्धिर्जलपानधीः केवलं निर्घृणतैवाननुकम्पितैव। कीदृशस्य मम। अगणितेति। अगणितो न गणनविषयीकृतः पितृमरणशोको येन स तथा तस्य। अद्यापीयतागतेनापि सरस्तीरं कासारतटं दूर एव। तदेव दर्शयति—तथा हीति। जलेति। जलदेवतानां जलाधिष्ठात्रीणां नूपुराणां पादकटकानां यो रवः शब्दस्तदनुकारि तत्सादृश्यभाज्यद्यापि कलहंसविरुतं कादम्बकूजितमेतद्दूरे। तथा सारसरसितानि लक्ष्मणकूजितान्यस्फुटान्यव्यक्तानि श्रूयन्त आकर्ण्यन्ते। विप्रकर्षादिति। विप्रकर्षाद्दूरादाशामुखेषु दिग्वदनेषु विसर्पणं प्रसरणं तेन विरलो न्यूनो नलिनीखण्डपरिमलः कमलवनामोदः संचरतीतस्ततः प्रसरति। कदाचिद्दारुणघर्माभावे मार्गसौलभ्याद्दूरेऽपि गन्तुं शक्यत इत्यत आह—दिवसेति। दिवसस्य वासरस्येयं प्रत्यक्षोपलभ्यमाना कष्टा दशा मध्यावस्था वर्तते। तदेव दर्शयति—तथा हीति। रविः सूर्योऽम्बरतलमध्यवर्ती व्योममध्यगामी। अनवरतेति। अनवरतमविच्छिन्नं स्फुरन्तं दीप्यमानमातपं प्रकाशमनलधूलिनिकरमिव वह्निकणिकासमूहमिव करैः किरणैर्विकिरति क्षिपति। अधिकां तृषां पिपासामुपजनयति निष्पादयति।

पिता के किसी अज्ञात लोक में जाते समय उनके पीछे-पीछे आज भी नहीं जाते। जिन्दगी का लोभ किसे नहीं पूर्ण खल बना देता ? क्योंकि इस अवस्था में भी मुझे जल की अभिलाषा परेशान किये हुये है। मालूम होता है कि पिता की मृत्यु के शोक को कुछ भी न समझना ही इस समय मेरे पानी पीने की चेतना की क्रूरता है। अब भी सरोवर का तट दूर ही है। क्यों कि जलदेवता के नूपुरों की ध्वनि के अनुकरण करने वाले कलहंसों का विराव अब भी काफी दूर है। सारसों का बोलना साफ साफ नहीं सुनाई पड़ रहा है। कमल वन का यह परिमल दूर होने के कारण दिशाओं के अन्तराल में पसर जाने से अल्पमात्रा में फैल रहा है। दिन की भी यह अवस्था (दुपहरी) कष्ट कारक है। क्यों कि आकाश के मध्य में रहने

---

१ निर्घृणतयेव। २ दूरतः, ३ सरः, ४ नूपुरानुकारि, ५ विरुतमेतम्, ६ एतानि चास्फुटानि, ७. विप्रकर्षात्, ८. चेयम्, ९. अतिकष्टा दशा; कष्टा च,

अधिकामुपजनयति तृषाम्[1]। संतप्त[2]पांसुपटलदुर्गमा भूः[3]। अतिप्रबलपिपासावसन्नानि गन्तुमल्पमपि मे नालमङ्गकानि। अप्रभुरस्या[4]त्मनः। सीदति मे हृदयम्। अन्धकारतामुपयाति चक्षुः। अपि नाम खलो विधिरनिच्छतोऽपि मे मरणम[5]द्यैवोपपादयेत्।

एवं[6] चिन्तयत्येव मयि तस्मात्सरसो नातिदू[7]रवर्तिनि तपोवने जाबालिर्नाम महातपा मुनिः प्र[8]तिवसति स्म। तत्तनयश्च हारीतनामा मु[9]निकुमारकः सनत्कुमार इव सर्वविद्यावदातचेताः, स[10]वयोभिरपरैस्तपोधनकु[11]मारकैरनुगम्यमानस्तेनैव पथा द्वितीय

संतप्तमुष्णं यत्पांसुपटलं धूलिसमूहस्तेन दुर्गमा दुःखेन गन्तुं शक्या भूः पृथ्वी। अतीति। अतिप्रबलाऽत्यधिका या पिपासोदन्या तयावसन्नानि खिन्नानि मे ममाङ्गकानि शरीरावयवा अल्पमपि स्वल्पमपि गन्तुं नालं न समर्थानि। किं बहुनात्मनो देहेन्द्रियसंघातस्याप्यप्रभुरसमर्थोऽस्मि। 'अस भुवि' धातुः। लडुत्तमैकवचनम्। देहेन्द्रियादिकमपि स्वाधीनं मे नास्तीति भावः मे मम हृदयं सीदत्यवशीर्यते। चक्षुरपि नेत्रमप्यन्धकारतां तिमिरतामुपयाति प्राप्नोति। अन्धकाराकुलं भवतीत्यर्थः। नामेति कोमलामन्त्रणे। अथेत्यानन्तर्ये। खलः अशुभकरणाद् दुर्जनो विधिर्विधातानिच्छतोऽप्यसमीहमानस्यापि मे मम मरणं मृत्युमुपपादयेत्कुर्यात्।

इत्येवं पूर्वोक्तप्रकारेण मयि चिन्तयत्येव विचारयत्येव यद्भूत्तदाह—तस्मादिति। तस्मात्पूर्वोक्तात्सरसोऽदूरवर्तिनि निकटस्थायिनि तपोवने तापसाधिष्ठितकानने। नामेति कोमलामन्त्रणे। जाबालिनामा महदत्युग्रं तपो यस्यैवंभूतो मुनिर्ऋषिः प्रतिवसति स्म। निवासं कृतवानित्यर्थः। तत्तनयश्चेति। तस्य तनयः सुतः। चः पुनरर्थे। हारीत इति नाम यस्यैवंविधः मुनिकुमारकः तापसकुमारकः। स्वल्पवया इत्यर्थः। तदेव पूर्वोक्तं पम्पाभिधानं कमलसरः सिस्नासुः स्नातुमिच्छुः। सन्नन्तस्नाधातो रूपम्। तत्रोपागमदित्यन्वयः। तमेव विशेषयन्नाह—सनत्कुमारेति। सनत्कुमारो वैधात्रस्तद्वदिव सर्वविद्यास्ववदातं शुद्धं चेतो मनो यस्य सः। सवयोभिरिति। सवयोभिः सदृशवयोभिरपरैस्तद्भिन्नैस्तपोधनकुमारकैस्तापसशावैरनुगम्यमानस्तेनैव पथा तेनैव मार्गेण। उपागमदिति पूर्वेणान्वयः। द्वितीय इवैतद्भिन्न इव

वाला सूर्य अग्नि की चिनगारियों के समान चमचमाती हुई धूप करों (हाथ-किरणों) से बिखेर रहा है। प्यास को और तीव्र बनाये जा रहा है। अत्यन्त उष्ण धूल कणों के कारण मार्ग दुर्गम हो गया है। अतीव तीव्र प्यास के कारण अवसन्न मेरे कोमल अंग थोड़ा भी चल सकने में समर्थ नहीं रहे। मैं अब अपने वश में नहीं हूँ। मेरा हृदय सीदित है। आँखों के सामने अँधेरा छा गया है। अच्छा होता कि मेरे न चाहने पर भी क्रूर कृतान्त आज ही मेरा अन्त कर देता।

इस तरह मैं सोच ही रहा था कि उस सरोवर के समीप वाले तपोवन में जाबालि नामक महान् तपस्वी मुनि निवास करते थे; जिनके लड़के हारीत नाम के मुनि कुमार अन्यान्य समवयस्क मुनिकुमारों से अनुगत होकर उसी राह से कमलवन से अलंकृत उस सरोवर में स्नान करने की इच्छा से आ पहुँचे। वे हारीत सनत्कुमार के समान सभी विद्याओं के कारण उज्ज्वल

---

१. तृषम्, २. आतपस्पर्शसंतप्त, ३. च भूमिः, ४. अलमप्रभुरस्मि, ५. अथ, ६. एव, ७. अतिदूर, ८. प्रवसति; ९. तापसकुमारकः, १०. समानवयोभिः; समवयोभिः; ११. कुमारैः;

इव भगवान्विभावसुरतितेजस्वितया दुर्निरीक्ष्यमूर्तिः, उद्यतो दिवसकरमण्डलादिवोत्कीर्णः, तडिद्भिरिव र[1]चितावयवः, तप्तकनकद्रवेणेव बहिरुपलिप्तमूर्तिः, पिश[2]ङ्गावदातया देहप्रभया स्फुरन्त्या सबालातपमिव दिवसं सदावानलमिव वनमुपदर्शयन्, उत्तप्तलोहलोहिनीनामनेकतीर्थाभिषेकपूतानामंसस्थलावलम्बिनीनां ज[3]टानां निकरेणोपेतः, स्तम्भितशिखाकलापः खाण्डववनदिधक्षया कृतकपटब[4]टुवेष इव भगवान्पावकः, तपोवनदेवतानूपुरानुकारिणा धर्मशासनकटकेनेव स्फाटिकेनाक्षवलयेन दक्षिणश्रवण-

भगवाञ्ज्ञानवान्विभावसुरग्निरत्युत्कृष्टं तेजो विद्यते यस्यासाविति तेजस्वी तस्य भावस्तत्ता तया दुर्निरीक्ष्या दुःखेनावलोकयितुं शक्या मूर्तिर्यस्य स तथा। उद्यत इति। उद्यत उदयं कुर्वतो दिवसकरमण्डलात्सूर्यबिम्बादित्र। उत्कीर्ण उल्लिख्य कर्षित इत्यर्थः। तडिद्भिरैरावतीभिरिव रचिता निर्मिता अवयवा यस्य सः। तप्त इति। तप्त उष्णो यः कनकस्य सुवर्णस्य द्रवो रसस्तेन बहिरुपलिप्ता लिम्पिता मूर्तिः शरीरं यस्य सः। पिशङ्गेति। पिशङ्गा पीतावदाता निर्मला एवंविधया स्फुरन्त्या दीप्यमानया देहप्रभया शरीरकान्त्या सहबालातपेन वर्तमानं दिवसं दिनमिव सहदावानलेन वर्तमानं वनं काननमिवोपदर्शयन्प्रकाशयन्। उत्तप्तेति। उत्तप्तमुष्णीकृतं यल्लोहं कालायसं तद्वल्लोहिनीनां रक्तानामनेकानि यानि तीर्थानि तेषामभिषेकः स्नानं तेन पूतानां पवित्राणाम्। अंसेति। अंसस्थलं भुजशिरःस्थानं तत्रावलम्बिनीनां वेल्लन्तीनां जटानां निकरेण समूहेनोपेतः सहितः। स्तम्भितेति। स्तम्भितो बद्धः शिखाकलापो येन स तथा। खाण्डवेति। वह्निना जलोदरग्रस्तेन ब्राह्मणरूपेण शय्यागतेन खाण्डववनं दग्धमिति प्रसिद्धिः। दग्धुमिच्छा दिधक्षा तया कृतो विहितः कपटेन पटुः स्पष्टो वेषो येनैवंभूत इव भगवान्पावको वह्निः। तपोवनेति। स्फाटिकेन स्फटिकमणिनिर्मितेनाक्षवलयेनाक्षमालिकया विराजमानः शोभमानः। अक्षवलयं विशेषयन्नाह–दक्षिणेति। दक्षिणोऽपसव्यो यः श्रवणः कर्णस्तत्रावलम्बिना। तपोवनेति। तपोवनदेवता तपोवनाधिष्ठात्री तस्य नूपुरं पादकटकं तदनुकारिणा तत्सदृशेन। केनेव। धर्मो विधिनिषेधादिरूपस्तस्य शासनमाज्ञा तस्य कटकेनेव वलयेनेव। सकलविषयस्य समग्रपदार्थस्य य उपभोगः परिभोगस्तस्मान्निवृत्तिरुपरमस्तदर्थ

हृदय के थे, अत्यन्त तेज के कारण उनकी आकृति दुर्निरीक्ष्य थी, मालूम होता था कि द्वितीय भगवान् अग्नि देव ही आ गये हों। ऐसा लगता था कि उगते हुये सूर्य-मण्डल से खोदकर निकाले गये हों, मानो विजलियों से उनके अंगों का निर्माण हुआ हो, मालूम होता था कि तपाये हुये सोने के द्रव से उनके शरीर के बाहरी भाग पर लेपन किया गया है, पीत और गौर वर्ण की चमकीली शरीर की कान्ति से मालूम होता था कि मानो बालातप के साथ दिन का दर्शन हो रहा हो एवं दावानल से युक्त वन दिखाई पड़ रहा हो, वे तपाये हुये लौह के सदृश लाल तथा बहुत से तीर्थों में अभिषेक करने से पावन एवं कन्धे पर लटकने वाले जटा-जूट से विभूषित थे, मालूम होता था कि लपटों को समेटे हुये भगवान् अग्नि ही खाण्डव वन को जला डालने की इच्छा से मानो कपट पूर्वक ब्रह्मचारी का वेष धारण करके

१. विरचिता; २. आपिशङ्ग; ३. जटावलीनाम्; ४. पटुवेषः,

विल[1]म्बिना विराजमानः, सकलविषयोपभोगनि[2]वृत्त्यर्थमु[3]पपादितेन ललाटपट्टके[4]त्रि[5]-सत्येनेव भस्मत्रिपुण्ड्रकेणालंकृतः, गगनगमनोन्मुखबलाकानुकारिणा [6]स्वर्गमार्गमिव दर्शयता सततमुद्ग्रीवेण [7]स्फटिकमणिकमण्डलुनाध्यासितवामकरतलः, स्कन्धदेशावलम्बिना कृष्णाजिनेन नील[8]पाण्डुभासा तपस्तृष्णानिपीतेनान्तर्निष्प[9]तता धूमपटलेनेव परीतमूर्तिः, [10]अभिनवबिससूत्रनिर्मितेनेव परिलघुतया पवनलोलेन निर्मांसविरलपा[11]र्श्वकप[12]-ञ्जरमिव गणयता वामांसावलम्बिना यज्ञोपवीतेनोद्भासमानः, देवतार्चनार्थमागृहीत-

तन्निमित्तमुपपादितेन विहितेन। ललाटेति। ललाटपट्टकेऽलिकफलके मनोवाक्कायलक्षणेन त्रिसत्येनेव भस्मत्रिपुण्ड्रकेन विभूतित्रितिलकेनालंकृतो विभूषितः। गगनेति। गगनगमने उन्मुखा ऊर्ध्वानना या बलाका बिसकण्ठिका तदनुकारिणा तत्सदृशेन स्वर्गमार्गमिव त्रिदिवस्यपन्थानमिव दर्शयता प्रकाशयता सततं निरन्तरमुद्ग्रीवेणोर्ध्वकन्धरेणैवंभूतेन स्फटिकमणिकमण्डलुना स्फटिककुण्डिकयाध्यासितमाश्रितं वामकरतलं यस्य सः। स्कन्धेति। कृष्णाजिनेन कृष्णचर्मणा परीता व्याप्ता मूर्तिर्यस्य स तथा। केनेव। धूमपटलेनेव दहनकेतनसमूहेन। कीदृशेन। तपो मे भवत्विति तपस्तृष्णा तया निपीतेनेव। कीदृशेन। अन्तः शरीराभ्यन्तरे निपतता प्रवेशं कुर्वता। कीदृशेन चर्मणा। स्कन्धदेशेऽवलम्बत इत्येवंशीलं तत्तेन नीला पाण्ड्वी च भा यस्य तत्तेन। अभीति। यज्ञोपवीतेन यज्ञसूत्रेणोत्प्राबल्येन भासमानो दीप्यमानः। केनेव। अभिनवं प्रत्यग्रं यद्बिससूत्रं कमलनालतन्तुस्तेन निर्मितेनेव रचितेनेव परिलघुतया परि सामस्त्येन स्वल्पतयाणुतया पवनेन समीरणेन लोलेन चपलेन। किं कुर्वता। निर्मांसं पलरहितं विरलमसंकीर्णं यत्पार्श्वकपञ्जरं पार्श्वगतास्थिसमुदायमिव गणयता तत्संख्यां कुर्वता। यज्ञोपवीतं विशिनष्टि—वाम इति। वामः सव्यो योंऽसः स्कन्धस्तदवलम्बिना तदवस्थानशीलेन। अथ मुनिं विशेषयन्नाह—देवतेति। देवतार्चनार्थं परमेश्वरपूजार्थमा समन्तादृगृही-

आ गये हों, तपोवन की अधिष्ठात्री देवी के नुपुरों का अनुकरण करने वाली धर्म के शासनवलय के समान स्फटिक मणि की माला उनके दायें कान में लटक रही थी, समग्र विषयों के उपभोग से निवृत्ति के लिये भालतल पर किये गये विभूति के त्रिपुण्ड से जो मनो, वाक् और काय से सम्बद्ध अथवा त्रिकाल में एक समान रहने वाले सत्य के समान प्रतीत होता था-अलंकृत था, उनके बायें हाथ में स्फटिक मणि का कमण्डलु विराज रहा था जो आकाश में गमन करने के लिये उन्मुख पंक्तिबद्ध बक का अनुकरण कर रहा था एवं स्वर्ग के मार्ग को दिखाने के लिये मानो अनवरत ऊपर ग्रीवा किये हुये हो। कन्धे पर लटकने वाले, नील और पाण्डु वर्ण के कृष्ण मृगचर्म से उनका शरीर आवृत था मृगचर्म मालूम पड़ता था कि तप की तृष्णा से पीकर बाहर निकाला जाता हुआ धूम-पुंज हो, वे बायें कन्धे पर लटकने वाले यज्ञोपवीत के उन सूत्रों से सुशोभित हो रहे थे—जो (सूत्र) नये-नये ताजे मृणाल तन्तुओं से मानो बनाये गये थे, अत्यन्त सूक्ष्म

१. अनुलम्बिना, २. निवृत्ति, ३. उत्पादितेन, ४. पट्टे, ५. त्रिसत्यकेन, ६. अनुकारिस्वर्ग, ७. स्फाटिककमण्डलुना, ८. लीलया, ९. अपगच्छता; निष्पतता, १०. अभिनवबिस, ११. पार्श्वं, १२. अस्थिपञ्जर; आपञ्जर,

वनलताकुसुम[1]परिपूर्णपर्णपुटसनाथशिखरेणाषाढदण्डेन व्यापृतसव्येतरपाणिः, विषा[2]-णोत्खातामुद्वहता स्नानमृदमुपजातपरिचयेन नीवारमुष्टिसंवर्धितेन कुशकुसुमलतायास्य[3]-मानलोलदृष्टिना तपोवनमृगेणानुयातः[4], विटप इव कोमलव[5]ल्कलावृतशरीरः, गिरिरिव समेखलः, राहुरिवासकृदास्वादितसोमः, पद्मनिकर इव दिव[6]सकरमरीचिपः, नदीतट-

तान्यात्तानि वनलताकुसुमान्यरण्यव्रततिपुष्पाणि तैः परिपूर्णं भृतं यत्पर्णपुटं तेन सनाथं सहितं शिखरप्रान्तं यस्यैवंभूतेनाषाढदण्डेन व्यापृतो व्यापारयुक्तः सव्येतरो दक्षिणः पाणिर्हस्तो यस्य स तथा। तपोवनेति। तपोवनसंबन्धी यो मृगो हरिणः। जात्येकवचनम्। तेनानुयातोऽनुगतः। किं कुर्वता मृगेण। विषाणं शृङ्गं तेनोत्खातामुत्खनितां स्नानमृदमाप्लवमृत्स्नामुद्वहता धारयता। मृगं विशेषयन्नाह—उपेति। उपजातः समुत्पन्नः परिचयः संबन्धविशेषो मुनिभिः सार्धं यस्य स तथा तेन। नीवारेति। नीवारो वनव्रीहिस्तस्य मुष्टिः प्रसिद्धा तया संवर्धितेन वृद्धिं प्रापितेन। कुशेति। कुशा दर्भाः, कुसुमानि पुष्पाणि, लता व्रतत्यः, ताभिरायास्यमाना खेदं प्राप्यमाणात एव लोला चपला दृष्टिर्यस्य स तेन। प्रकारान्तरेण मुनिपुत्रं विशिनष्टि—विटप इति। विटपो वृक्षस्तद्वदिव। उभयोः सादृश्यमाह—कोमलेति। कोमलं सुकुमारं यद्वल्कलं चोचं तेनावृतमाच्छादितं शरीरं यस्य स तथा। अस्यापि मुनित्वेन वल्कलधारित्वात्साम्यम्। गिरिरिवेति। गिरिः पर्वतस्तद्वदिव। उभयोः साम्यमाह—समेखल इति। सह मेखलया मौञ्ज्या वर्तते यः स तथा। पक्षे मेखलाद्रेर्मध्यभागस्तया सह वर्तमान इत्यर्थः। राहुरिवेति। राहुः सैंहिकेयस्तद्वदिव। एतयोः साम्यमाह—असकृदिति। असकृन्निरन्तरमास्वादितः सोमो ज्योतिष्टोमयागसाधनद्रव्यं येन स तथा। एतेनात्यन्तसोमयज्ञकारित्वं सूचितम्। पक्षेऽसकृद्बहुबारमास्वादितो ग्रस्तः सोमश्चन्द्रो येनेति विग्रहः। पद्मेति। पद्मानां

होने के कारण वे पवन से हिलाये जा रहे थे एवं लगता था कि उनकी मांसरहित विरल पसलियों को गिन रहे थे। उनके दाहिने हाथ में पलाश का दण्ड व्यापारवान् था जिसके अग्रभाग में देवता की अर्चना के लिये जंगली लताओं से चुने गये पुष्पों से परिपूर्ण पत्रपुट सुशोभित हो रहा था, उनके पीछे-पीछे तपोवन का मृग चल रहा था जो स्नान के लिये सींग से खोदी गई मृत्तिका को लिये हुये था, जिससे पूरा परिचय हो चुका था, वन्य धान्य की मूठों से जो संवर्धित था तथा कुश, कुसुम और लताओं से जिसकी दृष्टि आयासपूर्ण एवं चंचल थी। पूर्णोपमा का प्रकरण शुरू होता है। वे विटप की भाँति थे—विटप कोमल छाल की कला से आवृत वपु होता है और वे (मुनिकुमार) कोमल वल्कल के टुकड़ों से शरीर को ढके हुये थे। वे पर्वत के समान थे—पर्वत प्रत्यन्त पर्वतों से युक्त होता है और वे भी मेखला सहित थे। वे राहु के समान थे—राहु अनेकों बार चन्द्र को चख चुका था और वे बहुतों बार सोमरस का आस्वाद ले चुके थे। कमलवन के समान थे—कमलवन सूर्य की रश्मियों को चूमता है और वे भी पंचाग्नि सेवन के प्रसंग में सूर्य की किरणों को पी चुके थे। वे नदी के तट-वृक्ष के समान थे—तट के वृक्ष की जड़ों के पतले रेशे निरन्तर जल के प्रक्षालन से विमल हो जाते हैं

१. कुसुमपूर्णं, २. विषाणशिखर, ३. उपास्यमानः, ४. अनुगम्यमानः, ५. वल्क, ६. दिनकर,

तरुरिव सततजलक्षालनविम[1]लजटः, करिक[2]लभ इव विकचकुमुददलशकलसितदशनः, द्रौणिरिव कृपानुगतः, नक्षत्रराशिरिव चित्रमृगकृत्ति[3]काश्लेषोपशोभितः, घर्मकालदिवस इव क्ष[4]पितबहुदोषः, जलधरसमय इव प्रशमितरजःप्रसरः, वरुण इव कृतोदवासः,

---

कमलानां निकरः समूहस्तद्वदिव। उभयोः साम्यमाह—दिवसेति। दिवसकरस्य सूर्यस्यातपभयान्मरीचीन्पाति रक्षति स तथा पक्षे सूर्यविकासित्वात्सूर्यमरीचीन्पाति पिबति यः स तथेति विग्रहः। नदीति। नद्यास्तटिन्यास्तटं प्रतीरं तस्मिंस्तरुर्वृक्षस्तद्वदिव। उभयोः सादृश्यमाह—सततमिति। सततं निरन्तरं त्रिसायं जलेन पानीयेन क्षालनं तेन विमला जटाः सटाः यस्य सः। पक्षे सततजलक्षालनेन विमला जटा अवरोहा यस्येति विग्रहः। करीति। करिणां हस्तिनां कलभस्त्रिंशदब्दको गजस्तद्वदिव। उभयोस्तुल्यतामाह—विकचेति। विकचानि स्फुटानि कुमुदानि कैरवाणि तेषां दलानि पर्णानि तेषां शकलानि खण्डास्तद्वत्सिताः शुभ्रा दशना दन्ता यस्येति स तथा। उभयसाम्यादभङ्गश्लेषः। द्रौणिरिवेति। द्रौणिरश्वत्थामा तद्वदिव। उभयोः शब्दसाम्यमाह—कृपेति। कृपा दुःखहानेच्छा तयानुगतः सहितः। पक्षे कृपः कृपाचार्यस्तेनोपगत इति विग्रहः। नक्षत्रेति। नक्षत्राणां तारकाणां राशिः समूहस्तद्वदिव। अनयोः साम्यमाह—चित्रेति। चित्रमृगस्य कृत्तिका चर्म तेनाश्लेषः संबन्धस्तेन उपशोभितः शोभां प्राप्तः। पक्षे चित्रा त्वाष्ट्री, मृगो मृगशिरः कृत्तिका प्रसिद्धा, आश्लेषा सार्पी, ताभिरुपशोभितः। क्षमेति। घर्मकाल उष्णकालस्तस्य दिवसो दिनं तद्वदिव। उभयोः साम्यमाह—क्षपित इति। क्षपिताः क्षयं प्रापिता बहवो दोषा रागादयो येन सः। पक्षे क्षपिता बह्वी दोषा रात्रिर्येनेति विग्रहः। जलेति। जलधरसमयः प्रावृट्कालस्तद्वदिव। उभयोस्तुल्यतामाह—प्रशमितेति। प्रशमितः शान्तिं प्रापितो रजःप्रसरः प्रवर्तकगुणव्यापारो येन सः। पक्षे प्रशमितो रजःप्रसरो धूलिविस्तारो येनेति विग्रहः। वरुण इति। वरुणः प्रचेतास्तद्वदिव। उभयोः साम्यमाह—कृतोदेति। कृतो विहित

और उनकी भी जटा निरन्तर जल से धोने के कारण निर्मल थी। वे हाथी के बच्चे के समान थे—हाथी का बच्चा खिले हुए कुमुद की पंखड़ियों के टुकड़ों के समान उजले दाँतों वाला रहता है और उनके भी दाँत विकसित कुमुद के दल की भाँति उज्ज्वल थे। वे अश्वत्थामा के समान थे—अश्वत्थामा कृपाचार्य (अपने मामा) से युक्त थे और वे कृपा से युक्त थे। वे नक्षत्रमण्डल के सदृश थे—नक्षत्रमण्डल चित्रा, मृगशिरा, कृत्तिका और श्लेषा से सुशोभित रहता है और वे विचित्र मृगचर्म के परिधान से विभूषित थे। वे गर्मी के दिन के समान थे—गर्मी के दिन बहुत सी रातों को क्षीण बना डालते हैं और इन्होंने भी बहुत से राग, द्वेष आदि दोषों को नष्ट कर दिया था। वे बरसाती दिन के समान थे—बरसात के दिन में धूल का उड़ना बन्द हो जाता है और उन्होंने भी रजोगुण के प्रसार को प्रशान्त कर दिया था। वे वरुण के समान थे—वरुण जल के अधिदेवता होने से जल निवासी हैं और वे भी तपः प्रसंग

---

१. विरल, २. करभ, ३. विश्लेषा, ४. चयितदोषः,

हरिरिवापनीतनरकभयः, प्रदोषारम्भ इव संध्यापि[1]ङ्गलतारकः, प्रभातकाल इव बाला-तपकपिलः, रविरथ इव दृढ[2]नियमिताक्षचक्रः, सुराजेव निगूढमन्त्रसाधनक्ष[3]पितविग्रहः, ज[4]लनिधिरिव करालशङ्खमण्डलावर्तग[5]र्तः, भगीरथ इ[6]वासकृद्दृष्टगङ्गावतारः, भ्रमर[7]

उदवासो व्रतविशेषो येन सः। पक्षे कृत उदकेषु वासो निवासो येनेति विग्रहः। उदकस्यो-दादेशः। हरिरिति। हरिरिव कृष्ण इव। उभयोरैक्यमाह—अपनीतेति। अपनीतो दूरीकृतो नरको दुर्गतिः तद्भयं येन सः। पक्षे नरकनाम्नो दैत्यस्य भयं येनेति विग्रहः। प्रदोषेति। प्रदोषो यामिनीमुखं तस्यारम्भः प्रारम्भस्तद्वदिव। उभयोरैक्यमाह—संध्येति। संध्या दिवसरजन्योः संधिस्तद्वत्पिङ्गला तारैव तारका कनीनिका यस्य स तथा। इदं महापुरुषोपलक्षणम्। तदुक्त-मन्यत्र—'शूद्रोऽपि चक्रवर्ती स्यात्पीततारकचक्षुषि' इति। पक्षे संध्याकृता पिङ्गला तारका यस्मिन्निति विग्रहः। प्रभातेति। प्रभातं प्रत्यूषस्तस्य कालः समयस्तद्वदिव। उभयोः साम्यमाह—बालेति। बालो यः सूर्यस्तस्यातपः बालश्चासावातपो वा। प्रकाशस्तद्वत्कपिलः पिङ्गलः। पक्षे बालातप उद्गमनसमयवर्त्यातपस्तेन कपिलः पिङ्गलः। पीतरक्त इत्यर्थः। रविरथ इति। रवेः सूर्यस्य यो रथः स्यन्दनस्तद्वदिव। उभयोः साम्यमाह—अक्षेति। दृढं यथा स्यात्तथा नियमितं निबद्धमक्षाणामिन्द्रियाणां चक्रं समूहो येन सः। पक्षे दृढे नियमिते अक्षचक्रे यस्मि-न्निति विग्रहः। तत्राक्षो मध्यप्रदेशः। चक्रं प्रसिद्धम्। सुराजेवेति। सुष्ठु शोभनो यो राजा नृपतिस्तद्वदिव। तयोः साम्यमाह—निगूढेति। निगूढं रहो यन्मन्त्रसाधनं देवताराधनं तेन

में जल में निवास करते थे। वे हरि के समान थे—हरि ने नरक नामक असुर के भय को हटाया था और इन्होंने नरक के भय को दूर किया था। वे निशामुख के समान थे—निशामुख सन्ध्या पिंगल वर्ण के तारों से सुन्दर लगता है और वे सन्ध्या के समान पिंगल वर्ण की पुतलियों से भव्य थे। वे प्रातःकाल के सदृश थे-प्रातःकाल बालातप से कपिल वर्ण का हो जाता है और वे बालातप के समान कपिल वर्ण के थे। वे सूर्य के रथ के समान थे-सूर्य का रथ सुदृढ़ धुरी और चक्र से नियन्त्रित है और उनकी सभी इन्द्रियां दृढ़ संयम से नियन्त्रित थीं। वे अच्छे राजा के समान थे—अच्छा राजा अत्यन्त गुप्त मन्त्रणा तथा सेना आदि के बल से लड़ाई को समाप्त कर देता है और वे अत्यन्त गोपनीय मन्त्रों की साधना से कृश बन चुके थे। वे सागर के समान थे—सागर के गहरे भाग में विकट शंख और भँवर रहते हैं और उनके ललाट तथा कान का मध्य टेढ़े बालों से भव्य तथा छोटे गड्ढे से रम्य था। वे भगीरथ के समान थे-भगीरथ ने कई बार गंगा के अवतरण को देखा था [शंकर की जटा पर से गिरती हुई गंगा का प्रथम अवतार एवं जह्नु ऋषि द्वारा पीने के अनन्तर जाँघ से निकाली हुई गंगा के द्वितीय अवतरण को देखा था] और उन्होंने कई बार गंगा के सोपानों का मनोहारी दृश्य देखा था अथवा गंगा के अवतार वाले तीर्थ हरद्वार का अनेकों बार दर्शन

---

१. पिञ्जङ्ग, २. नियमित; दृढसंयमित, ३. क्षयित, ४. जलधि, ५. नाभिगर्तः, ६. इव दृष्ट, ७. मधुकर,

इवासकृदनुभूतपुष्करवनवासः, वनचरोऽपि कृतमहालयप्रवेशः, असंयतोऽपि मोक्षार्थी, सामप्रयोगपरोऽपि सततावलम्बितदण्डः, सुप्तोऽपि प्रबुद्धः, संनिहितनेत्रद्वयोऽपि परित्यक्तवामलोचनस्तदेव कमलसरः सिरनासुरुपागमत् ।

क्षपितः कृशतां नीतो विग्रहः शरीरं येन सः । पक्षे निगूढोऽतिगुप्तो मन्त्रो रहस्यालोचनं साधनं गजाश्वादि ताभ्यां क्षपितः क्षयं नीतो विग्रहः शत्रुजनितक्लेशो येनेति विग्रहः । जलनिधिरिति । जलनिधिः समुद्रस्तद्वदिव । उभयोः सादृश्यमाह—करालेति । करालं यच्छङ्खमण्डलं भाल-श्रवोन्तरं तत्रावर्तेन गर्तो यस्य स तथा । तादृशावर्तश्च महातपस्विलक्षणम् । पक्षे करालानि जिह्मानि यानि शङ्खमण्डलानि षोडशावर्तवृन्दान्यावर्तः पयसां भ्रमश्च एते गर्ते अगाधप्रदेशे यस्येति विग्रहः । भगीति । भगीरथः सगरप्रपौत्रस्तद्वदिव । उभयोः सादृश्यमाह—अस कृदिति । असकृन्निरन्तरं दृष्टोऽवलोकितो गङ्गया अवतारो घट्टो येन सः । 'घट्टस्तीर्थावतारे' इति कोशः । पक्षे असकृत् दृष्टो गङ्गाया अवतारः प्रभावो येनेति विग्रहः । भ्रमर इति । भ्रमरो मधुकृत्तद्वदिव । उभयोः साम्यमाह—असकृदिति । असकृद्वारंवारमनुभूतोऽनुभवविषयीकृतः पुष्करं जलं तेन सहितं यद्वनं तत्र वासो वसतिर्येन सः । पक्षेऽनुभूतः पुष्करवनं कमलखण्डस्तत्र वासो येनेति विग्रहः । वनेति । वने चरतीति वनचरः । एवंभूतोऽपि कृतो महालयेषूच्चैस्तरगृहेषु प्रवेशो येनेति विरोधः । परिहारपक्षे महालयो ब्रह्मणि लयः । तदुक्तम्—'अधोमुख्या कुण्ड-लिन्योर्ध्वं मुखे कृते सति ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्तं नीतायां तस्यामेकान्तेनावस्थानं ब्रह्मणि लयः' इति । यद्वा महालयो मोक्षस्तत्र कृतवसतिरित्यर्थः । असंयतेति । असंयतोऽसंयमवानपि मोक्षार्थी मोक्षाभिलाषुक इति विरोधः । तत्परिहारपक्षेऽसंयतोऽबद्धोऽपीत्यर्थः । संदानितः संयतश्च' इत्यभिधानचिन्तामणिः । सामेति । साम सान्त्वनं तत्प्रयोगपरोऽपि मैत्रीप्रयोगतत्परोऽपि सततं निरन्तरमवलम्बित आश्रितो दण्डो राजदेयद्रव्यं येनेति विरोधः । तत्परिहारपक्षे सामवेद-

---

किया था । वे भ्रमर के समान थे—भ्रमर बार बार कमल वन के निवास का सुखानुभव-कर चुका रहता है और वे पुष्कर तीर्थ के तपोवन में निवास करने का अनुभव कई बार कर चुके थे । [यहाँ तक पूर्णोपमा की माला का मनोहर दृश्य था अब विरोधाभास की छटा देखिये] वे वनचारी होने पर भी बड़े भवन में प्रवेश करते रहते थे–परिहारपक्ष में ब्रह्म-समाधि में प्रविष्ट हो जाया करते थे । वे संयमहीन होने पर भी मोक्ष के इच्छुक थे । परिहार—वे पारिवारिक ममता के पाश से आबद्ध नहीं थे, अतः मोक्ष चाहते थे । वे साम के प्रयोग में तत्पर रह कर भी निरन्तर दण्ड नीति धारण किये रहते थे–परिहार—सामवेद का गान करते थे तथा ब्रह्मचर्याश्रम के अनुरूप पलाश का दण्ड धारण किये हुये थे । वे सो कर भी जगते रहते थे–परिहार—वे सुन्दर जटा वाले थे तथा सर्वत्र जागरूक थे । तथा वे दोनों आँखों के सान्निध्य रहने पर बाईं आँख को परित्याग कर चुके थे—परिहार—वामलोचनाओं का परित्याग कर दिया था ।

प्रायेणाकारणमित्राण्यतिकरुणार्द्राणि स¹दा खलु भवन्ति सतां चेतांसि। यतः स मां तदवस्थमालोक्य समुपजातकरु²णः स³मीपवर्तिनमृषिकुमारकमन्यतमब्रवीत्—'अयं कथमपि शुकशिशुरसञ्जातपक्षपुट एव तरुशिखरादस्मात्परिच्युतः। श्येनमुखपरिभ्रष्टेन वानेन भ⁴वितव्यम्। तथा हि—अतिदवीयस्तया प्रपातस्या⁵ल्पशेषजीवितोऽयमामीलितलोचनो मुहुर्मुहुर्मुखेन प⁶तति, मुहुर्मुहुरत्युल्बणं श्व⁷-

प्रयोगपरोऽपि सततमवलम्बितो दण्डो यष्टिर्येनेति विग्रहः। सुप्त इति। सुप्तोऽपि निद्रितोऽपि प्रबुद्धो जाग्रदवस्थ इति विरोधः। परिहारपक्षे सुष्ठु शोभना सृाः जटा यस्येति विग्रहः। लक्ष्यं च—'राजा राजार्चिताङ्घ्रेरनुपचितकलो यस्य चूडामणित्वं नागा नागात्मजार्धं न भसितधवलं यद्वपुर्भूषयन्ति। मा रामारागिणी भून्मतिरिति यमिनां येन बोऽदाहि मारः स सृाः ससाध्वनुज्ञारुणकिरणनिभाः पातु बिभ्रत्त्रिनेत्रः॥' इति शृङ्गारतिलकटीकायाम्। तथा 'सन्नालिका सदाप्ता परिकरमुदिता' इति शोभनस्तुतौ लक्ष्यान्तरमपि। संनिहित इति। सम्यक्प्रकारेण निहितं स्थापितं नेत्रद्वयं लोचनद्वयं येनैवंभूतोऽपि परित्यक्तं दूरीकृतं वामलोचनं येनेति विरोधः। परिहारपक्षे परित्यक्तं वामं वक्रं लोचनमालोकनं येनेत्यर्थः। यद्वा ब्रह्मचारित्वात्परित्यक्तं वामायां मनस्विन्यां लोचनं येनेत्यर्थः।

प्रायेणेति। प्रायेण बाहुल्येनाकारणमित्राणि निदानव्यतिरेकेण प्रियकारीण्यतिशयेन करुणा परदुःखप्रहाणेच्छा तयार्द्राणि स्विन्नानि खलु निश्चयेन सदा सर्वकालं सतां सज्जनानां चेतांसि मनांसि भवन्ति। यतः स मुनिसुतो हारीताख्यो मां तदवस्थं कष्टदशापन्नमालोक्य निरीक्ष्य समुपजाता सम्यक्प्रकारेणोत्पन्ना करुणा कृपा यस्यैवंभूतः समीपवर्तिनं निकटस्थायिनमृषिकुमारकमन्यतमं मुनिसुतमब्रवीदवोचत्। अयं प्रत्यक्षगतः कथमपि महता कष्टेन शुकशिशुः कीरपोतोऽसंजातपक्षपुट एवासमुत्पन्नच्छद एवास्मात्तरुशिखराद्वृक्षप्रान्तात्परिच्युतः स्रस्तः। वाथवानेन कीरेण श्येनः सिञ्चानकस्तस्य मुखादाननात्परिभ्रष्टेन पतितेन भवितव्यम्। तदेव दर्शयति—तथा हीति। अतिदवीयो द्राघीयस्तस्य भावस्तत्ता तया प्रपातस्य प्रपतनस्याल्पं शेषमुद्धरितं यस्मिन्नेवंविधं जीवितं यस्यैवंभूतोऽयमामीलिते संकुचिते लोचने नेत्रे यस्य स तथा मुहुर्मुहुर्वारंवारं मुखेन पतति। अयं पक्षिणां जातिस्वभावः। मुहुर्मुहुरत्युल्बणमुत्कटं श्वसिति

सज्जनों का हृदय कारण के अभाव में भी मैत्रीपूर्ण तथा सदैव करुणा से आर्द्र रहता ही है। जिससे वे (हारीत) उस अवस्था में पड़े हुए मुझे देखकर करुणा के समुद्रेक से पास रहने वाले दूसरे मुनिकुमार से कहने लगे—जिसके डैने निकल भी नहीं सके हैं ऐसा यह शुकशावक किसी तरह इस पेड़ की चोटी से गिर पड़ा है। अथवा बाज के मुह से शायद यह गिर गया होगा, जिससे कि बहुत ऊँचे पेड़ से गिरने के कारण इसका जीवन अल्पमात्रा में ही अवशिष्ट रह गया है, यह आँख मूँदे-मूँदे बार-बार मुहके बल गिर पड़ता है। बार-बार अत्यन्त तेज

१. च सदा भवन्ति सतां चेतांसि; सतां खलु भवन्ति सदा चेतांसि, २. दयः, ३. समीपतर, ४. प्रायो भवितव्यम्, ५. अस्याल्पशेषं जीवितम्, ६. वमति, ७. निश्वसिति,

सिति मुहुर्मुहुश्चञ्चुपुटं विवृणोति, न शक्नोति शिरोधरां धारयितुम्। तदेहि। यावदेवायमसुभिर्न विमुच्यते[1], तावदेव गृहाणेम[2]म्। अवतारय सलिलसमीपम्' इत्यभिधाय तेन मां सरस्तीरमनाययत्। उपसृत्य[3] च जलसमीपमेकदेशनिहितदण्डकमण्डलुरादाय स्वयं मा[4]मामुक्तप्रयत्नमु[5]त्तानितमुख[6]मङ्गुलया कतिचित्सलिलबिन्दूनपाययत्। अम्भःक्षोदकृतसेकं चोप[7]जातनवीनप्राणमुपतटप्ररूढस्य नव[8]नलिनीदलस्य जलशिशिरायां छायायां निधाय स्वोचि[9]तमकरोत्स्नानविधिम्। अभिषेका[10]वसाने चानेकप्राणायाम[11]पूतो [12]जपन्पवित्राण्यघमर्षणानि प्रत्यग्रभग्नैरुन्मुखो रक्तारविन्दैर्न-

प्राणिति। मुहुर्मुहुश्चञ्चुपुटं त्रोटीपुटं विवृणोति विकासयति। न शक्नोति न समर्थो भवति शिरोधरां ग्रीवां धारयितुं स्थापयितुम्। तदिति। तत् पूर्वोक्तहेतोरेह्यागच्छ। यावदेवायं यावत्कालमयं शिशुरसुभिः प्राणैर्न विमुच्यते न विश्लेषं प्राप्नोति तावदेव तावत्कालं गृहाणेमं शुकम्। अवतारय प्रापय सलिलसमीपं पानीयसविधमिति पूर्वोक्तप्रकारेणाभिधायोक्त्वा तेनर्षिपुत्रेण मां सरस्तीरं कासारतटमनाययत्प्रापयत्। उपसृत्य प्राप्य च जलसमीपम्। एकेति। एकदेशेऽन्यतरस्मिन्प्रदेशे निहितौ स्थापितौ दण्डकमण्डलू येन स तथा तत आदाय गृहीत्वा माम्। कीदृशम्। आमुक्तः परित्यक्तः प्रयत्नोऽन्नपानाद्यनुकूलशारीरक्रियारूपो येन स तम्। उत्तानितमूर्ध्वीकृतं मुखमास्यं येन स तम्। स्वयमात्मनाङ्गुल्या करशाखया कतिचित्कियतः सलिलबिन्दून्पानीयपृषतोऽपाययज्जलपानमकारयत्। अम्भसः पानीयस्य क्षोदेन हस्तच्युतेन कृतो विहितः सेकः सेचनं यस्य स तम्। शुकपोतं विशेषयन्नाह—उपेति। उपजाता नवीना नवाः प्राणा असवो यस्यैवंविधं मामुपतटं तटसमीपं प्ररूढस्य जातस्य नवनलिनीदलस्य प्रत्यग्रपद्मिनीपत्रस्य जलेन पानेन शिशिरायां शीतलायां छायायाम्। वैशम्पायन इत्यभिधा नाम यस्यैवंविधं शुकं निधाय स्थापनां कृत्वैतदभिधानोऽयमिति स्वोचितं स्वस्योचितं योग्यं स्नानविधिमकरोदसृजत्। अभिषेकस्य स्नानस्यावसाने प्रान्ते। चः पुनरर्थे। उदतिष्ठदुत्थितो

साँस ले रहा है, बार-बार चञ्चु पुट खोल रहा है। यह अपनी गरदन सीधी नहीं रख पा रहा है। अतः आओ। जब तक इसके प्राण पखेरू नहीं उड़ते तभी तक इसे ले लो। और पानी के पास उतारो—ऐसा कहकर वे उस मुनिकुमार द्वारा मुझे सरोवर के तीर पर ले आये। और जल के पास जाकर दण्ड और कमण्डलु को एक स्थान पर रख दिया और प्रयत्न छोड़ देने वाले मेरे मुह को उपर की ओर उठाकर उंगली से कई बूँद पानी पिलाया तथा जल के छीटे से नहलाया। इस तरह नये जीवन का संचार हो जाने पर तट के पास ही उगे हुये ताजे कमल के पत्ते की जल-शीतल छाया में मुझे रख दिया और अपने उचित स्नान विधान में लग गये। स्नानान्त में अनेक प्राणायाम कर अपने को पावन बनाया तथा पवित्र एवं पाप-नाशक मन्त्रों का जप करते हुए ऊर्ध्वमुख होकर सद्यः तोड़े गये रक्त कमलों से युक्त पुरइन के पत्तों

१. वियुज्यते, २. एनम्, ३. उपसृत्य जल, ४. मुक्तं, ५. उन्नमितम्, ६. मन्मुखम्, ७. समुपजातप्राणम्, समुपजातप्रज्ञम्, ८. नलिनीपलाशस्य, ९. समुपचितम्; यथासमुपचित्रतम्; १०. अभिमताभिषेक, ११. पूजितः; पूतोऽपि, १२. जपन्नघमर्षणानि.

लिनीपत्रपुटेन भगवते सवित्रे दत्त्वार्घमुदतिष्ठत्। आगृहीतधौतधवलवल्कलश्च सहज्योत्स्न इव संध्यातपः करतलनिर्धूननविशदसटः प्रत्यग्रस्नानार्द्रजटेन सकलेन तेन मुनिकुमारकदम्बकेनानुगम्यमानो मां गृहीत्वा तपोवनाभिमुखं शनैरगच्छत्।

अनतिदूरमिव गत्वा दिशि दिशि सदा संनिहितकुसुमफलैस्तालतिलकतमालहिन्तालबकुलबहुलैरेलालताकुलितनालिकेरीकलापैर्लोललोध्रलवलीलवङ्गप -

बभूवेत्यन्वयः। हारीतं विशिनष्टि—अनेकैरिति। अनेकैर्बहुभिः प्राणायामैः प्राणयमैः पूतः पवित्रः। किं कुर्वन्। जपन्स्मरन्। कानि। अघमर्षणान्यब्देवतास्तुतिरूपाणि 'सर्वैनसामपध्वंसि जप्यं त्रिष्वघमर्षणम्' इति कोशः। कीदृशानि। पवित्राणि स्वत एव विशदानि। कीदृक्। उन्मुख ऊर्ध्वमुखः। नलिनीति। नलिन्याः कमलिन्याः पत्रपुटेनाधारभूतेन प्रत्यग्रभग्नैस्तत्कालगृहीतै रक्तारविन्दै रक्तकमलैराधेयभूतैर्भगवते माहात्म्यवते सवित्रे श्रीसूर्यायार्धं पूजां दत्त्वा वितीर्य। अन्वयस्तु प्रागेवोक्तः। कीदृक्। आगृहीतेति। स्नानानन्तरमागृहीतं स्वीकृतं धौतं क्षालितमत एव धवलं शुभ्रं वल्कलं चोचं येन स तथा। सहज्योत्स्न इति। सह ज्योत्स्नया कौमुद्या वर्तते यः स एवंभूतः संध्यातपः सायंकालीनसूर्यातप इव। करतलेति। करतलेन हस्ततलेन यन्निर्धूननमाच्छोटनं तेन विशदा निर्मला जटा सटा यस्य सः। प्रत्यग्रं तत्कालं स्नानेनार्द्रार्द्रीभूता जटा सटा यस्य स तथा तेन। सकलेन समग्रेण मुनिकुमारकदम्बकेन तापसशिशुसमूहेनानुगम्यमानः। मामिति। मां वैशम्पायनं गृहीत्वादाय तपोवनाभिमुखं स्वाश्रमसंमुखं शनैर्नातिवेगेनागच्छदन्वतिष्ठत्।

अनतिदूरमिव गत्वा। दविष्ठं पन्थानमतिक्रम्येत्यर्थः। अहमाश्रमं मुनिस्थानमपश्यमिति दूरेणान्वयः। कीदृशम्। काननैर्वनैरुपगूढं व्याप्तम्। अथ वनविशेषणानि व्याख्यापयन्नाह—

के दोनों में जल भरकर सूर्य भगवान् को अर्घ्य दिया और उठकर खड़े हो गये। और धुले हुए उजले वल्कल को पहन लेने से ऐसे लगने लगे मानो सन्ध्या का आतप चन्द्रिका से युक्त हो गया हो। वे अपनी हथेली से विशाल केशों को झाड़कर सद्यः स्नान करने के कारण भींगी हुई जटा वाले उन सभी मुनिकुमारों से अनुगम्यमान होकर मुझे लिये हुये तपोवन की ओर धीरे से चल पड़े।

थोड़ी ही दूर जाने पर मैंने द्वितीय ब्रह्मलोक के समान एक अत्यन्त रम्य आश्रम देखा। जो सभी ओर फैले हुये सघन वृक्षों के वनों से घिरा हुआ था। जहाँ के तरुओं में सदैव फूल और फल लगे हुये थे। जिनमें ताल, तमाल, हिन्ताल और बकुल वृक्षों का बाहुल्य था। जहाँ नारियल के पेड़ों पर इलायची की लतायें चढ़ी हुई थीं। जहाँ लोध्र, लवली और

१. अर्घ्यम्, २. आगृहीतधवला; आगृहीतधवलधौत, ३. सज्योत्स्नः, ४. निर्धूतविशद, ५. कमण्डलुमापूर्य कमलकिञ्जल्कसुरभिणा शुचिना सरोवारिणा प्रत्यग्र, ६. कुमारक, ७ शनैःशनैः, ८. पटलैः, ९. तालीतमाल, १०. नारिकेल, ११. आलोल, १२. पुष्पैः,

लवैरुल्ल[1]सितचूतरेणुपटलैरलिकुलझङ्कारमुखरसहकारैरुन्मदकोकिलकुलक[2]लापकोलाहलि-भिरुत्फुल्लकेतकीरजः[3]पुञ्जपिञ्जरैः पूगीलतादोलाधिरूढवनदेवतैस्तारकावर्ष[4]मिवाधर्म-विनाशपिशुनं कुसुमनिकरमनिलचलितमनवरतमतिधवलमुत्सृजद्भिः संसक्तपादपैः[5] काननैरुपगूढम्, अचकितप्रचलितकृष्णसा[6]रशतशबलाभिरुत्फुल्लकमलिनी[7]लोहिनीभि-

दिशीत्यादि। दिशिदिशि प्रतिदिशं सदा सर्वकालं संनिहितानि हस्तग्राह्याणि कुसुमफलानि येषां तैः। तालस्तृणराजः, तिलकः श्रीमान्, तमालस्तापिच्छः, हिन्तालो वृक्षविशेषः बकुलः केसरः, एतैर्बहुलैर्दृढैः। 'नीरन्ध्रं बहुलं दृढम्' इति कोशः। एलायाश्चन्द्रबालाया या लता वल्लयस्ताभिराकुलितो व्याप्तो नालिकेरीकलापो लाङ्गलीसमूहो येषु तैः। लोलाश्चपला लोध्रो गालवः, लवली लताविशेषः, लवङ्गः श्रीसंज्ञः, एतेषां पल्लवा येषु तैः। अलिकुलानां भ्रमर-समूहानां झङ्कारेण झङ्कृतिशब्देन मुखरा वाचालाः सहकारा येषु तैः। आम्रेष्वतिसौरभो यः स सहकार इति पूर्वस्माद्भेदः। अतो न पौनरुक्त्यम्। 'आम्रश्चूतो रसालोऽसौ सहकारोऽ-तिसौरभः' इत्यमरः। उन्मदानि मदोन्मत्तानि यानि कोकिलकुलानि पिककुलानि तेषां कलापः समूहस्तस्य कोलाहलः कलकलो येषु तैः। उत्फुल्ला विकसिता याः केतक्यो मालत्यस्तासां रजःपुञ्जः परागसमूहस्तेन पिञ्जरैः पीतरक्तैः। पूगीलताः क्रमुकलता एव दोलाः प्रेङ्खास्तास्व-भिरूढा आश्रिता वनदेवता अरण्याधिष्ठात्र्यो देवता येषु तैः। पुनः किं कुर्वद्भिः। किमिव। तारकावर्षमिवोल्कापातमिव। तदपि किंचिदनिष्टस्य सूचकं भवति। इदमपि तथेत्याह—अधर्मेति। अधर्मस्याशिष्टाचारस्य विनाशोऽभावस्तस्य पिशुनं सूचकम्। एतेन सर्वथाऽधर्मा-भावोऽत्रेति ध्वनितम्। संसक्ता अन्योन्यं मिलिताः पादपा वृक्षा येषु तैः। पुनः कीदृशम्। दण्डकारण्यं प्रसिद्धं तस्य याः स्थलयः स्थूलभूमयस्ताभिरुपशोभितः शोभां प्रापितः प्रान्तः पश्चाद्भागो यस्य स तम्। अतः स्थल्या विशेषणानि—अचकितेत्यादि। अचकिता अत्रस्ताः प्रचलिता गच्छन्तो ये कृष्णसाराः कृष्णमृगास्तेषां शतं दशशतगुणितास्तेन शबलाभिः

लवंग के पल्लव हिल रहे थे, जहाँ विकसित रसाल की मञ्जरियों से पराग झड़ रहा था। जहाँ आम के उपवन भ्रमरों के गुंजन से झंकृत हो रहे थे। जहाँ मदमत्त पिकों का कोलाहल हो रहा था। जहाँ उत्फुल्ल केवड़े के पराग-पुंज की पीतिमा व्याप्त थी। जहाँ वनदेवियाँ सुपारी की लता के झूले पर झूल रहीं थीं। जहाँ पवन के झोंके से अत्यन्त उज्ज्वल पुष्पपुंज की निरन्तर वर्षा हो रही थी—जिससे ज्ञात होता था कि अधर्म के विनाश की सूचना देने वाले तारों के समूह गिर रहे हों। जिसका किनारा दण्डक वन के प्रदेशों से सुशोभित हो रहा था। जो आश्रम निर्भय विचरने वाले सैकड़ों कृष्णसार मृगों से चित्रित सा हो रहा था। जो रक्त कमल के

१. उल्लसत्, २. कलालाप, ३. केतकीकुसुममञ्जरीरजः; केतकमञ्जरीरजः, ४. वृष्टि, ५. पादपैरुपगूढम्। ६ सारसारङ्ग, ७ स्थलकमलिनी,

मारीच[1]मायामृगावलूनरूढ[2]वीरुद्दलाभिर्दाशरथिचापकोटिक्षतकन्दग[3]र्तविषमिततलाभिर्दण्डकारण्यस्थलीभिरुपशोभितप्रान्तम्, आगृहीतसमित्कुशकुसुममृद्भि[4]रध्ययनमुखरशिष्यानुगतैः[5]सर्वतः प्रविशद्भि[6]र्मुनिभिरशून्यो[7]पकण्ठम्, उत्कण्ठि[8]शिखण्डिमण्डल[9]श्रूयमाणजलकलशपूरणध्वानम्, अनवरताज्याहुतिप्रीतैश्चित्रभानुभिः सशरीरमेव मुनिजनममरलोकं निनीषुभिरुद्धूयमानधूमलेखाच्छलेनाबध्यमानस्वर्गमार्गगमनसोपानसेतुरिवोपलक्ष्यमाणम्, आसन्नवर्तिनीभिस्तपोधन[10]संपर्कादिवापगतकालुष्याभिस्तरङ्गपरंपरासंक्रा-

---

किर्मीराभिः। प्रफुल्ला विकसिता याः कमलिन्यो नलिन्यस्ताभिर्लोहिनीभी रक्ताभिर्मारीचनामा यो मायामृगस्तेनावलूनानि छिन्नानि रूढवीरुधां संजातवल्लीनां दलानि पर्णानि यासु ताभिः। दाशरथी रामचन्द्रस्तस्य चापकोट्या क्षता उत्खाता ये कन्दा मूलानि तेभ्यो ये गर्ता भुवो विवराणि तैर्विषमितमुच्चनीचतां प्राप्तं तलं यासु ताभिः। पुनः कीदृशम्। मुनिभिः करणभूतैरशून्यसुपकण्ठं समीपं यस्य स तथा तम्। यथाक्रमं मुनीनां त्रीणि विशेषणानि व्याख्यापयन्नाह—आगृहीतेति। आगृहीता आत्ताः समिध एधांसि, कुशा दर्भाः, कुसुमानि पुष्पाणि, मृदो मृत्तिका यैस्ते तथा तैः। अध्ययनेन वेदपारायणेन मुखरा वाचाला ये शिष्या विनेयास्तैरनुगतैः सहितैः सर्वतोऽभितः प्रविशद्भिः प्रवेशं कुर्वद्भिः। तद्गतपदार्थप्रदर्शनपूर्वकं पुनर्विशिनष्टि—उत्कण्ठीति। उत्कण्ठिना हृल्लेखवता शिखण्डिमण्डलेन मयूरसमूहेन श्रूयमाण आकर्ण्यमानो जलेषु कलशपूरणध्वानः शब्दो यस्मिन्स तम्। अनवरतं निरत्ययमाज्येन सर्पिषा याहुतिर्हवनं तया प्रीतैः संतुष्टैश्चित्रभानुभिर्वह्निभिः सशरीरमेव मुनिजनमृषिवर्गममरलोकं स्वर्गलोकं निनीषुभिर्नेतुमिच्छुभिरुद्धूयमाना कम्पमाना या धूमलेखा दहनकेतनवीथी तस्याच्छलेनाबध्यमानो विरच्यमानः स्वर्गमार्गगमनसोपानसेतुरिव स्वर्गस्य त्रिविष्टपस्य यो मार्गः पन्थास्तत्र गमनं तदर्थं सोपानसेतुरिवोपलक्ष्यमाणं व्यज्यमानम्। दीर्घिकाभिर्वापीभिः परिवृत-

---

फूलों से लाल हो रहा था। जो मारीच नामक माया मृग द्वारा काटे जाने पर पुनः उगे हुये पत्तों वाली लताओं से समृद्ध था। जो राम और लक्ष्मण के धनुषों के कोर से कन्द खोद लेने पर बने हुये गढों से विषम स्थल वाला हो गया था। जिसके आस पास का स्थान कुश, कुसुम, समिधा और मृत्तिका लिये हुये चारों ओर से प्रवेश करने वाले तथा वेदाध्ययन करने के कारण मुखर शिष्यों से अनुगत मुनियों से परिपूर्ण था। जहाँ जल भरे जाते हुये घड़ों के भरने की आवाज को उत्कण्ठा से युक्त मयूर मण्डल सुन रहा था। जहाँ अनवरत घृत की आहुतियों से प्रसन्न अग्निदेव मुनिजनों को उसी शरीर से स्वर्ग पहुँचाने की इच्छा से उड़ती हुई धूमरेखा के बहाने मानो स्वर्ग जाने के मार्ग पर चलने के लिये सीढ़ियों का सेतु बना रहे हों। जो (आश्रम) समीपवर्ती सरोवरों से घिरा हुआ था, उन सरोवरों के जल का कालुष्य मानों तपस्वियों के सम्पर्क से अपगत हो गया था जिनकी तरंगावलियों में सूर्य-बिम्ब की पंक्तियाँ

---

१ मारीचि, २ प्ररूढ, ३ कन्दर, ४ मृत्तिकैः, ५ शिष्यागतैः, ६ प्रसरद्भिः, ७ अविशून्य, ८ उत्कण्ठ, ९ मण्डलीमण्डल, १० तपोवन,

न्तरविबिम्ब[1]पङ्क्तिभिस्तापसदर्शनागतसप्तर्षिमालाविगाह्यमानाभिरिव विकच[2]कुमुद-वनमृषिजनमुपासितुमवतीर्णं ग्रहगणमिव निशासूद्वहन्तीभिर्दीर्घिकाभिः परिवृतम्, अनिलावनमितशिखराभिः[3]प्रणम्यमानमिव वनलताभिः, अनवरतमुक्तकुसुमैरभ्यर्च्यमा-नमिव पादपैः, आबद्धपल्लवाञ्जलिभि[4]रुपास्यमानमिव विटपैः, उटजाजिरप्रकीर्णशुष्य-च्छ्यामाकम्, उपसंगृहीतामलकलवली[5]कर्कन्धूकदलीलकुचचू[6]तपनसतालीफलम्, अध्ययनमुखरबटुजनम्, अनवरतश्रवणगृहीतवषट्कारवाचालशुककुलम्, अनेकसारि-

---

मावृतम्। अथ क्रमेण वाप्या विशेषणानि। आसन्नवर्तिनीभिः समीपसंस्थिताभिस्तपोधनै-स्तापसैः संपर्कः संबन्धस्तस्मादिवापगतकालुष्याभिर्दूरीभूतमालिन्याभिस्तरंगपरंपरासु कल्लोल-वीथिषु संक्रान्ताः प्रतिबिम्बिता रविबिम्बस्य सूर्यबिम्बस्य पङ्क्तयो यासु ताभिः तरङ्गपरंपरासु प्रतिबिम्बपरंपरेत्यर्थः। तज्जनितशोभान्तरं वर्णयन्नाह—तापसेति। तापसदर्शनार्थमागता प्राप्ता या सप्तर्षिमाला तया विगाह्यमानाभिरिव विलोड्यमानाभिरिव। एतेन सप्तर्षीणां सूर्यप्रतिबिम्बसादृश्यं ध्वनितम्। किं कुर्वतीभिः। निशासु रात्रिषु विकचकुमुदवनं विनिद्रकैरव-वनमृषिजनं मुनिजनमुपासितुं सेवितुमवतीर्णमुपरिष्टादागतं ग्रहगणमिव नक्षत्रवृन्दमिवोद्व-हन्तीभिर्धारयन्तीभिः। एतेन कुमुदवनग्रहणयोः स्वच्छत्वसारूप्याद्रूपकमुक्तम्। पुनः प्रकारान्त-रेण तमेव विशेषतो विशिनष्टि—अनिलेति। अनिलेति वायुनावनमितं शिखरं प्रान्तं यासां ताभिरेवंभूताभिर्वनलताभिररण्यवल्लीभिः प्रणम्यमानमिव नमस्क्रियमाणमिव। अनवरतेति। अनवरतं मुक्तानि कुसुमानि यैरेवंभूतैः पादपैर्वृक्षैरभ्यर्च्यमानमिव पूज्यमानमिव। आबद्धेति। आबद्धा रचिताः पल्लवा एवाञ्जलय एवंभूतैर्विटपैर्वृक्षैरुपास्यमानमिव सेव्यमानमिव। उटजेति। उटजाजिरेषु पर्णशालाङ्गणेषु प्रकीर्णा विक्षिप्ताः शुष्यन्तः शोषं प्राप्नुवन्तः श्यामाका धान्यविशेषा यस्मिन्स तम्। उपसंगृहीतेति। उपसंगृहीतान्यात्तान्यामलकं धात्री, लवली लताविशेषः, कर्कन्धूर्बदरी कदली रम्भा, लकुचो वृक्षविशेषः, चूत आम्रः, पनसः प्रसिद्धः,

---

मानो प्रविष्ट हो गई थीं, तपस्वियों के दर्शनार्थ आये हुए सप्तर्षि मण्डल जिनमें अवगाहन सा कर रहे थे, उनमें रात के समय विकसित कुमुद के वन ऐसे लगते थे मानो ऋषियों की उपासना करने के लिये ग्रहगण ही उतर आये हों। पवन के प्रभाव से झुकाई गई चोटियों वाली वन लतायें मानो जिसको प्रणाम कर रही थीं। निरन्तर पुष्प-वर्षी पादप जिसकी मानो अर्चना कर रहे थे। वृक्षों की शाखायें अपनी पल्लव रूपी अंजलि को बाँधकर जिसकी उपा-सना सी कर रही थीं। जहाँ ऋषि-कुटीरों के आँगन में सावाँ सूखने के लिये पसारा हुआ था। जहाँ आँवला, लवली, बेर, केला, बड़हर, आम, कटहल और ताल के फलों का संग्रह किया गया था। जहाँ ब्रह्मचारी वेदाध्ययन करते हुये मुखर थे, निरन्तर सुनने के कारण याद किये गये 'वषट्' के उच्चारण को करने वाले शुकगण जहाँ वाचाल हो रहे थे। जहाँ अनेक

---

१ रविपङ्क्तिभिः, २ अतिविकच, ३ शिखाभिः, ४ पल्लव पुटाञ्जलिभिः, ५ लवङ्गकर्कन्धू, ६ चूततालफलम्;

कोद्घुष्यमाणसुब्रह्मण्यम्, अरण्यकुक्कुटोपभुज्यमानवैश्वदेवबलिपिण्डम्, आसन्नवापी-कलहंसपोतभुज्यमाननीवारबलिम्, एणीजिह्वापल्लवोपलिह्यमानमुनिबालकम्, अग्निकार्यार्धदग्धमिस[1]मिसायमानस[2]मित्कुशकुसुमम्, उपलभग्नना[3]लिकेररसस्निग्धशिलातलम्, अचिरक्षुण्णवल्कलरसपाटलभूतलम्, रक्तचन्दनोपलिप्तादित्यमण्ड[4]लकनिहितकरवीरकुसुमम् इतस्ततो विक्षिप्तभस्मलेखा[5]कृतमुनिजनभोजनभू[6]मिपरिहारम्, परिचितशाखा-

---

ताली तृणराजः, एतेषां फलानि यस्मिन्स तम्। अध्ययनेति। अध्ययनेन वेदपठनेन मुखरा वाचाला बटुजना ब्रह्मचारिजना यस्मिन्स तम्। अनवरतेति। अनवरतं निरन्तरं श्रवणगृहीताः श्रुतिमात्रेण शिक्षिता ये वषट्कारशब्दास्तैर्वाचालं शुककुलं यस्मिन्स तम्। अनेकेति। अनेकाभिः तारिकाभिः पीतपादाभिरुद्घुष्यमाणमुच्चैः स्वरेण पठ्यमानं सुब्रह्मण्यं वेदो यस्मिन्स तम्। अरण्येति। तत्कुक्कुटैश्चरणायुधैः उपभुज्यमानो भक्ष्यमाणो वैश्वदेवस्य देवयज्ञस्य बलिपिण्डो हन्तकारो यस्मिन्स तम्। आसन्नेति। आसन्ना समीपस्था या वापी दीर्घिका तस्याः कलहंसपोतैः कादम्बशिशुभिर्भुज्यमानो भक्ष्यमाणो नीवारबलिर्यस्मिन्स तम्। एणीति। एण्यो मृग्यस्तासां जिह्वा रसना एव पल्लवास्तैरुपलिह्यमाना आस्वाद्यमाना मुनिबालका यस्मिन्स तम्। अग्नीति। अग्निकार्ये होमेऽर्धदग्धान्यर्धभस्मीभूतान्यत एव मिसमिसायमानानि मिसमिसेतिशब्दमाचरमाणानि समित्कुशकुसुमानि यस्मिन्स तम्। उपेति। उपले दृषदि भग्नानि द्वैधीकृतानि नालिकेराणि लाङ्गलीफलानि तेषां यो रसो द्रवस्तेन स्निग्धं चिक्कणं शिलातलं यस्मिन्स तम्। अचिरेति। अचिरक्षुण्णानि तत्कालमर्दितानि यानि वल्कलानि तेषां रसस्तेन पाटलं श्वेतरक्तं भूतलं यस्मिन्स तम्। रक्तेति। रक्तचन्दनं पत्राङ्गं तेनोपलिप्तमालिप्तमालिखितं यदादित्यमण्डलमेव मण्डलकं तस्मिन्निहितानि स्थापितानि करवीरो हयमारस्तस्य कुसुमानि पुष्पाणि यस्मिन्स तम्। इतस्तत इति। इतस्ततो विक्षिप्तं यद्भस्म भूतिस्तस्य लेखा तया कृतो विहितो मुनिजनभोजनभूमेः परिहारो निषेधो यस्मिन्। भस्मलेखाङ्कितायां

सारिकायें (मैंने) वेद का उद्घोष कर रही थीं। जहाँ बलि वैश्वदेव के ग्रास को जंगली मुर्गे खा रहे थे। जहाँ बलिके रूप में अर्पित नीवार को समीपवर्ती वापियों में रहने वाले कलहंसों के बच्चे खा रहे थे। जहाँ मुनियों के बच्चों को मृगियाँ अपनी जीभ के अग्रभाग से चाट रही थीं। जहाँ अग्नि होत्र में अधजली लकड़ियाँ, कुश और कुसुम सिमसिमाहट की आवाज कर रहे थे। जहाँ के शिलातल पत्थर से तोड़े गये नारियल के रस से स्निग्ध थे। जहाँ की भूमि तत्काल निचोड़े गये वल्कल के रस से अरुण हो गई थी। जहाँ रक्त चन्दन से चित्रित सूर्य मण्डल पर लाल कनेर के फूल चढ़ाये गये थे। जहाँ मुनियों के भोजन स्थल में इतर लोगों के प्रवेश को रोकने के लिये चारों ओर से भस्म की रेखा का मण्डल बना दिया था। जहाँ बूढ़े और अन्धे तपस्वियों को परिचित वानर हाथ पकड़ कर भीतर और बाहर

तालचूतफलम्, १ सिमसिमायमान; सिमिसिमायमान; मिसिमिसायमान, २ कुशसमित्, ३ नारिकेल, ४ मण्डलनिहित, ५ अलंकृत, ६ भूमिभागम्,

मृगक[1]राकृष्टिनिष्कास्यमानप्रवेश्यमानजरदन्धतापसम्, इभ[2]कलभार्धोपभुक्तपतितैः सरस्वतीभु[3]जलताविगलितैः शङ्खवलयैरिव मृणालशकलैः कल्माषितम्, ऋषिजनार्थमेणकैर्विषाणशिखरोत्खन्यमानविविधकन्दमूलम्, अम्बुपूर्णपुष्करपुटैर्वनकरिभिरापूर्यमाणविटपालवालकम्, ऋषिकुमारकाकृष्यमाणवनवराहदंष्ट्रान्तराललग्नशालूकम्, उपजातपरिचयैः कलापिभिः पक्षपुटपवनसंधुक्ष्यमाणमुनिहोमहुताशनम्, आरब्धामृतचरुचारुगन्धम्, अघर्मपक्वपुरोडाशप[3]रिमलामोदितम्, अविच्छिन्नाज्यधाराहुतिहुत-

भूमौ केनापि नागन्तव्यमिति भावः। यद्वा भस्मनो या लेखा घर्षस्तेन कृतो मुनिजनभोजनभूमेरुच्छिष्टभूमेः परिहारो मार्जनं यस्मिन्। दृश्यते हि भोजनान्ते भस्मना मार्जनं पश्चाद्गोमयेनोपलेपनमिति। परिचितेति। परिचिताः संजातपरिचया ये शाखामृगास्ताम्रमुखाः श्याममुखा वा वानरास्तेषां कराकृष्टया हस्तावलम्बेन निष्काष्यमानाः प्रवेश्यमानाश्च जरन्तोऽन्धाश्च तापसा यस्मिन्। इभेति। मृणालशकलैर्बिसखण्डैः कल्माषितं चित्रितम्। कीदृशैरिव। सरस्वती देवी तस्या भुजलते बाहुलते ताभ्यां विगलितैः स्रस्तैः शङ्खवलयैरिव त्रिरेखकटकैरिव। बिसानां स्वतो भूमिपातो न स्यादित्याह—इभेति। इभकलभानां यदर्धोपभुक्तमर्धचर्वितं तस्मात्पतितैः स्रस्तैः। ऋषीति। ऋषिजनार्थं मुनिजनकृत एणकैर्हरिणैर्विषाणशिखरैः शृङ्गप्रान्तैरुत्खन्यमानानि विविधानि विचित्राणि कन्दमूलानि यस्मिन्। अम्बुपूर्णेति। अम्बुभिर्जलैः पूर्णानि भृतानि पुष्करपुटानि शुण्डाग्राणि। 'शुण्डाग्रं त्वस्य पुष्करम्' इति कोशः। येषामेतादृशैर्वनकरिभिररण्यहस्तिभिरापूर्यमाणानि भ्रियमाणानि विटपानां वृक्षाणामालवालकान्यावापस्थानकानि यस्मिन्। एतेन शाखामृगहरिणगजानामपि बुद्धिपूर्वकयथोचितकार्यकर्तृत्वं सूचितम्। ऋषीति। ऋषिकुमारकैर्मुनिशिशुभिराकृष्यमाणानि वनवराहदंष्ट्रान्तराललग्नानि शालूकान्युत्पलानां कन्दा यस्मिन्। 'उत्पलानां तु शालूकम्' इति कोशः। उपजातेति। उपजातपरिचयैः संजातसंबन्धैः कलापिभिर्मयूरैः पक्षपुटवनेन छदपुटानिलेन संधुक्ष्यमाणः प्रज्वाल्यमानो मुनीनां होमार्थे हुताशनो वह्निर्यस्मिन्स तम्। आरब्धेति। आरब्धो विहितो योऽमृतचरुर्यवौदनस्तस्य चारुः

ले जाया करते थे। जहाँ का स्थान सरस्वती के हाथ से गिरे हुये शंख की चूड़ियों के समान करिपोतों द्वारा आधा खाने के बाद गिरे हुये मृणाल-खण्डों से चित्रित था। जहाँ ऋषियों के लिये हिरन अपनी सींग की नोक से अनेकों प्रकार के कन्द मूल को खोद रहे थे, जहाँ कमल के पत्तों का दोना बनाकर एवं जल से परिपूर्ण कर जंगली हाथी पेड़ों की क्यारियों को भर रहे थे। जहाँ जंगली सूकरों के जबड़ों में संलग्न कमल के कन्दों को ऋषिकुमार खींच रहे थे। जहाँ ऋषियों के होमाग्नि को परिचित मयूर अपने डैनों से हवा करके उद्दीप्त कर रहे थे। जहाँ पकाये जाते हुये अमृतकल्प चरुओं की चारु गन्ध व्याप्त थी। जहाँ अधपके पुरोडाश के परिमल का आमोद फैल रहा था। जहाँ निरन्तर घृतधारा की आहुतियों से अग्नि के झंकार

१ कराकृष्टयष्टि; कराकृष्ट, २ कलभक, बाहुलताविभूषणैः, ३ पुष्पपरिमल,

भुग्ह'ङ्कारमुखरितम्, उपचर्यमाणातिथिवर्गम्, पूज्यमानपितृदैवतम्, 'अर्च्यमानहरिहरपितामहम्, 'उद्दिश्यमानश्राद्धकल्पम्, व्याख्यायमानयज्ञविद्यम् 'आलोच्यमानधर्मशास्त्रम्, 'वाच्यमानविविधपुस्तकम्, विचार्यमाणसकलशास्त्रार्थम्, आरभ्यमाणपर्णशालम्, उपलिप्यमानाजिरम्, 'उपमृज्यमानोटजाभ्यन्तरम्, आबध्यमानध्यानम्, साध्यमानमन्त्रम्, अभ्यस्यमानयोगम्, 'उपहूयमानवनदेवताबलिम्, निर्वर्त्यमानमौञ्ज'मेखलम्, 'क्षाल्यमानवल्कलम्, उपसंगृह्यमाणसमिधम्, १०उपसंस्क्रिय-

मनोहरो गन्धो यस्मिन्स तम्। अर्धेति। अर्धपक्वो यः पुरोडाशः पूर्वोक्तस्तस्य परिमलो गन्धस्तेनामोदितं हर्षजननशीलम्। अवीति। अविच्छिन्नात्रुटिता या आज्यधारा घृतधारा तया हुतिर्हवनं तया यो हुतभुग्हङ्कारोऽग्निशब्दस्तेन मुखरितं वाचालितम्। उपचर्येति। उपचर्यमाणः पर्युपास्यमानोऽतिथिवर्गो यस्मिन्। पूज्येति। पूज्यमानानि पितृदैवतानि पितरो यस्मिंस्तम्। अर्च्येति। अर्च्यमानाः पूज्यमाना हरिः कृष्णः, हर ईश्वरः, पितामहः पितुः पिता ब्रह्मा, एते यस्मिन्। उद्दिश्येति। उद्दिश्यमान उद्देशपूर्वकं क्रियमाणः श्राद्धकल्पः श्राद्धाचारो यस्मिन्स तम्। व्याख्येति। व्याख्यायमानार्थद्वारा निरूप्यमाणा यज्ञविद्या यागविद्या यस्मिन् स तम्। आलोच्येति। आलोच्यमानं मनसि विचार्यमाणं धर्मशास्त्रं स्मृत्यादिकं यस्मिन्स तम्। वाच्येति। वाच्यमानानि परिभाष्यमाणानि विविधान्यनेकप्रकाराणि पुस्तकानि शास्त्राणि यस्मिन्स तम्। विचार्येति। विचार्यमाणो युक्त्या स्थाप्यमानः सकलशास्त्रार्थो यस्मिन्। आरभ्येति। आरभ्यमाणा नवीना क्रियमाणा पर्णशालोटजो यस्मिन्। उपलीति। उपलिप्यमानानि गोमयादिनाजिराणि प्रालेयानि यस्मिन्। उपेति। उपमृज्यमानानि प्रसार्यमाणानि उटजाभ्यन्तराणि पर्णशालामध्यानि यस्मिन्। आबध्येति। आबध्यमानं ध्यानमेकप्रत्ययसंततिर्यस्मिन्। साध्येति। साध्यमानो होमादिना स्वायत्तीक्रियमाणो मन्त्रो देवाधिष्ठातृको यस्मिन्। अभ्यस्येति। अभ्यस्यमान उद्योगविषयीक्रियमाणो योगश्चित्तवृत्तिनिरोधो यस्मिन्। उपेति। उपहूयमान उपढौक्यमानो वनदेवतायै बलिर्यस्मिन्। निर्वर्त्येति। निर्वर्त्यमाना

की मुखरता व्याप्त थी। जहाँ अतिथियों का सत्कार किया जा रहा था। जहाँ पितरों की पूजा की जा रही थी। जहाँ ब्रह्मा, विष्णु और महेश की अर्चना की जा रही थी। जहाँ श्राद्धविधियों का उद्देशक्रम से अनुष्ठान चल रहा था। जहाँ यज्ञविद्या की व्याख्या चल रही थी। जहाँ धर्मशास्त्रों की आलोचनायें चल रही थीं। जहाँ अनेकों ग्रन्थों का पारायण किया जा रहा था। जहाँ सभी शास्त्रों के अर्थों का विचार किया जा रहा था। जहाँ पर्णशालाओं का निर्माण शुरू किया जा रहा था। जहाँ आँगन लीपे जा रहे थे। जहाँ कुटीरों का अभ्यन्तर साफ किया जा रहा था। जहाँ ध्यान लगाया जा रहा था। जहाँ मन्त्रों की साधना चल रही थी। जहाँ योग का अभ्यास किया जा रहा था। जहाँ गृहदेवताओं के लिये बलि समर्पित की जा रही थी। जहाँ मूँज की मेखलायें बनाई जा रही थीं। जहाँ वल्कल धोये जा रहे थे। जहाँ समिधाओं का

१. हुंकार; उग्रहुंकार, २. अभ्यर्च्यमान, ३. उपदिश्यमान, ४. अवलोक्यमान, ५. पठ्यमान, ६. अपसृज्यमान, ७. उपह्रियमाण, ८. मुञ्ज, ९. प्रक्षाल्यमान, १०. संस्क्रियमाण।

माणकृष्णाजिनम्, [1]गृह्यमाणगवेधुकम्, [2]शोष्यमाणपुष्करबीजम्, ग्रथ्यमानाक्षमालम्, [3]न्यस्यमानवेत्र[4]दण्डम्, [5]सत्क्रियमाणपरिव्राजकम्, आपूर्यमाणकमण्डलुम्, अदृष्टपूर्वं कलिकालस्य, अपरिचितमनृतस्य, अश्रुतपूर्वमनङ्गस्य, अब्जयोनिमिव त्रिभुवनवन्दितम्, असुरारिमिव प्रकटित[6]नरहरिवराहरूपम्, सांख्यमिव कपिलाधिष्ठितम्, [7]मधुरोपवनमिव बलावलीढदर्पितधेनुकम्, उदयनमिवानन्दितवत्सकुलम्, किंपुरुषा-

---

निष्पाद्यमाना मौञ्जमेखला यस्मिन्। क्षाल्येति। क्षाल्यमानानि बल्कलकानि यस्मिन्। उपेति। उपसंगृह्यमाणा उपादीयमानाः समिधो यस्मिन्। उपेति। उपसंस्क्रियमाणं छगणादिना शुद्धीक्रियमाणं कृष्णाजिनं मृगचर्म यस्मिन्। गृह्येति। गृह्यमाणो गवेधुको धान्यविशेषः कन्दो वा यस्मिन्। शोष्येति। शोष्यमाणानि शोषं नीयमानानि पुष्करणबीजानि कमलफलानि यस्मिन्। ग्रथ्येति। ग्रथ्यमाना अक्षमाला रुद्राक्षमाला यस्मिन्। न्यस्येति। न्यस्यमानः स्थाप्यमानो वेत्रदण्डो यस्मिन्। सदिति। सत्क्रियमाणाः परिव्राजका यस्मिन्। आपूर्येति। आपूर्यमाणानि जलेन भ्रियमाणानि कमण्डलूनि यस्मिन्। अदृष्टेति। कलिकालस्य कलियुगस्यादृष्टपूर्वमनवलोकितपूर्वम्। कलिप्रवेशायोग्यमित्यर्थः। एतेन सर्वथा पातकाभावो व्यज्यते। अपरीति। अनृतस्यासत्यस्यापरिचितमसंनिहितम्। अश्रुतेति। अनङ्गस्य कामस्याश्रुतपूर्वमनाकर्णितपूर्वम्। मदनोद्दीपकत्वाभावात्। अब्जेति। अब्जयोनिमिव ब्रह्माणमिव त्रिभुवनवन्दितं अभिवादितम्। पक्षे वन्दितं श्रेष्ठम्। असुरारीति। असुरारिर्विष्णुस्तद्वदिव प्रकटितानि नरो नरनारायणो हरिश्च नृहरिः। अथवा नरहरिर्नृसिंहो वराहश्च तेषां रूपाणि येन स तम्। पक्षे प्रकटितानि नरेभ्यो हरिवराहरूपाणि येन स तम्। सांख्येति। सांख्यं कापिलदर्शनं तदिव कपिलमुनिनाधिष्ठितमाश्रितम्। तत्प्रणीतत्वात्। पक्षे कपिलाभिर्गोभिरधिष्ठितम्। मधुरेति।

संग्रह किया जा रहा था। जहाँ कृष्ण मृगों के चमड़ों का संस्कार किया जा रहा था। जहाँ विशेष प्रकार की घास अथवा कन्द का संग्रह किया जा रहा था। जहाँ कमल के बीज सुखाये जा रहे थे। जहाँ मालायें गूँथी जा रही थीं। जहाँ बेंत की छड़ियाँ रखी जा रही थीं। जहाँ परिव्राजकों (संन्यासियों) का सत्कार किया जा रहा था। जहाँ कमण्डलु भरे जा रहे थे। जिसे कलियुग ने पहले कभी नहीं देखा था। झूठ का जिससे परिचय नहीं था। जहाँ काम का नाम तक नहीं सुना गया था। जो ब्रह्मा के समान त्रिभुवन से वन्दित था। जो नारायण के समान था—नारायण नृसिंह और वराह के रूप में अवतीर्ण हुए थे यहाँ नर, सिंह और वराहों का रूप प्रकट था। जो सांख्य के समान था—सांख्य कपिल मुनि से प्रतिष्ठित है और यह कपिला (गायों) से अधिष्ठित है। जो मथुरा के उपवन के समान था—मथुरा के वन में बलराम ने दृप्त धेनुक नामक राक्षस को मारा था और यहाँ बलशाली एवं गर्वीले गोवंश रहते हैं। जो उदयन के समान था—उदयन ने वत्सकुल को आनन्दित किया था और यहाँ बछड़ों के वृन्द सानन्द थे। जो किन्नरों के साम्राज्य के समान था—

---

१. निगृह्यमाण, २. पोष्यमाण, ३. गृह्यमाण त्रिपुण्ड्रकपूर्यमाण, ४. त्रिदण्डकम्, ५. संस्क्रियमाण, ६. वराहनरसिंह, ७. मधुरोपवनम्,

धिराज्यमिव मुनिजनगृहीतकल[1]शाभिषिच्यमानद्रुमम्, निदाघसमयावसानमिव प्र[2]-त्यासन्नजलप्रपातम्, जलधरसमयमिव वनगहनमध्यसुखसुप्त[3]हरिम्, [4]हनूमन्तमिव शिलाशक[5]लप्रहारसंचूर्णिताक्षास्थिसंचयम्, खाण्डवविनाशोद्यतार्जुनमिव प्रारब्धाग्नि-कार्यम्, सुरभिविलेपनधरमपि [6]सततविर्भूतहव्यधूमगन्धम्, [7]मातङ्गकुलाध्यासितमपि

मधुरा मधूपघ्नं तस्योपवनमिव द्वादशवनेषु गर्भितं वनं तद्वदिव बलावलीढो बलवान्दर्पितो दर्पयुक्तो धेनुको दैत्यो यस्मिन्। पक्षे बलावलीढाः बलयुक्ता दर्पिता धेनवो गावो यस्मिन्। उदयनेति। उदयनं राजानमिवानन्दितं वत्सकुलं येन। वत्सोऽत्र राजा पाण्डवकुलसमुत्पन्नः पक्षे वत्सस्तर्णकस्तस्य कुलं समुदायः। किंपुरुषेति। किंपुरुषः किंनरस्तस्याधिराज्यं प्रभुत्वं तदिव मुनिजनैर्गृहीता ये कलशास्तैरभिषिच्यमानो द्रुमोनाम राजा यस्मिन्। किंनराणां द्रुमो नाम राजाभूदिति प्रसिद्धिः। पक्षे द्रुमा वृक्षाः। निदाघेति। ग्रीष्मसमयावसानमिव शुक्रमासमिव प्रत्यासन्नः समीपस्थो जलप्रपातः प्रवर्षः यस्मिन्। पक्षे जलप्रपातो निर्झरः। जलधरेति। जलधरसमयमिव पर्जन्यकालमिव वनस्य पानीयस्य यद्गहनं गम्भीरं मध्यमभ्यन्तरप्रदेशस्तत्र सुखेन सुप्तो निद्रां प्राप्तो हरिर्विष्णुर्यस्मिन्। प्रावृषि विष्णुः समुद्रे शेत इति प्रसिद्धम्। पक्षे वनस्यारण्यस्य गहनानि गह्वराणि तेषु सुप्ता हरयः सिंहा यस्मिन्। हन्विति। हनूमन्त-मिवाञ्जनीसुतमिव शिलाशकलप्रहारेण संचूर्णितोऽक्षनाम्नो रावणपुत्रस्यास्थिसंचयो येन स तम्। पक्षे संचूर्णितो योऽक्षो विभीतकस्तस्यास्थिसंचयो मध्यप्रदेशसमूहो यस्मिन्। खाण्डवेति। खाण्डवनाम्नो वनस्य यो विनाशस्तत्रोद्यत उद्योगवान्योऽर्जुनः फाल्गुनस्तमिव

किन्नर राज्य में मुनियों द्वारा गृहीत घड़े से द्रुमों का सेचन कराया गया था और यहाँ भी मुनि-मण्डली घड़े लेकर वृक्षों का सिंचन किया करती थीं। जो ग्रीष्मकाल के अन्त के समान था— ग्रीष्म के अन्त में जल की प्रबल वर्षा सन्निहित रहती है और यहाँ जल के निर्झर समीप में विद्यमान थे। जो बरसात के समय जैसा था—वर्षाकाल में समुद्र के अन्दर भगवान् सो जाते हैं और यहाँ घने जंगलों के मध्य में सिंह सोते रहते थे। जो हनुमान् के समान था—हनुमान् ने पत्थरों के टुकड़ों से प्रहार करके अक्षयकुमार की हड्डियों को चकनाचूर कर दिया था और यहाँ शिला-खण्डों के प्रहार से हर्रेतकी का आन्तरिक करीर भाग तोड़ा जा रहा था। जो खाण्डव वन को विनष्ट करने के लिये उद्यत अर्जुन के समान था—अर्जुन ने भी आग लगा दी थी और यहाँ अग्निहोत्रादि चलते रहते थे। [अब्जयोनि····प्रारब्धाग्नि कार्यम् तक पूर्णोपमा का सौन्दर्य दर्शनीय है—इसके आगे विरोधाभास की छटा देखिये] जो सुरभिविलेपन=सुगन्धित द्रव्यों का लेप या गायों के गोबर से लिपाई को धारण करके भी सतत प्रकट रूप में हव्य के धुएँ की गन्ध वाला था—परिहार—जो गोमय से उपलिप्त था और हविष् की आहुतियों से निकलने वाले धुयें के सौरभ से सुरभित था। जो मातंग=चाण्डालों के कुलों का आश्रय होने पर भी पवित्र

---

१. जलकलशा, २. आसन्न, ३. प्रसुप्त, ४. अनिलसुतम्, ५. शकलचूर्णित, ६. आविर्भूतधूमगन्धम्, ७. मातङ्गक,

पवित्रम्, उल्लसितधूमकेतुश[1]तमपि प्रशान्तोपद्रवम्, परिपूर्णद्विजपतिमण्डलसनाथमपि सदासंनिहिततरुगहनान्धकारम्, अतिरमणीयमपरमिव ब्रह्मलोकमाश्रममपश्यम्।

यत्र च मलिनता हविर्धूमेषु न चरितेषु, मुखरागः शुकेषु न कोपेषु, तीक्ष्णता कुशाग्रेषु न स्वभावेषु, चञ्चलता कदलीदलेषु न मनःसु, चक्षूरागः कोकिलेषु न परकलत्रेषु, कण्ठग्रहः कमण्डलुषु न सुरतेषु, मेखलाबन्धो व्रतेषु नेर्ष्याकलहेषु,

---

प्रारब्धं विहितमग्निकार्यं देवसंतर्पणं यस्मिन्। पक्षेऽग्निकार्यं होमः। सुरभीति। सुरभि सुगन्धि यद्विलेपनमङ्गरागस्तद्वरमपि सततं निरन्तरमाविर्भूतः प्रकटितो हव्यं सुरेभ्यो दातव्यं तस्य धूमगन्धो यस्मिन्निति विरोधः। तत्परिहारपक्षे सुरभेर्गोः विलिप्यतेऽनेन भूरिति विलेपनं गोमयं यस्यामेतादृशी धरा भूर्यस्मिन्नित्यर्थः। मातङ्गेति। मातङ्गस्य यत्कुलं तेनाध्यासितमपि तदाश्रितमपि पवित्रं पावनमिति विरोधः। तत्परिहारस्तु मातङ्गकुलानि हस्तियूथानीत्यर्थात्। उल्लसितेति। उल्लसितमुल्लासं प्राप्तं धूमकेतुशतं यस्मिन्नेवंभूतमपि प्रशान्तोपद्रवमिति विरोधः। तत्परिहारस्तु धूमकेतवो वह्नय इत्यर्थात्। परीति। परिपूर्णो न न्यून एवंविधो यो द्विजपतिश्चन्द्रस्तस्य मण्डलं तेन सनाथमपि सहितमपि सदा संनिहित-आसन्नवर्ती तरुगहनेष्वन्धकारो यस्मिन्निति विरोधः। तत्परिहारस्तु परिपूर्णा ज्ञानेन भृता ये द्विजपतयो ब्राह्मणास्तेषां मण्डलं समूहमित्यर्थात्। अतिरमणीयमत्यन्तमनोहारि—अपरेति। अपरं भिन्नमिव ब्रह्मलोकं सुरलोकम्। अन्वयस्तु प्रागेवोक्तः।

अथ पुनर्विरोधाभासप्रदर्शनपूर्वकमाश्रममाहात्म्यं प्रदर्शयति—यत्र चेति। 'मूलानाम-धोगतिः' एतत्पर्यन्तं प्रघट्टकः। मलिनतेति। हविःसान्नाय्यं तस्य धूमेषु मलिनता मालिन्यम्। चरितेष्वाचारेषु न, कौलीन्यलक्षणं तदित्यर्थः। मुखराग इति। शुकेषु कीरेषु मुखरागो मुखारुण्यम्। कोपेष्विति निमित्तसप्तमी। कोपनैमित्तिकं न मुखे वैरूप्यमित्यर्थः। तीक्ष्णतेति। कुशाग्रेषु दर्भप्रान्तेषु तीक्ष्णता चर्मास्थिभेदनसमर्थः शक्तिविशेषः। स्वभावेषु प्रकृतिषु न

था। परिहार—मातंग=हाथी। जहाँ सैकड़ों धूमकेतुओं के उल्लसित रहने पर भी उपद्रव शून्य था—परिहार धूमकेतु=अग्नि सैकड़ों यज्ञशालाओं में उल्लसित था। जो पूर्णचन्द्र-मण्डल से अलंकृत होने पर भी घने वृक्षों के गहन अन्धकार से सतत युक्त था। परिहार—श्रेष्ठ ब्राह्मणों का मण्डल परिपूर्ण तथा आश्रम को सनाथ किये हुए था।

जिस आश्रम में मलिनता केवल होम के धुयें में थी किसी के चरित्र में नहीं, तोतों के मुँह में ही आरुण्य रहता था क्रोध के कारण दूसरे किसी का मुह लाल नहीं होता था, तीक्ष्णता (तेजी) केवल कुश के अग्रभाग में थी किसी के स्वभाव में नहीं, चंचलता केवल केले के पत्ते में थी किसी के मन में नहीं, केवल कोयलों की आँखों में राग=रक्तिमा थी परस्त्रियों को देखने का अनुराग किसी को नहीं था, कमण्डलुओं का ही गला पकड़ा जाता था मैथुन के प्रसंग में किसी का कण्ठाश्लेष नहीं होता था, मेखला का बन्धन केवल व्रतों में होता था

---

१. सहस्रम्,

स्तनस्पर्शो होमधेनुषु न [1]कामिनीषु, पक्षपातः [2]कृकवाकुषु न विद्याविवादेषु, भ्रान्तिरनलप्र[3]दक्षिणासु न [4]शास्त्रेषु, वसुसंकीर्तनं दिव्यकथासु न [5]तृष्णासु, गणना रुद्राक्षवलयेषु न शरीरेषु, मुनिबालनाशः क्रतुदीक्षया न मृत्युना, रामानुरागो रामायणेन न यौवनेन; मुखभङ्गविकारो जरया न धनाभिमानेन।

क्रूरत्वमित्यर्थः। चञ्चलतेति। कदलीदलेषु रम्भापत्रेषु चञ्चलता तरलता। न मनःसु चेतःसु वृत्तिविशेषः। चक्षुरिति। कोकिलेषु परभृत्सु चक्षूरागो नेत्रयोरारुण्यम्। परकलत्रेषु परस्त्रीषु नाभिलाष इत्यर्थः। कण्ठग्रह इति। कमण्डलुषु कुण्डिकासु कण्ठग्रहः कण्ठे ग्रहणम्। सुरतेषु मैथुनेषु न कण्ठालिङ्गनम्। मुनीनां तदभावादिति भावः। मेखलेति। व्रतेषु नियमेषु मेखलाबन्धो मौञ्जीबन्धनम्। ईर्ष्याकलहेष्वसूयाविग्रहेषु न शृङ्खलाबन्धनम्। स्तनेति। होमधेनुषु होमनैमित्तिकधेनुषु स्तनस्पर्शो दोहनम्। कामिनीषु ललनासु न कुचमर्दनम्। पक्षपात इति। कृकवाकुषु कुक्कुटेषु पक्षपातः पत्राणां पतनम्। न विद्याविवादेषु शास्त्रकथासु सोपाधिकोऽङ्गीकारः। अन्यस्य पक्षिणस्तथा युद्धे पक्षपातो नास्तीति कुक्कुटग्रहणम्। भ्रान्तिरिति। अनलप्रदक्षिणासु भ्रान्तिः परिवृत्तिः। शास्त्रेषु न भ्रान्तिर्मिथ्याज्ञानम्। वस्विति। दिव्यकथासु भारतकथासु वसवो गणदेवाः पितृगणा वा तेषां संकीर्तनं सम्यक्प्रकारेण कथनम्। न तृष्णासु लिप्सासु वसु द्रव्यं तस्य संकीर्तनं प्रशंसनम्। गणनेति। रुद्राक्षवलयेषु रुद्राक्षस्मरण्यां गणना संख्या। न शरीरेषु देहेषु गणनाऽऽदरः। अत्यन्तनिस्पृहत्वात्तत्र निरपेक्षेत्यर्थः। मुनीति। बवयोरैक्यान्मुनीनां वालाः केशास्तेषां नाशो ध्वंसः क्रतुदीक्षया यज्ञदीक्षया। न मृत्युना बालनाशः शिशुनाशः। पुरुषायुषजीवित्वात्तेषाम्। रामेति। रामो दाशरथिस्तस्मिन्ननुराग आराध्यत्वेन ज्ञानं रामायणेन रामचरित्रेण। तद्ग्रन्थश्रवणेन तदुपरि रागाधिक्यमित्यर्थः। न तु यौवनेन तारुण्येन रामानुरागो रामाः स्त्रियस्तास्वनुरागो विषयेच्छा। मुखेति। मुखे भङ्गविकारस्त्रिवलीविकृतिर्जरया वार्धक्येन। धनाभिमानेन द्रव्यस्मयेन मुखभङ्ग आस्यमोटनादिविकृतिर्नेत्यर्थः।

ईर्ष्यापूर्ण कलहों में जंजीर का बन्धन कभी नहीं होता था, होमधेनुओं के ही स्तनों का स्पर्श किया जाता था कामिनियों के नहीं, पक्षपात (डैने का गिरना) केवल मुर्गों का ही होता था, शास्त्रों के अर्थ विचार की वाद गोष्ठी में नहीं, भ्रान्ति (परिभ्रमण-घूमना) अग्नि की प्रदक्षिणा में ही होती थी, शास्त्र के अर्थ निरूपण मे (भ्रान्ति भ्रम) नहीं, दिव्य कथाओं में ही वसु (आठों वसुओं) का संकीर्तन होता था तृष्णा के प्रसंग मे (वसु=धन) नहीं, रुद्राक्ष की माला पर ही गणना होती थी तप आदि साधनों के प्रसंग में शरीर की गणना=परवाह नहीं की जाती थी, यज्ञ में दीक्षित होने से ही मुनियों के बालों केशों का नाश वपन होता था मृत्युवश मुनियों के बालों-बालकों का नाश नहीं होता था, रामायण के कथा-प्रसंग से राम में अनुराग होता था जवानी के तूफान से रामाओं में अनुराग नहीं होता था, मुख की भँगियों में विकृति वृद्धावस्था के कारण ही होती थी धनाभिमान से किसी का मुह टेढ़ा नहीं होता था।

---

१ वनितासु, २ कुक्कुटेषु, ३ प्रदक्षिणेषु, ४ शास्त्रार्थेषु, ५ धनतृष्णासु।

यत्र च महाभारते शकुनिवधः, पुराणे वायुप्रलपितम्, [1]वयःपरिणामेन द्विजपतनम्, उपवनचन्दनेषु जाड्यम्, अग्नीनां भूतिमत्त्वम्, एणकानां [2]गीतश्रवण-व्यसनम्, [3]शिखण्डिनां [4]नृत्यपक्षपातः, [5]भुजंगमानां भोगः, कपीनां श्रीफलाभिलाषः, मूलानामधोगतिः।

यत्र चेति। यस्मिन्स्थले महाभारते शास्त्रे शकुनिवधो दुर्योधनराज्ञो मातुलस्य विनाशः श्रूयते। न तत्र शकुनिवधः पक्षिवधः। पुराणेति। पुराण इतिहासादौ वायोर्वायुदेवतायाः प्रलपितं जल्पितम्, श्रूयते इति शेषः। नतु वायुना वायुविकारेणोन्मादादिना प्रलपितं यथाकथंचिज्जल्पितं यत्र नाभूत्। वय इति। वयःपरिणामेन बार्धकेन द्विजानां दन्तानां पतनं पातः। न तु द्विजानां ब्राह्मणानां पतनं स्वाचाराद्-भ्रंशः। यत्र नेति सर्वत्रानुषङ्गः। उपेति। उपवनं समीपवनं तत्र चन्दनतरवस्तेषु जाड्यं शैत्यम्। न त्वाश्रमवर्तिमुनिजनेषु जाड्यं प्रज्ञाहीनत्वम्। अग्नीनामिति। अग्नीनां वह्नीनां भूतिमत्वं भस्मवत्त्वम्। न तु मुनीनां भूतिः संपत्तद्वत्त्वम्। एणकेति। एणकानां मृगाणां गीतं गानं तस्य श्रवणं तत्र व्यसनमासक्तिः। न मुनीनां तच्छ्रवणाभिलाषातिरेकः। शिखण्डीति। शिखण्डिनां मयूराणां नृत्ये ताण्डवे पक्षपातश्छदपतनम्। न तु मुनीनां नृत्यविषये पक्षपातोऽङ्गीकारः। भुजंगमेति। भुजंगमानां सर्पाणां भोगः शरीरम्। 'भोगोऽहिकायः' इति कोशः। न तु मुनीनां भोगः स्त्र्यादिजनितं सुखम्। कपीनामिति। कपीनां वानराणां श्रीफलाभिलाषः श्रीफलानि बिल्वीफलानि तेष्वभिलाषो वाञ्छाविशेषः। न तु मुनीनां श्रीर्लक्ष्मीस्तस्याः फलानि गृहकारापणादीनि तत्राभिलाषस्तीव्राध्यवसायः। मूलाना-मिति। मूलानां जटानामधोगतिरधःसंयोगः न त्वाश्रमवर्तिमुनीनामधोगतिर्नरकपातः।

जहाँ शकुनि (एक राजा तथा पक्षी) का वध केवल महाभारत में ही सुनाई पड़ता था, वायु का प्रलाप (सांनिपातिक प्रलाप तथा वायु देवता का प्रवचन) केवल पुराण में सुनाई पड़ता था, द्विजों का पतन (दाँतों का गिरना तथा द्विजातियों का पतित होना) केवल बुढ़ापे में होता था, जाड्य (शीतलता तथा जडता) केवल उपवन के चन्दनों में ही था, भूतिमत्ता (राखों से युक्त होना तथा ऐश्वर्य सम्पन्नता) केवल अग्नि में दिखाई पड़ती थी, गीत सुनने का व्यसन केवल हिरनों में था, नृत्य में पक्षपात (डैनों का गिरना तथा झुकाव) केवल मयूरों का था, भोगः (बिल्वफल, धन का फल कामोपभोग आदि) की अभिलाषा केवल वानरों में थी और अधोगति (नीचे की ओर जाना तथा पतित होना) केवल वृक्षों के मूलों की होती थी। [यत्र च मलिनता.........अधोगतिः पर्यन्त परिसंख्या अलंकार की छटा सर्वथा दर्शनीय है। परिसंख्या में अन्यार्थ के निषेध से ही सौन्दर्य की किरणें फूटती हैं। वह निषेध कहीं वाच्य-विषया होता है जैसे ऊपर के अंश में = मलिनता होम के धूम में ही थी चरित्र में नहीं, और कहीं वह निषेध व्यंग्यमय दिशा से भासित होता है जैसे महाभारते शकुनिवधः में निषेध्य

१ परिणामे, २ गीतव्यसनम्, ३ शिखण्डिनाम्, ४ गीतनृत्तपक्ष, ५ भुजगानाम्; भुजंगानाम्,

तस्य चैवंविधस्य [1]मध्यभागमण्डलमलंकुर्वाणस्या[2]लक्तकालोहित[3]प[4]ल्लवस्य मुनिजनाल[5]म्बितकृष्णाजिनजलक[6]रकसनाथशाखस्य तापसकु[7]मारिकाभिरालवालदत्त-पीतपिष्ट[8]पञ्चाङ्गुलस्य हरिणशिशुभिः पीय[9]माना[10]लवालकसलिलस्य मुनि-कुमारकाबद्धकुशचीरदाम्नो हरितगोमयोपलेप[11]नविविक्तत[12]लस्य तत्क्षणक्[13]त-कुसुमोपहाररमणीयस्य नातिमहतः परिमण्डलतया विस्तीर्णावकाशस्य

तस्येति। आश्रमस्यैवंविधस्य पूर्वोक्तप्रकारेण वर्णितस्य तस्य यो मध्यभागस्तस्य मण्डलं वर्तुलप्रदेशस्तदलंकुर्वाणस्य रक्ताशोकतरोः कङ्केलिवृक्षस्याधश्छायायाम् उपविष्टं निषण्णं भगवन्तं जाबालिं जाबालिमुनिमपश्यमिति दूरेणान्वयः। अथ जाबालिं वर्णयति—तत्र षष्ठ्यन्तानि तरोर्विशेषणानि द्वितीयान्तानि मुनिविशेषणानीति स्वयमूहनीयम्। अलक्तेति। अलक्तकवद्यावकवल्लोहिता रक्ताः पल्लवा यस्य स तथा तस्य। मुनीति। मुनिजनैस्ताप-सजनैरालम्बिताः स्थापिताः कृष्णाजिनानि कृष्णमृगचर्माणि जलकरकाः पात्रविशेषास्तैः सनाथा सहकृता शाखा यस्य स तथा तस्य। तापसेति। तापसकुमारिकाभिर्मुनिकन्या-भिरालवाले मूलप्रदेशे दत्ताः पीतपिष्टस्य हरिद्राचूर्णस्य पञ्चाङ्गुलयो हस्तबिम्बा यस्मिन्स तथा तस्य। हरिणेति। हरिणशिशुभिर्मृगबालकैः पीयमानमास्वाद्यमानमालवालकस्य सलिलं यस्य स तथा तस्य। मुनीति। मुनिकुमारकैराबद्धं कुशचीरदाम यस्य स तथा तस्य। हरितेति। हरितमशुष्कं यद्गोमयं छगणं तेनोपलेपनं तेन विविक्तं पूतं तलमधोभागो यस्य स तथा तस्य। तदिति। तत्क्षणे तदात्वे कृतो विहितो यः कुसुमोपहारः पुष्पढौकनं तेन रमणीयस्य मनोहरस्य। नातिमहतो नातिदीर्घस्य परिमण्डलं समन्तात्परिमाणं तस्य

पक्षियों के वध का अभाव व्यंग्य रूप में ही ज्ञात होता है। ऐसे स्थलों में श्लेष पृष्ठभूमि में विराजमान रहता है।]

इस प्रकार के उस आश्रम में मैंने महर्षि जाबालि को देखा जो आश्रम के मध्यभाग के घेरे को अलंकृत करने वाले रक्त अशोक तरु के नीचे छाया में बैठे हुए थे, उस अशोक तरु के पल्लव अलक्तक के समान लाल थे, उसकी शाखाओं पर मुनिजनों ने कृष्ण मृगचर्म तथा जलपूर्ण कमण्डलु लटका दिये थे, उसकी क्यारी के चारों ओर तपस्वीजनों की कन्याओं ने पीले रंग के पिष्टातक (पिठार-चावल को भिगाकर पीसा गया गाढ़ा द्रव अथवा आटा के गाढ़े घोल) में रँगी पाँचों उँगलियों की छाप लगा दी थी, उसके आलवाल में सुरक्षित जल को मृग के छौने पीते रहते थे, मुनि कुमारों ने कुश के चीर की मालाओं से उसे बाँध दिया था, ताजे गोमय (गोबर) के लेपन से वहाँ की भूमि पवित्र हो चुकी थी, सद्यः समर्पित पुष्पोपहार से वह स्थान रमणीय दीख रहा था, यद्यपि वह रक्ताशोक तरु बहुत बड़ा नहीं था

---

१ मध्यभागम्, २ अलक्तक, ३ आलोहित, ४ लोलपल्लवस्य, ५ अवलम्बित, ६ करङ्क, ७ कुमारिकाभिर्दत्त, कन्यकाभिर्मूलभागदत्त, ८ पिष्टातकानेक, ९ आपीयमान; परिपीयमान, १० आलवाल, ११ उपलिप्त, १२भूतलस्य, १३ रचित,

रक्ताशोकतरोरधश्छायायामुपविष्टम्, [1]उग्रतपोभिर्भुवनमिव सागरैः, कनकगिरिमिव [2]कुलपपर्वतैः, क्रतुमिव [3]वैतानिकवह्निभिः, कल्पान्तदिवसमिव रविभिः, कालमिव कल्पैः समन्तान्महर्षिभिः परिवृतम्, [4]उग्रशापकम्पितदेहया प्रणयिन्येव विहितकेशग्रहया क्रुद्धयेव कृतभ्रूभङ्गया मत्तयेवाकुलितगमनया प्रसाधितयेव प्रकटिततिलकया जरया गृहीतव्रतयेव भस्मधवलया धवलीकृतविग्रहम्, आयामिनीभिः पलितपाण्डुराभिस्त[5]पसा विजित्य मुनिजनमखिलं धर्मपताकाभिरिवोच्छ्रि[6]ताभिरसर-

भावस्तत्ता तयात एव दीर्घस्य तालादेन (?)। तथा परिमण्डलं विस्तीर्णोऽवकाशोऽभ्यन्तरप्रदेशो यस्य स तथा तस्य। उग्रेति। उग्रतपोभिस्तीक्ष्णतपोभिर्महर्षिभिः समन्तात्परिवृतं परिवेष्टितम्। किमिव। भुवनमिव विष्टपमिव सागरैः समुद्रैः। कनकगिरिमिव सुवर्णाद्रिमिव कुलपर्वतैः कुलाचलैः। क्रतुमिव यज्ञमिव वैतानिकवह्नयो दक्षिणाग्निगार्हपत्याहवनीयास्तैः। कल्पान्तदिवसमिव युगान्तवासरमिव रविभिः सूर्यैः। कालमिव समयमिव कल्पैः कालावयवैः। धवलीकृतेति। जरया विस्रसया धवलीकृतः शुभ्रीकृतो विग्रहः शरीरं यस्य स तम्। अथ च जराया विशेषणानि—उग्रेति। उग्रः कठिनो यः शापस्तेन कम्पितश्चालितो देहो यया सा तया। प्रणयिन्येवेति। प्रणयिन्येव मनस्विन्येव विहितः केशग्रहो यया सा तया। वल्लभापि रतिकलहे केशग्रहं करोति। इयमपि केशे लग्नेत्यर्थः। क्रुद्धयेवेति। क्रुद्धयेव कोपाविष्टयेव कृतो भ्रूभङ्गो यया सा तया। क्रुद्धापि भ्रूभङ्गं करोति तथेयं कृतवतीत्यर्थः। मत्तयेवेति। मत्तयेव शौण्डयेव आकुलितं गमनं गतिर्यस्याः सा तया। मत्तापि स्खलद्गतिर्भवति तथेयमपि। प्रसाधितयेव भूषितयेव प्रकटितमाविष्कृतं तिलकं यया

फिर भी अपने विशाल घेरे से बैठने का स्थान विस्तृत बना दिया था। वे (जाबालि) सभी ओर बैठे हुये उग्र तप करने वाले महर्षियों से इस प्रकार घिरे हुये थे जैसे सागरों से भुवन, कुलाचलों से सुमेरु, यज्ञाग्नियों से यज्ञ, सूर्यों से प्रलय का दिन और कल्पों से काल। उनकी अंगलतिका वृद्धता के कारण इस प्रकार काँप रही थी कि मानो भयंकर शाप की आशंका से कोई प्रेमिका काँप रही हो तथा उनके काले बाल बुढ़ापे की पकड़ में इस तरह आ गये थे मानो प्रणयिनी जरा ने रति लीला के प्रसंग में केश पकड़ लिये हों, उनकी भौंहों का तनाव इस प्रकार टूट चुका था मानो क्रुद्ध प्रेमिका ने भौंहें टेढ़ी कर ली हों, उनकी गति में इस प्रकार लड़खड़ाहट आ गई थी मानो मतवाली प्रेमिका के पैर लड़खड़ा रहे हों, उस काया पर तिलों के धब्बे इस प्रकार प्रकट हो चुके थे मानो प्रसाधन के प्रसंग में प्रेमिका जरा ने तिलक लगा लिये हों, वह काया रक्त की कमी से इस प्रकार उजली हो गई थी मानो तपस्विनी जरा ने अपने शरीर को विभूति से धवल बना लिया हो। वे (जाबालि) जटाओं से सुशोभित थे—जो (जटायें) लम्बी थीं बुढ़ापे के कारण शुक्ल थीं, ऐसा लगता था कि अपने तप से समस्त मुनि जनों को जीतकर धर्म की पताकाओं को और उन्नत कर दिया हो मानो स्वर्गारोहण के लिये वे (जटायें) पुण्य

१ अत्युग्र, २. कुलाचलैः, ३. वैतान; वैतानक, ४. शापभियेव; शापभीतयेव, ५. तपोभि, ६. उपार्जिताभि,

लोकमारोढुं पुण्य[1]रज्जुभिरिवोपसंगृहीताभिरतिदूरप्रवृद्धस्य [2]पुण्यतरोः कुसुममञ्जरीभि-रिवोद्गताभिर्जटाभि[3]रुपशोभितम्, उपरचितभस्मत्रिपुण्ड्रकेण तिर्यक्प्रवृत्तत्रिप[4]थगा-स्रोतस्त्रयेण[5] हिमगिरिशिला[6]तलेनेव ललाटफ[7]लकेनोपेतम्, अधोमुखचन्द्रकलाकारा-भ्यामवलम्बितवलिशिथिलाभ्यां भ्रूलताभ्यामवष्टभ्यमानदृष्टिम्, अनवरतमन्त्राक्षरा[8]-भ्यासविवृताधरपुटतया निष्पतद्भिरतिशुचिभिः सत्यप्ररोहैरिव स्वच्छेन्द्रियवृत्तिभिरिव

सा तया। भूषितापि स्त्री सतिलका भवति। भस्या अपि देहे तिलकाः प्रजायन्त इति प्रसिद्धिः। गृहीतेति। गृहीतं स्वीकृतं व्रतं यया सा तथैवात एव भस्मधवलया भस्म भूतिस्तद्वद्धवलया शुभ्रया। पुनः किंविशिष्टम्। जटाभिः सटाभिरुपशोभितमलंकृतम्। अथ जटा विशिनष्टि—आयामिनीभिर्विस्तारवतीभिः। पलितेति। पलितं पाण्डुरः कचस्तद्वत्पाण्डुराभिः श्वेताभिः। तपसेति। तपसाखिलं समग्रं मुनिजनमृषिजनं विजित्य धर्मपताकाभिरिव धर्मस्य तपोमयस्य जयध्वजाभिरिवोच्छ्रिताभिरूर्ध्वीकृताभिरिव। अमरेति। अमरलोकं स्वर्लोकमारोढुमारोहणं कर्तुं पुण्यरज्जुभिरिव पवित्ररश्मिभिरिवोपसंगृहीताभिः स्वीकृताभिः। अतीति। अतिदूरं प्रवृद्धस्यातिदूरं वृद्धिं गतस्य पुण्यतरोः श्रेयस्तरोरुद्गताभिः प्रादुर्भूताभिः कुसुममञ्जरीभिरिव पुष्पवल्लरीभिरिव। ललाटेति। ललाटफलकेन भालपट्टकेनोपेतं सहितम्। कीदृशेन। उपेति। उपरचितानि कृतानि भस्मना त्रीणि पुण्ड्रकाणि त्रिरेखामयतिलकानि यस्मिन्। केनेव। तिर्यगिति। त्रिपथगाया एकमुपर्येकं तिर्यगेकमधःस्रोतः। इदमभिनवं तिर्यक्प्रवृत्तं स्रोतस्त्रयमेव यस्मिन्नेवंभूतं तेन हिमगिरिशिलातलेनेव। भ्रूलतेति। भ्रूलताभ्यामवष्टभ्यमानावलम्ब्यमाना दृष्टिर्यस्य स तम्। कीदृशाभ्याम्। अधोमुखी या चन्द्रकलार्धचन्द्रस्तद्वदाकारो ययोस्ताभ्याम्। अवलम्बितेति। वार्धक्यादवलम्बिता आश्रिता या वलयस्त्रिवल्यस्ताभिः शिथिलाभ्यां श्लथा-भ्याम्। पुनस्तमेव विशिनष्टि—अनवरतेत्यादि। अनवरतं यो मन्त्राक्षराभ्यासस्तेन विवृतो विदीर्णो योऽधरपुट ओष्ठपुटस्तस्य भावस्तत्ता तया निष्पतद्भिः स्रवद्भिरतिशुचिभिरतिपवित्रैः सत्यप्ररोहैरिव सत्याङ्कुरैरिव। स्वच्छेति। स्वच्छा निर्मला या इन्द्रियवृत्तयस्ताभिरिव।

रज्जुओं के समान संगृहीत की गयी हो तथा बहुत ऊँचाई तक बढ़े हुये धर्मतरु की मानो कुसुम मंजरियाँ निकल आई हों। जिस तरह हिमालय के शिलातल पर त्रिपथगा (गंगा) की धवल तीनों धारायें टेढ़ी होकर बह रही हों उसी प्रकार उनके उज्ज्वल आयत ललाट पर विभूति के त्रिपुण्ड्र की तीनों रेखायें सुशोभित हो रही थीं। नीचे की ओर लटकने वाली चन्द्रकला के समान चमड़े के ढीलेपन के कारण लटकी हुई दोनों भौहों से उनकी दृष्टिका अवरोध हो गया था। निरन्तर मन्त्राक्षरों के जप करने से होठों के खुले रहने के कारण निकलने वाली दांतों की किरणों से उनका अगला भाग धवल हो रहा था जो (दन्त किरणें) सत्य के अंकुर के समान अत्यन्त पवित्र, इन्द्रियों की वृत्तियों के समान स्वच्छ एवं करुणा के रस प्रवाह के

---

१. पुण्यै रज्जुभिः; पुण्यरजोभिः २. तपस्तरोः, ३. उपशोभमानम्, ४. गङ्गा, ५. त्रयेणेव, ६. तलेन, ७. पट्टेन, ८. मन्त्राभ्यास,

[1]करुणारसप्रवाहैरिव दशनमयूखैर्धवलितपुरोभागम्, उद्वमदमलगङ्गाप्रवाहमिव जह्नुम्, [2]अनवरतसोमोद्गारसुगन्धिनिश्वासावकृष्टैर्मूर्तिमद्भिः[3] शापाक्षरैरिव सदा मुखभाग[4]-संनिहितैः परिस्फुरद्भिरलिभिरविरहितम्, अतिकृशतया निम्नतरगण्डगर्तमु[5]न्नततरहनुघोणमाकरालतारकमवशीर्यमाणविरलनयनपक्ष्ममालमुद्गतदीर्घरोमरुद्धश्रवणविवरमानाभिल[6]म्बकूर्चकलापमाननमादधानम्, अतिचपलानामिन्द्रि[7]याश्वानामन्तःसंयमनर-

करुणेति। शृङ्गारवत्करुणरसोऽपि विशदस्तस्य प्रवाहैः स्रोतोभिरिव। एवंविधैर्दशनमयूखैरदनदीप्तिभिर्धवलितः शुभ्रीकृतः पुरोभागो यस्य स तम्। श्वेतत्वसाधर्म्येण श्वेतप्रवाहप्रकटनसाधर्म्येण च मुनेरुपमानमाह—उद्वमदिति। उद्वमन्बहिरागच्छन्नमलो निर्मलो गङ्गाप्रवाहो जाह्नवीरयो यस्मात्तमेवंभूतं जह्नुमिव। कथा चात्र—भगीरथपथेन प्रवृत्ता गङ्गा कलकलशब्दं कुर्वती शब्दकण्टकानि ध्यानानि भवन्तीति रोषात् महर्षिणा जह्नुना पीता। भगीरथाराधनाच्च पुनर्जानुभ्यामुद्गीर्णा। ततो जाह्नवीत्युच्यते मुखनिश्वासस्य सौरभ्यातिशयप्रदर्शनद्वारा तमेव विशिनष्टि—अनवरतेत्यादि। अनवरतं यः सोमपानस्योद्गारस्तेन सुगन्धी यो निश्वासः पवनस्तेनावकृष्टैराकर्षितैर्मूर्तिमद्भिर्देहवद्भिः शापाक्षरैरिव शापवर्णैरिव। सदेति। सदा सर्वकालं मुखस्य यो भागोऽग्रिमप्रदेशस्तत्र संनिहितैः पार्श्वगैः। परिस्फुरद्भिर्दीप्यमानैरलिभिर्भ्रमरैरविरहितमवियुक्तमाननं मुखमादधानं बिभ्राणम्। अथ मुखविशेषणानि—अतीति। अतिकृशतया निम्नतरो गम्भीरतरो गण्डगर्तः कपोलतः परो भागो यस्य तत्। उन्नतेति। उन्नततरेऽत्युच्चे हनु चिबुकं घोणा नासा च यस्मिंस्तत्। अतिवृद्धलक्षणमेतत्। आकारलेति। आकरालेषद्वक्रा तारका कनीनिका यस्य तत्। अवेति। अवशीर्यमाणा क्षीयमाणा विरलानिबिडा नयनयोर्नेत्रयोः पक्ष्ममाला रोमराजिर्यस्मिंस्तत्। उद्गतेति। उद्गतानि प्रादुर्भूतानि यानि दीर्घरोमाणि तेन रुद्धमावृतं श्रवणयोर्विवरं रन्ध्रं यस्मिंस्तत्। आनाभीति। आनाभि नाभिपर्यन्तं लम्बः प्रलम्बः कूर्चकलाप आस्यलोमसमूहो यस्मिंस्तत्।

समान (निर्मल) थीं, फलतः वे गंगा के उज्ज्वल प्रवाह को उगलते हुये जह्नु के समान प्रतीत हो रहे थे। निरन्तर यज्ञोंमें आपीत सोमरस की डकार के सौरभ से मिश्रित निश्वासों से आकृष्ट भौंरे उनके मुख के पास सदा इस तरह मँड़रा रहे थे मानों शाप के अक्षर मुख का साहचर्य न छोड़ रहे हों। अत्यन्त कृशता के कारण उनके गालों में काफी गहरे गड्ढे पड़ गये थे; चिबुक और नासिका पूर्णतया ऊपर की ओर उठ गई थी; आँखों की पुतलियाँ थोड़ी भयानक सी लगने लग गई थीं; आँख की वरौनियों के बाल झड़ जाने से वे विरल हो गई थीं, कर्णरन्ध्र को निकले हुये बड़े बड़े बालों ने घेर लिया था और उनके मुँह से नाभिपर्यन्त लटकने वाली दाढ़ी विराजमान थी—ऐसा था उनका मुख। अत्यन्त चंचल इन्द्रिय रूपी घोड़ों को नियन्त्रित करने वाली लगाम की विशाल रस्सी की भाँति गले की

१ विद्यागुणैरिव करुणा; विद्याभिरिव करुणा, २ अविरत; अविरल, ३ मूर्तिमद्भिरिव शापाक्षरैः, ४ संनिविष्टैः, ५ समुन्नत, ६ लम्बित, ७ इन्द्रियाणाम्,

ज्जुभिरिवाततामिः कण्ठनाडीभिर्निरन्तरावन[1]द्धकन्धरं [2]समुन्नतविरलास्थिपञ्जरमंसा[3]-[4]वलम्बियज्ञोपवीतं [5]वायुवशजनिततनुतरंगभङ्गमुत्प्लवमानमृणा[6]लमिव मन्दाकिनी-प्रवाहमकलुषमङ्गमुद्वहन्तम्, अमलस्फटिकशक[7]लघटितमक्षवलयमत्यु[8]ज्ज्वलस्थूलमुक्ता-फलग्रथितं सरस्वतीहारमिव चलदङ्गुलिविवरगतमावर्तयन्तम्, अनवरतभ्रमि[9]तता[10]र-काचक्रमपरमिव ध्रुवम्,[11]उन्नमता शिराजालकेन जरत्कल्पतरुमिव परिणतलतासंचयेन

अतीति। अतिचपलानामतिपारिप्लवानामिन्द्रियाश्वानां करणतुरंगमानामन्तर्मध्ये संयमन-रज्जुभिरिव नियन्त्रणरश्मिभिरिवाततार्भिर्विस्तीर्णाभिः कण्ठनाडीभिर्गलस्नायुभिरिव निरन्तरं अवनद्धा संबद्धा कन्धरा ग्रीवा यस्मिन्नेवंविधमकलुषं निर्मलमङ्गं शरीरमुद्वहन्तं धारयन्तम्। समुन्नतेति। समुन्नतमुच्चं विरलं पेलवमस्थिपञ्जरं कङ्कालं यस्मिंस्तत्तथा। अंसेति। अंसा-वलम्बि भुजान्तरावलम्बि यज्ञोपवीतं यज्ञसूत्रं यस्मिन्। वायुवशेनेति। वायुवशेनानिलमा-हात्म्येन जनिता उत्पादितास्तनवः सूक्ष्मास्तरंगभङ्गाः कल्लोलविघटनानि यस्मिन्। उत्प्लवेति। उत्प्राबल्येन प्लवमानानि वहमानानि मृणालानि बिसानि यस्मिन्नेवंभूतं मन्दाकिनीप्रवाहमिव गङ्गौघमिव । अत्र तरंगास्थ्नोः श्वेतकृशत्वं यज्ञोपवीतमृणालयोश्च श्वेतसूक्ष्मत्वं साधर्म्यमिति भावः। किं कुर्वन्तम्। अक्षवलयं रुद्राक्षमालामावर्तयन्तं परिवर्तयन्तम्। अथाक्षवलयस्य विशेषणे—अमलेति। अमलानि विशदानि यानि स्फटिकशकलानि तैर्घटितं निर्मितम्। अत्युज्ज्वलेति। अत्युज्ज्वलान्यतिविशदानि स्थूलानि यानि मुक्ताफलानि मौक्ति-कानि तैर्ग्रथितं गुम्फितं सरस्वतीहारमिव सरस्वत्या भारत्या हारमिव मुक्ताकलापमिव। अत्र स्फटिकाक्षवलयस्यातिनिर्मलत्वान्मुक्ताफलोपमानम्। चलेति। चलन्त्यो या अङ्गुलयस्तासां विवरं रन्ध्रं तत्र गतं प्राप्तम्। अनवरतेति। अनवरतं निरन्तरं भ्रमितं पर्यटितं तारकाचक्रं नक्षत्रसमूहो यस्मिन्नेवंभूतमपरं द्वितीयं ध्रुवमिवोत्तानपादजमिव। अत्र स्फाटिकाक्षवलयतारका-णां शुचिवर्तुलत्वमेव साधर्म्यम्। उपविष्टस्य मुनेः स्थिरत्वाद्ध्रुवसाधर्म्यमिति। पुनर्विशिनष्टि उन्नमतेति। उन्नमतोपरि स्फुरता शिराजालकेन शिरा धमनयस्तासां जालकेन समूहेन निरन्तरं

नसों से उनका कण्ठ घिरा हुआ था। उनका अस्थि-पंजर उभड़ा हुआ तथा विरल था। उनके कन्धे पर यज्ञोपवीत लटका हुआ था। उनके सभी अंगोंकी त्वचा में इस तरह सिकुड़नें पड़ चुकी थी कि मालूम हो रहा था जैसे गंगा का निर्मल प्रवाह हवा के मन्थर संचार से पतली पतली लहरों से युक्त होने के कारण तिरते हुये मृणाल तन्तुओं से आकीर्ण सा हो गया हो। उनकी हिलती हुई अंगुलियों के बीच में सरस्वती के हार के समान निर्मल स्फटिक के दानों से घटित बड़े बड़े उज्वल मोती के दानों से गूँथी हुई माला आवर्तित हो रही थी—इसके कारण लगता था कि ये द्वितीय ध्रुव जैसे हैं जिनकी परिक्रमा निरन्तर घूमने वाले तारों के समूह कर रहे हों। उभरी हुई शिराओं से वे इस प्रकार प्रतीत होते थे कि मानो पकी हुई लताओं के समूह

---

१ संबद्ध, २ उन्नत, ३ अवलम्बित; ४ आलम्बित, ५ धवलयज्ञोपवीतम्, ६ अनिल, ७ नवमृणाल, ८ घटिताक्ष, ९ उज्ज्वल, १० तारक, ११ उल्लसता,

निरन्तरनिचितम्, [1]अमलेन चन्द्रांशुभिरिवामृतफेनैरिव गुणसंतानतन्तुभिरिव निर्मितेन मानससरोजलक्षा[2]लितशुचिना दुकूलवल्कलेना[3]द्वितीयेनेव जराजालकेन संच्छादितम्, आसन्नवर्तिना मन्दाकिनीसलिलपूर्णेन त्रिदण्डोपविष्टेन [4]स्फाटिककमण्डलुना विकचपुण्ड[5]रीकराशिमिव राजहंसेनोपशोभमानम्, स्थै[6]र्येणाचलानां गाम्भीर्येण सागराणां तेजसा सवितुः प्रशमेन तुषाररश्मेर्निर्मलतयाम्बरतलस्य संविभागमिव कुर्वाणम्, वैनतेयमिव स्वप्रभावोपात्तद्विजाधिपत्यम्[7], कमलासनमिवा-

---

निचितं व्याप्तम्। उच्छूनस्नायुसमूहेनात्यन्तव्याप्तविग्रहमित्यर्थः। केन कमिव। परिणताः पाकं गता या लता वल्लयस्तासां संचयेन समूहेन निचितमिति शेषः। जरत्कल्पतरुमिव वृद्धमन्दारमिवेत्युत्प्रेक्षा। अमलेनेति। अमलेन निर्मलेन दुकूलवल्कलेन। दुकूलेन सदृशं वल्कलमिति मध्यमपदलोपी समासः। तेन संच्छादितमावृतम्। केनेव। अद्वितीयेनापूर्वेण जराजालकेनेव विस्रसासमूहेनेवेत्युत्प्रेक्षा। दुकूलवल्कलं विशिनष्टि—चन्द्रेति। चन्द्रांशुभिरिव शशिज्योत्स्नाभिरिवामृतफेनैरिव पीयूषडिण्डीरैरिव गुणानां विद्यातपश्चरणादीनां संतानाः समूहास्त एव तन्तवः सूत्राणि तैरिव निर्मितेन रचितेन। मानसेति। मानससरोजलवज्जलं तेन क्षालितं धौतमत एव शुचिना निर्मलेन। पुनस्तमेव मुनिं विशिनष्टि—स्फाटिककमण्डलुनोपशोभमानं विराजमानम्। अथ कमण्डलुं विशिनष्टि—आसन्नेति। आसन्नवर्तिना समीपस्थेन। मन्दाकिनीति। मन्दाकिनी गङ्गा तस्याः सलिलं तेन पूर्णेन भृतेन। त्रिदण्डेति। त्रिदण्डस्त्रिपादिका तत्रोपविष्टेन स्थापितेन। मुनेर्धवलीकृतविग्रहत्वरवर्णनात्कमण्डलोश्च शुभ्रत्ववर्णनात्तदुपमानमाह—विकचेति। राजहंसेन विकचपुण्डरीकराशिमिव स्मितसिताम्भोजसमूहमिवेत्युत्प्रेक्षा। पुनर्मुनिं प्रकारान्तरेण विशिनष्टि—स्थैर्येति। स्थैर्येण स्थिरतयाचलानां पर्वतानाम्, गाम्भीर्येण गाम्भीर्यगुणेन सागराणां समुद्राणाम्, तेजसा प्रतापेन सवितुः सूर्यस्य, प्रशमेनो-

---

से सतत आवेष्टित पुराने कल्पवृक्ष हों। वे निर्मल कौशेय सदृश वल्कल से आच्छादित होने के कारण इस तरह लगते थे मानो चाँद की किरणों से वह वल्कल बनाया गया हो अथवा अमृत के फेन से उसका निर्माण हुआ हो या सदाचार, दया, करुणा आदि गुणों (तन्तुओं) से उसकी रचना की गई हो, वह वल्कल मानस सरोवर के जल में धुलने के कारण स्वच्छ तथा पवित्र था एवं भासित होता था कि द्वितीय जरा (बुढ़ापा) के चादर से वे ढँके हुये थे। उनके पास ही तिपाई पर मन्दाकिनी के जल से परिपूर्ण स्फटिक मणि का कमण्डलु रखा हुआ था—इससे उनकी शोभा इस तरह प्रकट हो रही थी जैसी खिले हुए श्वेत कमल का पुंज राजहंस से सुशोभित हो। वे अपनी स्थिरता से पर्वतों के, गम्भीरता से समुद्रों के, तेज से सविता के, प्रशान्ति से चन्द्रमा के एवं निर्मलता से आकाश के साझीदार से हो रहे थे। वे वैनतेय के समान लगते थे—वैनतेय अपने प्रभाव से पक्षियों के अधिपति बने हुये थे ये अपने उत्कृष्ट स्वभाव से द्विजों के सम्राट् बन चुके थे। वे ब्रह्माजी के समान थे—ब्रह्मा चारों आश्रमों के आदि

---

१ अमलैः, २ क्षालन, ३ द्वितीयेन, ४ स्फटिक, ५ कमल, ६ अवनेः स्थैर्येण सागराणां गाम्भीर्येण, ७ सकलद्विजा,

श्रमगुरुम्, जरच्चन्दनतरुमिव [1]भुजंगनिर्मोकधवलजटाकुलम्, प्रशस्त[2]वारणपतिमिव प्रलम्ब[3]कर्णवालम्, बृहस्पतिमिवाजन्मसंवर्धितकचम्, दिवसमिवोद्यदर्कबिम्बभास्वरमुखम्, शरत्कालमिव क्षीणवर्षम्, शन्तनुमिव प्रियसत्यव्रतम्, अम्बिकाकरतलमिव

पशमेन तुषाररश्मेश्चन्द्रस्य; निर्मलतया स्वच्छतयाऽम्बरतलस्य संविभागमिव स्वकीयवस्तुनः परेभ्यः किंचिद्विभज्य प्रदानमिव कुर्वाणं विदधानम्। अचलादीनां स्थैर्यादयो गुणा अनेनैव संविभागीकृताः सन्तीति भावः। अथान्यसादृश्यद्वारा तमेव विशेषयन्नाह—वैनतेयमिति। वैनतेयो गरुडस्तद्वदिव स्वस्यात्मीयस्य यः प्रभावो माहात्म्यं तेनोपात्तमङ्गीकृतं द्विजेषु ब्राह्मणेष्वाधिपत्यं प्रभुत्वं येन स तम्। पक्षे द्विजेषु पतत्रिष्वाधिपत्यं मुख्यत्वं येनेति विग्रहः। कमलेति। कमलासनो ब्रह्मा तमिवाश्रमो मुनिस्थानं तत्र गुरुं श्रेष्ठम्। पक्ष आश्रमा ब्रह्मचारिप्रभृतयस्तेषां गुरुं प्रवर्तकम्। वर्णाश्रमाश्च ब्रह्मणैव प्रवर्तिताः। जरदिति। पुरातने परिमलविशेषाधिक्याज्जरद्विशिष्टचन्दनतरुग्रहणम्। तत्रैव भुजंगबाहुल्यम्। अत एव भुजंगस्य यो निर्मोकः कञ्चुकस्तद्वद्धवला या जटा तयाकुलं व्याप्तम्। पक्षे निर्मोक एव जटेति विग्रहः। शेषं पूर्ववत्। प्रशस्तेति। प्रशस्तः सर्वलक्षणोपेतो वारणपतिर्गजनायकस्तद्वदिव प्रलम्बाः कर्णयोर्बालाः केशा यस्येति विग्रहः। पक्षे प्रलम्बौ लम्बमानौ कर्णौ श्रवणौ वालश्च वालधिर्यस्मिन्। बृहस्पतीति। बृहस्पतिः सुरगुरुस्तमिव आजन्म जन्म मर्यादीकृत्य संवर्धिता वृद्धिं प्रापिताः कचाः केशा येनेति स तम्। पक्षे कचनामा बृहस्पतेः पुत्र इति पुराणे प्रसिद्धम्। शेषं पूर्ववत्। दिवसेति। दिवसो घस्रस्तद्वदिवोद्यदुद्गच्छद्यदर्कबिम्बं सूर्यमण्डलं तद्वद्भास्वरं दीप्तं मुखमाननं यस्य स तम् पक्ष उद्यतार्कबिम्बेन भास्वरं मुखमादिर्यस्येति विग्रहः। तन्विति। शरत्कालो घनात्ययसमयस्तद्वदिव क्षीणानि गतानि वर्षाणि हायनानि यस्य स तम्। पक्षे क्षीणं स्वल्पत्वं प्राप्तं वर्षं वृष्टिर्यस्मिन्। शन्तन्विति। शन्तनुर्भीष्मपिता तद्वदिव प्रियमिष्टं सत्यमेव

प्रवर्तक थे और ये उस आश्रम के गुरु थे वे पुराने चन्दन के वृक्ष जैसे लगते थे—जीर्ण चन्दन तरु के तने साँपों के केंचुलों से उजले दीखते हैं और इनकी उज्ज्वल जटा साँपों के केंचुल जैसी धवल और कोमल थी। वे प्रशंसनीय गजपति के समान थे—गजपति के कान लम्बे तथा शरीर के बाल दीर्घ होते हैं और उनके कानों का बाल विशाल था। वे बृहस्पति के सदृश थे—बृहस्पति ने अपने पुत्र कच का पालन जन्मकाल से ही किया था और इन्होंने भी बालों का संवर्धन जन्मकाल से ही कर रखा था। वे दिन के समान दीख रहे थे—दिन का प्रारम्भिक भाग उदीयमान सूर्य-मण्डल से आभासित हो जाता है और इनका मुख उगते हुये सूर्य के समान तेजस्वी था। वे शरत् काल के समान लगते थे—शरत्काल में वर्षा समाप्त हो जाती है और इनकी आयु के बहुत वर्ष बीत चुके थे। वे शन्तनु के समान लगते थे—शन्तनु को सत्यव्रत (भीष्म) प्रिय थे और इन्हें सत्य का व्रत धारण करना पसन्द था। वे अम्बिका के कर

---

१ भुजग, २ वारणमिव, ३ कर्णतालम्।

[1]रुद्राक्षवलयग्रहणनिपुणम् शिशिरसमयसूर्यमिव कृतोत्तरासङ्गम्, [2]बडवानलमिव [3]संततपयोभक्षम्[4], शून्यनगरमिव दीनानाथविपन्नशरणम्, पशुपतिमिव भस्मपाण्डु-रोमाश्लिष्टशरीरं भगवन्तं जाबालिमपश्यम्।

अवलोक्य चाहमचिन्तयम्—'अहो प्रभावस्तपसाम्। इयमस्य शान्तापि

व्रतं यस्य स तम्। पक्षे प्रियो वल्लभः सत्यव्रतो भीष्मो यस्येति विग्रहः। कथा चात्र श्रीमन्म-हाभारतगतानुसंधेया। अम्बिकेति। अम्बिका पार्वती तस्याः करतलं पाणितलं तद्वदिव रुद्राक्षः फलविशेषस्तद्वलयस्य कटकस्य यद्ग्रहणं तत्र निपुणम्। सर्वदा तदावर्तनेन कृता-भ्यासमित्यर्थः। पक्षे रुद्र ईश्वरस्तस्याक्षमिन्द्रियं लोचनं वर्तुलत्वात्तदेव यद्वलयं तस्य ग्रहणं पिधानं तत्र निपुणं चतुरम्। रते चन्द्रकलाप्रकाशस्यानिवार्यत्वेन लज्जावशात्पार्वत्या तृतीयं लोचनं करतलेन पिहितमिति भावः। शिशिरेति। शिशिरसमयः शीतकालस्तस्य यः सूर्यो भगवांस्तद्वदिव कृतो विहित उत्तरासङ्गो बृहतिका येन स तम्। पक्ष उत्तरस्या दिशः सङ्गः संश्लेषो येनेति विग्रहः। वडवेति। बडवानल और्वस्तमिव संततं निरन्तरं पय एव क्षीरमेव भक्षं यस्य स तम्। पक्षे पयः पानीयं तदेव भक्षं यस्येति भावः। शून्येति। शून्यमुद्वसितं यन्नगरं पुरं तद्वदिव। शून्ये धनिनां निवासायोग्यत्वाद्दीनादिग्रहणम्। तत्र दीनान्यशोभा-वन्त्यनाथान्यप्रभूणि विपन्नान्यविद्यमानभावानि शरणानि गृहाणि यत्र नगर इति। अन्यत्र दीना दुःखाभिभूता अनाथाः स्वामिरहिता विपन्ना इव विपन्ना मृतकल्पा व्याध्यादिपरिभू-तास्तेषां शरणं परित्राणहेतुम्। पशुपतिमिवेति। पशुपतिः शंभुस्तमिव भस्मवत्पाण्डुराण्य-तिवार्धक्याच्छ्वेतानि रोमाणि तैराश्लिष्टं शरीरं यस्य तम् पक्षे भस्मवत्पाण्डुरोमा गौरी तया चाश्लिष्टमर्धाङ्गीकृतं शरीरं यस्येति विग्रहः। अन्वयस्तु प्रागेवोक्तः।

जाबालिं निरीक्ष्य किं कृतवानित्याह—अवलोक्येति। अवलोक्य निरीक्ष्य। च पुनरर्थे। अहमचिन्तयमेवं विचारितवान्। चिन्ता त्वेवं चिन्तयन्तमेव मामित्यबधिकम्।

तल के समान प्रतीत होते थे—करतल शंकर की तीनों आँखों को मूँदने में निपुण था और ये रुद्राक्ष की माला फेरने में कुशल थे। वे शिशिर ऋतु के सूर्य के समान दीख रहे थे—शिशिर का सूर्य उत्तरायण होने लगता है और ये उत्तरीय धारण करने में आसक्ति रखते थे, वे वडवानल के समान थे—वडवानल सदैव जलका शोषण किया करता है और इनका आहार हमेशा दूध ही था। वे शून्य नगर के समान दीख रहे थे— शून्य नगर में दीनों, अनाथों और विपन्नों के घर रहते हैं और ये दीनों, अनाथों और विपन्नों के रक्षक थे। और वे पशुपति के समान प्रतीत हो रहे थे—पशुपति विभूति से पाण्डु और उमा से आश्लिष्ट शरीर वाले हैं और इनके शरीर के बाल भस्म से शुक्ल हो गये थे अथवा इनका शरीर भस्म से धवल और रोमबहुल था।

इन्हें देखकर मैं सोचने लगा कि तपस्याका प्रभाव आश्चर्यजनक होता है। फलतः इनकी

---

१ रुद्राक्षग्रहण, २ और्वानिलम्, ३ सतत, ४ भक्ष्यम्,

मूर्तिरुत्तप्तकनकावदाता परिस्फुरन्ती सौदामिनीव चक्षुषः प्रतिहन्ति तेजांसि। सततमुदासीनापि महाप्रभावतया भयमिवोपजनयति प्रथमोपगतस्य! शुष्कनलकाशकुसुम-[1]निपतितानलचटुलवृत्ति नित्यमसहिष्णु तपस्विनां [2]तनुतपसामपि तेजः प्रकृत्या [3]भवति। किमुत [4]सकलभुवनतलवन्दितचरणानामनवरत[5]तपःक्षपितमलानां [6]करतला-[7]मलकवदखिलं जगदालोकयतां दिव्येन चक्षुषा भगवतामेवंविधानामघक्षय[8]कारिणाम्। पुण्यानि हि नामग्रहणान्यपि [9]महामुनीनाम्, किं पुनर्दर्शनानि। धन्यमिदमाश्रमपद-

तामेवाह—अहो इत्याश्चर्ये। तपसां प्रभावो माहात्म्यम्। इयमस्य मुनेः शान्तापि मूर्तिः शरीरमुग्रप्राबल्येन तप्तमुष्णीकृतं यत्कनकं सुवर्णं तद्वदवदाता निर्मला परिस्फुरन्ती देदीप्यमाना सौदामिनीव विद्युदिव चक्षुषो नेत्रस्य तेजांसि महांसि प्रतिहन्ति प्रतिघातं करोति। आभिमुख्येन गच्छन्तीनां नयनरश्मीनां बलवद्वेगसौदामिनीतेजसा प्रतिनिवृत्तिरनुभवसिद्धैवेति भावः। इदं स्वभाववर्णनम्। विरोधोऽपि शान्तस्योत्तप्तकनकावदाततेति विरोधः। सततेति। सततं निरन्तरमुदासीनापि मध्यस्था महाप्रभावतयात्युग्रप्रतापतया प्रथमोपगतस्यापूर्वागतस्य भयमिव भीतिमिवोपजनयति। अन्येषां करोतीत्यर्थः। अत्रापि मध्यस्थस्य भयोत्पादकत्वमिति विरोधः। उभयत्रोत्प्रेक्षा। शुष्केति। तनु स्वल्पं तपो येषां तेषामपि तपस्विनां तेजो नित्यं सर्वदा प्रकृत्या स्वभावेनासहिष्ण्वसहनशीलं भवति। कीदृशम् शुष्काणि यानि नलकाशकुसुमानि तत्र निपतितो योऽनलो वह्निस्तद्वच्चटुला त्वरिता वृत्तिर्यस्य तत्। एतस्य पर्यवसितार्थमाह—किमुतेति। एवंविधानामघक्षयकारिणां पापविनाशकर्तॄणां किमुत किमाश्चर्यम्। अथ तानेव विशिनष्टि—सकलेति। सकलभुवनतलैर्वन्दितानि नमस्कृतानि चरणानि येषां ते तथा तेषाम्। अनवरतेति। अनवरतं तपसा क्षपिताः क्षयं प्रापिता मलाः पापानि यैस्ते तथा तेषाम्। करतलेति। करतलामलकवत्पाणिस्थधात्रीफलवद्दिव्येन चक्षुषा ज्ञानलोचनेनाखिलं समग्रं जगद्विष्टपमालोकयतां पश्यतां भगवतां माहात्म्यवतामेवंविधानां पूर्वोक्तगुणविशिष्टानाम्। हि निश्चितम्। अघक्षयकारिणां

यह परम शान्त भी आकृति तपाये गये सोने के समान कान्ति-युक्त तथा चमकती हुई विद्युत की भाँति आँख के तेज को कुण्ठित कर रही है। निरन्तर उदासीन रहती हुई भी अपने महान् प्रभाव से पहली बार मिलने वाले जन को भयभीत सी कर देती है। सूखी घास तथा कास के फूल पर गिरी हुई आग की चंचल लपट जिस प्रकार असहनीय होती है उसी प्रकार अल्पतप करने वाले भी तपस्वियों का तेज जब स्वभावतः दुःसह होता है, तब जिनके चरणों की वन्दना सारा संसार कर रहा हो, जो निरन्तरः तप के अनुष्ठान से सभी प्रकार के मल का क्षालन कर चुके हों, जो अपनी दिव्य दृष्टि से सम्पूर्ण जगत को हथेली पर रखे हुये आँवले के समान देखने वाले हों ऐसे महामहिम पाप-क्षयकारी महातपस्वी के तेज का क्या कहना? इस तरह के महान् मुनियों का नाम लेना भी पुण्य-जनक होता है यदि दर्शन हो जाय तब तो कहना ही क्या!

१ निपतिता चटुल, २ प्रतनु, ३ दुःसहं भवति, ४ भुवनवन्दित, ५ तपःसलिलक्षालित, ६ करकमलतल, ७ सामलकफल; ८ कारणानि पुण्यानि नाम; कारणानि पुण्यानि नाम, ९ मुनीनाम्,

मयमधिपतिर्यत्र। अथवा भुवनतलमेव धन्यमखिलमनेनाधिष्ठितमवनितलकमलयोनिना। पुण्यभाजः खल्वमी मुनयो यदहर्निशमेनमपरमिव नलिनासनमपगतान्यव्यापारा [1]मुखावलीननिश्चलदृष्टयः पुण्याः कथाः शृण्वन्तः [2]समुपासते। सरस्वत्यपि धन्या या[3]स्य तु सततमतिप्रसन्ने करुणाजलनिस्यन्दिन्यगाधगाम्भीर्ये रुचिर[4]द्विजपरिवारा मुखक[5]मलसंप[6]र्कमनुभवन्ती निवसति हंसीव[7]मानसे। चतुर्मुखक[8]मलवासिभिश्च[9]-

पापविनाशकानाम्। महामुनीनामिति। महातपस्विनां नामग्रहणान्यप्यभिधानोच्चारणमात्राण्यप्यायुष्यं तमिति तत्कारणकार्योपचारात्पुण्यानि पुण्यजनकानि। दर्शनानीति। दर्शनानि तेषामवलोकनानि समग्रपापापहारकाणीत्यर्थे किं पुनर्भण्यते। अवश्यं तदपहारकाणीत्यर्थः। धन्यमिति। इदं प्रत्यक्षमाश्रमपदं मुनिस्थानं धन्यं कृतपुण्यम्। अत्रार्थे हेतुमाह—यत्रेति। यस्मिन्नाश्रमपदेऽयं महान्मुनिरधिपतिर्नेता। अथवेति पक्षान्तरे। अवनीति। अवनितलकमलयोनिना भुवनतलब्रह्मणानेन प्रत्यक्षोपलभ्यमानेन मुनिनाधिष्ठितमाश्रितं भुवनतलमेव जगतीतलमेव धन्यं कृतपुण्यम्। 'सुकृती पुण्यवान्धन्यः' इति हैमः। आश्रमस्य तदन्तःपातित्वादिति भावः। तच्छिष्याणां धन्यतां प्रतिपादयन्नाह—पुण्येति। खलु निश्चयेन। अमी मुनयः पुण्यभाजः सुकृतभाजः। यदिति हेत्वर्थे। अहर्निशं प्रत्यहमपरमिवान्यमिव नलिनासनं कमलयोनिं समुपासते सेवां कुर्वते। तानेव शिष्यान्विशिनष्टि—अपेति। अपगतो दूरीभूतोऽन्यव्यापारस्तदितरकार्यं येभ्यस्ते तथा। मुखेति। मुखस्य वदनस्य अर्थान्मुनेरिति शेषः। तस्य यदवलोकनं निरीक्षणं तेन निश्चला निमेषरहिता दृष्टिर्येषां ते तथा। किं कुर्वन्तः। पुण्याः पवित्राः कथाः किंवदन्तीः शृण्वन्त आकर्णयन्तः। तद्वदनगतायाः सरस्वत्याः श्लाघां कुर्वन्नाह—सरस्वतीति। सरस्वत्यपि भारत्यपि धन्या श्लाध्या। तु पुनरर्थे। या अस्य मुनेर्मुखमेव कमलं नलिनं तस्य संपर्कं संबन्धमनुभवन्ती साक्षात्कुर्वती मानसे मनसि निवसति निवासं करोति। उभयोः साम्यमाह—हंसीति। यथा मानसे सरसि हंसी मराली निवसति तथेयमपीत्यर्थः। अत्र प्रसन्नेत्यादिविशेषणानि मानसे मनसि सरसि च स्वबुद्ध्या योजनीयानि। अतीति। अतिशयेन प्रसन्ने प्रसादगुणयुक्ते। करुणेति। करुणा परदुःखप्रहाणेच्छा सैव जलं तस्य तयोर्वा निष्यन्दिनि

धन्य है यह आश्रम जिसके आप अधिपति हैं। अथवा भुवनतल ही धन्य है जहाँ भूतल के ब्रह्मा के रूप में आप विराजमान हैं। ये मुनिजन भी अवश्य ही पुण्य के भाजन हैं क्योंकि द्वितीय चतुरानन के समान इनके मुख का अवलोकन दिन रात दूसरे धन्धों को छोड़कर निर्निमेष नयनों से किया करते हैं तथा पावन कथाओं को सुनते हुए इनकी उपासना में संलग्न रहते हैं। जिस प्रकार हंसी निरन्तर अति स्वच्छ तथा सुखद जल को प्रवाहित करने वाले अगाध जल की गहराई से सुशोभित मानस सर में मनोहर पक्षियों के परिवार से युक्त होकर प्रमुख अरविन्द के सम्पर्क का सुखानुभव करती हुई निवास करती है उसी प्रकार जो इनके सतत अतीव प्रसन्न रहने वाले करुणारूपी अमृत को प्रवाहित करने वाले, अगाध गाम्भीर्य से युक्त मन में

१ मुखकमलावलोकन, २ पर्युपासते, ३ यदस्मिन्; या तु, ४ परिवारे; कुलपरिचये, ५ कमले, ६ संपर्कसुखम्, ७ राजहंसीव, ८ मुखकमल, ९ चतुर्भिर्वेदैः,

तुर्वेदैः सुचिराद्विवेदमपरमुचितमासादितं स्थानम्। एनमासाद्य शरत्कालमिव क[1]लि-जलदसमयकलुषिताः प्रसादमुपगताः पुनरपि जगति सरित इव सर्वविद्याः। नियतमिह सर्वात्मना कृतावस्थितिना भगवता परिभूतकलिकालविलसितेन धर्मेण न स्मर्यते कृतयुगस्य। धरणितलमनेनाधिष्ठितमा[2]लोक्य न वहति नूनमिदानी स[3]प्तर्षिमण्डल-निवासाभिमानमम्बरतलम्। अहो महासत्त्वेयं जरा याऽस्य प्रलयर[4]विरश्मिनिकरदुर्नि-रीक्ष्ये रजनिकरकिर[5]णपा[6]ण्डुशिरोरुहे जटाभारे फेनपुञ्जधवला गङ्गेव पशुपतेः

स्राविणि। अगाधेति। अगाधमतलस्पर्शं गाम्भीर्यं गम्भीरता यस्मिन्। रुचिरेति। रुचिरा मनोज्ञा ये द्विजा दन्तास्त एव परिवारः परिच्छदो यस्याः सेति भारत्याः विशेषणम्। चतुरिति। चत्वारि यानि मुखकमलानि तत्र वासिभिः स्थायिभिश्चतुर्वेदैर्ऋग्यजुःप्रभृतिभिः सुचिरादिव चिरकालादिवेदमपरं द्वितीयम्। कमलस्य कदाचित्संकोचसंभवात्। उचितं योग्यं स्थानमासादितं प्राप्तम्। एनमिति। एनं मुनिं शरत्कालमिव घनात्ययसमयमिवासाद्य प्राप्य जगति लोके पुनरपि द्वितीयवारमपि सर्वविद्याश्चतुर्दशविद्या प्रसादं नैर्मल्यमुपगताः प्राप्ताः। का इव। सरितो नद्य इव। यथा शरत्कालं प्राप्य ता इव नैर्मल्यं भजन्ति। उभयोरेकविशेषणमाह—कलीति। कलिरेव कलौ वा यो जलदसमयो मेघकालस्तेन कलुषिता मलिनीकृताः। नियतमिति। नियतं निश्चितमिहाखिलाश्रमे सर्वात्मना सर्वप्रकारेण कृतावस्थितिर्येन स तथा तेन भगवता माहात्म्यवता। परीति। परिभूतं न्यक्कृतं कलिकालस्य विलसितं चेष्टितं येनैवं-भूतेन धर्मेण न स्मर्यते। कृतयुगस्येति कर्मणि षष्ठी 'मातुः स्मरति' इतिवत्। धरणीति। नूनं निश्चितमनेन मुनिना धरणितलमधिष्ठितमाश्रितमालोक्य निरीक्ष्याम्बरतलं व्योमतलमिदानीं सांप्रतं सप्तर्षिमण्डलनिवासाभिमानमिति, सप्तर्षीणां कश्यपप्रभृतीनां यन्मण्डलं समूहस्तस्य यो निवासोऽवस्थानं तेन योऽभिमानोऽहंकारस्तं न वहति न धत्ते। अत्र बहूनामृषीणां सत्त्वात्। अहो इत्याश्चर्ये। महासत्त्वा महाधैर्येयं जराविस्रसा यास्य मुनेर्जटाभारे सटासमूहोपरि निपतन्ती

मनोहर दशन-पंक्ति से परिवृत मुखारविन्द के सम्पर्क का सुखानुभव करती हुई रहती है, वह सरस्वती भी धन्य है। चतुर्मुख (ब्रह्मा) के मुखारविन्द में निवास करने वाले चारों वेदों को चिरकाल के पश्चात् यह उचित निवास स्थान प्राप्त हुआ है। इन्हें पाकर कलि के दुष्प्रभाव से मलिन हुई सभी विद्यायें संसार में फिर से उसी तरह निर्मल हो गई हैं जैसे बरसात में पंक मिश्रित नदियाँ जगत् में शरत्समागम से पुनः पूर्णतः प्रसन्न (निर्मल) हो जाती हैं। इनमें पूर्णतया अवस्थित रहने के कारण कलिकाल के दुष्प्रभाव को तिरस्कृत कर देने वाले भगवान् धर्म को निश्चय ही सत्ययुग की याद न आती होगी। भूतल पर अधिष्ठित इन्हें देखकर इस समय अन्तरिक्ष को सप्तर्षि मण्डल के निवास का अभिमान बिलकुल नहीं रह गया है। यह जरा (वृद्धता) भी कितनी प्रबल है जो प्रलयकालिक सूर्य की किरणों के समान दुर्निरीक्ष्य इनके जटा जूट पर—जो कि चन्द्ररश्मियों के समान उज्ज्वल बालों वाले हैं—गिरती हुई उसी

---

१ कलिकालजलधर, २ आलक्ष्य, अवलोक्य, ३ सप्तर्षिनिवास, ४ रविकरनिकरदुर्निरीक्षे, ५ निकरपाण्डुरे जटाभारे, ६ पाण्डुर,

क्षीराहुतिरिव शिखाकलापे विभावसोर्नि[1]पतन्ती न भीता। बहलाज्यधूमपटलमलिनीकृता[2]श्रमस्य भगवतः प्रभा[3]वाद्भीतमिव रविकिरणजा[4]लमपि दूरतः परिहरति तपोवनम्। एते च पवनलोल[5]पुञ्जीकृतशिखाकलापा रचिताञ्जलय इवात्र मन्त्रपूतानि हवींषि गृह्ण[6]न्त्येतत्प्रीत्याशुशुक्षणयः। तरलितदुकूलवल्कलोऽयं चाश्रमलताकुसुमसुरभिपरिमलो [7]मन्दमन्दचारी सशङ्क इवास्य समीपमुपसर्पति गन्धवाहः।

पतनं कुर्वती न भीता न त्रस्ता। अत्रार्थे उपमानद्वयं प्रदर्शयति—पशुपेति। पशुपतेरीश्वरस्य जटाभारे सटासमूहे गङ्गेव स्वर्नदीव। क्षीरेति। विभावसोर्वह्नेः शिखाकलापे ज्वालासमूहे क्षीराहुतिरिव क्षीरस्य दुग्धस्याहुतिः। वह्नौ प्रक्षेप इवेत्यर्थः। गङ्गां विशिनष्टि—फेनेति। फेनस्य डिण्डीरस्य यः पुञ्जः समूहस्तेन धवलोज्ज्वला। इयमपि धवला भवति। जटां विशिनष्टि—प्रलयेति। प्रलयः कल्पान्तस्तस्मिन्यो रविः सूर्यस्तस्य यो रश्मिनिकरः किरणसमूहस्तद्वत् दुर्निरीक्ष्ये विलोकयितुमशक्ये। रजनीति। रजनिकरश्चन्द्रस्तस्य किरणा मयूखास्तद्वत्पाण्डूनि श्वेतानि शिरोरुहाणि केशा यस्मिन्। बहलेति। बहलं निबिडं यदाज्यं सर्पिस्तस्य धूमपटलं तेन मलिनीकृतः श्यामतां प्रापित आश्रमो यस्यैवंविधस्य भगवतो मुनेः प्रभावान्माहात्म्याद्भीतमिव त्रस्तमिव रविकिरणजालं सूर्यरश्मिसमूहस्तपोवनं मुनिस्थानं दूरतः परिहरति दूर एव त्यजति। मालिन्यस्य तमःप्रतिनिधीभूतस्य सूर्यरश्मिभिर्विरोधात् मालिन्याश्रमाधिपतेर्मुनेः प्रभावाद्भीतिरुचितैवेति भावः। एते चेति। एते समीवर्तिन आशुशुक्षणयो वह्नयः। पवनेति। पवनेन वायुना लोलश्चपलः पुञ्जीकृतः समूहीकृतः शिखाकलापो ज्वालासमूहो येषां ते तथा। तथा रचिताञ्जलय इव विहिताञ्जलय इव। एतत्प्रीत्यैतन्मुनिस्नेहेन मन्त्रपूतान्यृचापवित्राणि हवींषि होतव्यानि गृह्णन्ति स्वीकुर्वन्ति। 'अग्निर्वैश्वानरो वह्निः शिखावानाशुशुक्षणिः' इत्यमरः। गन्धेति। गन्धवाहो वायुरस्य मुनेः समीपं पार्श्वं

तरह नहीं डरी जैसे फेन पुंज से धवल गंगा पशुपति के चन्द्रकिरणों से धवलित बालों वाले जटाजूट पर गिरते नहीं सहमी और अग्नि की ज्वालावली में गिरते समय दुग्ध की आहुति को भय नहीं लगा। पुष्कल घृत की आहुतियों से उत्थित धूम-पुंज से नितान्त मलिन बने हुये आश्रम के तपोवन को मानो तत्रभगवान् महर्षि जाबालि के प्रभाव से डरा हुआ रवि-किरण-समूह दूर से ही छोड़ देता है। अर्थात् वह तपोवन यज्ञ के धूम से इस तरह व्याप्त था कि मालूम होता साक्षात् अन्धकार आकर जम गया हो जिसे नष्ट करने की हिम्मत सूर्य की किरणों को नहीं हो पाती थी और वे वहाँ से दूर दूर से ही चली जाती थी मानों महर्षि के तेज से प्रतिभटत्व स्वीकार करने का उनमें साहस ही नहीं था। सूर्य की किरणों से उस धूमपुंज का तिरोभाव नहीं हो पाता था। ये यज्ञानल इनकी प्रीति के कारण पवन से चंचल एवं ज्वालामालाओं के पुंज से मानो बद्धाञ्जलि होकर यहाँ मन्त्रपूत हविष को स्वीकार करते रहते हैं। यह वस्त्र के समान वल्कल को हिलाने वाला, आश्रम की लताओं के सौरभ सम्पन्न कुसुमों की सुगन्ध से युक्त मन्द

---

१ निष्पतन्ती, २ आश्रमपदस्य, ३ भीतभीतमिव, ४ जालकम्; ५ पुञ्जितशिखाकलापाः शिखाजटिला, ६ प्रतिगृह्णन्त्याशुशुक्षणयः; प्रतिगृह्णन्त्येतत्प्रदत्तान्याशुशुक्षणयः, ७ मन्दसंचारी, मन्दमन्दसंचारी, मन्दमन्दसंचारः

प्रायो महाभूतानामपि दुरभिभवानि भवन्ति तेजांसि[1]। सर्वतेजस्विनामयं चाग्रणीः। द्विसूर्यमिवाभाति जगदनेनाधिष्ठितं महात्मना। निष्कम्पे[2]व क्षितिरेतदव[3]ष्टम्भात्। एष [4]प्रवाहः करुणारसस्य, संतरणसेतुः संसारसिन्धोः, आधारः [5]क्षमाम्भसाम्, परशुस्तृष्णालतागहनस्य, सागरः संतोषामृ[6]तरसस्य, उपदेष्टा सिद्धिमार्गस्य, अस्तगिरिर[7]सद्ग्रहकस्य, मूलमुपशमतरोः, [8]नाभिः प्रज्ञाचक्रस्य, स्थितिवंशो[9] धर्मध्वजस्य, [10]तीर्थं सर्वविद्यावताराणाम्, [11]वडवानलो लोभार्णवस्य, निकषोपलः शास्त्ररत्नानाम्,

---

सशङ्क इव भीताशय इवोपसर्पति गच्छति। अथ साशङ्कत्वे हेतुं प्रदर्शयन्नाह— तरलितेति। तरलितानि कम्पितानि दुकूलवल्कलानि येन स तथा। अयमिति स्पार्शनप्रत्यक्षः। आश्रमेति। आश्रमलताकुसुमानां सुरभिः परिमलो यस्मिन्नत एव मन्दमन्दचारी शनैः शनैः संचरमाणः। प्राय इति। प्रायो बाहुल्यार्थेऽव्ययम्। महाभूतानामपि पृथिव्यादीनामपि तेजांसि महांसि दुरभिभवानि दुःखेनाभिभवितुं शक्यानि भवन्ति। अयं चेति। अयं च मुनिः सर्वतेजस्विनां समग्रधामवतामग्रणीर्मुख्यः। अनेनेति। अनेन मुनिना महात्मना प्रकृष्टस्वरूपेणाधिष्ठितमाश्रितं जगद्द्विसूर्यमिव द्वौ सूर्यौ यत्र तद्वदिव। निष्कम्पेति। एतस्य मुनेरवष्टम्भादालम्बात्क्षितिर्वसुधा निष्कम्पेव निर्वेपथुरिव। अथ च कियन्ति विशेषणानि रूपकालंकृतिद्वारा प्रदर्शयन्नाह —एषेत्यादि। एष मुनिः करुणारसस्य प्रवाह ओघः। संसारसिन्धोर्भवाम्भोधेः संतरणे सेतुः सेतुबन्धः। क्षमाम्भसां क्षान्तिसलिलानामाधारोऽम्भसां बन्धः। तृष्णैव लता तद्गहनस्य परशुः कुठारः। संतोष एवामृतरसः पीयूषद्रवस्तस्य सागरः समुद्रः। सिद्धिमार्गस्य मोक्षपद्व्या उपदेष्टोपदेशकः। असद्ग्रहकस्याशुभग्रहस्यास्तगिरिरस्ताचलः। उपशमतरोः शमद्रुमस्य मूलं बुध्नः। प्रज्ञाचक्रस्य प्रतिभाचक्रस्य नाभिर्मध्यप्रदेशः। धर्मध्वजस्य सुकृतकेतोः स्थितिवंशोऽवस्थानवेणुः सर्वविद्याव

मन्द संचरण करने वाला पवन मानो डरा डरा इनके समीप आता है। इस तरह यद्यपि महाभूतों (अग्नि, पवन आदि) के भी तेज प्रायः पराभव योग्य नहीं होते परन्तु ये तो सभी तेजस्वियों में अग्रगण्य हैं। इस महात्मा से अधिष्ठित जगत् मानों दो सूर्यों से युक्त हुआ सा आभासित हो रहा है। इनके सहारे धरती निष्कम्प सी हो गई है (भूकम्प आदि उपद्रव नहीं होते)। आप करुणा रस के प्रवाह हैं, संसारसागर को पार करने के सेतु हैं, क्षमारूपी जल के आश्रय हैं, तृष्णारूपी लताओं के जंगल को काट डालने वाले परशु (फरसा) हैं, सन्तोषामृत के समुद्र हैं, सिद्धियों के मार्ग का उपदेश देने वाले हैं, असद्ग्रहों-केतु आदिकों के अस्ताचल हैं, शान्ति वृक्ष के मूल हैं, प्रज्ञाचक्र-रूपी चक्र (पहिया) के मध्य भाग हैं, धर्म ध्वज के लिये अवलम्बभूत वंश (बाँस) हैं, समस्त विद्याओं में प्रवेश पाने के लिये सोपानों के घाट हैं, लोभ सागर को सुखा डालने वाले वडवानल हैं, शास्त्र रत्नों के परीक्षण के लिये कसौटी के

---

१ तेजांसि यतः, २ निष्कण्टकेव, ३ अवष्टम्भादेव; अवष्टम्भेन, ४ प्रभवः, ५ कृपाम्भसाम्, ६ अमृतस्य, ७ असद्ग्रहस्य, ८ नेमिः, ९ प्रसादः, १० तीर्थः, ११ वाडवानलः,

दावानलो रागपल्लवस्य, [1]मन्त्रः क्रोध[2]भुजंगस्य, दिवसकरो मोहान्धकारस्य, अर्गलाबन्धो [3]नरकद्वाराणाम्, कुलभवनमाचाराणाम्, आयतनं मङ्गलानाम्, अभूमिर्मदविकाराणाम्, दर्शकः सत्पथानाम्, [4]उत्पत्तिः साधुतायाः, नेमिरुत्साहचक्रस्य, आश्रयः सत्त्वस्य, प्रतिपक्षः कलिकालस्य, कोशस्तपसः, सखा सत्यस्य, क्षेत्रमार्जवस्य, [5]प्रभवः पुण्यसंचयस्य, अदत्तावकाशो मत्सरस्य, अरातिर्विपत्तेः, अस्थानं परिभूतेः, अननुकूलोऽभिमानस्य, असंमतो दैन्यस्य, अनायत्तो रोषस्य, [6]अनभिमुखः सुखानाम्। अस्य भगवतः [7]प्रसादादेवो[8]पशान्तवैरमपगतमत्सरं तपोवनम्। अहो प्रभावो

तारणां समग्रविद्याप्रवेशानां तीर्थं घट्टः। लोभार्णवस्य लिप्साससमुद्रस्य बडवानल और्वः। शास्त्ररत्नानां सिद्धान्तमणीनां निकषोपलः कषणपट्टः। रागपल्लवस्येच्छाकिसलयस्य दावानलो दववह्निः। क्रोधभुजंगस्य कोपसरीसृपस्य मन्त्रः। मोहान्धकारस्याज्ञानतिमिरस्य दिवसकरः सूर्यः। नरकद्वाराणां दुर्गतिद्वाराणामर्गलाबन्धः प्रतिबन्धः आचाराणां चरितानां कुलभुवनं मूलगृहम्। मङ्गलानां श्रेयसामायतनं गृहम्। मदविकाराणामहंकारवृत्तीनामभूमिरूपरक्षेत्रम्। सत्पथानां शोभनमार्गाणां दर्शक उपदेष्टा। साधुतायाः शुभावहस्योत्पत्तिः। उत्साहः प्रगल्भता स एव चक्रं तस्य नेमिर्धारा। सत्त्वस्य धैर्यस्याश्रय आधारः। कलिकालस्य कलियुगस्य प्रतिपक्षः शत्रुः। तपसः प्रसिद्धस्य कोशो भाण्डागारम्। सत्यस्य सखा मित्रम्। आर्जवस्य मार्दवस्य क्षेत्रं सस्योत्पत्तिस्थलम्। पुण्यसंचयस्य धर्मसमूहस्य प्रभव उत्पत्तिस्थलम्। मत्सरस्येर्ष्याया अदत्तावकाशः विपत्तेरापदोऽरातिः शत्रुः। परिभूतेः पराभवस्यास्थानमपदम्। अभिमानस्याहंकृतेरननुकूलोऽहितकारकः। दैन्यस्यासंमतोऽस्वीकृतः। रोषस्यानायत्तोऽनधीनः। सुखानामनभिमुखः पराङ्मुखः। अस्येति। अस्य भगवतो मुनेः प्रसादादेव माहात्म्यादेव उपशान्तं शान्तिं प्राप्तं वैरं विरोधो यस्मिन्। अपेति। अपगतो दूरीभूतो

पत्थर हैं, रागरूपी पल्लवों को दग्ध करने वाले दावानल हैं, क्रोधरूपी भुजंग को विफल बनाने वाले साक्षत् मन्त्र हैं, मोहरूपी अन्धकार को नष्ट करने वाले दिन हैं, नरक के दरवाजों को बन्द कर देने वाले अर्गला-बन्ध (फाटक को बन्द कर देने वाला अंश) हैं, आचारों के कौलिक आगार हैं, मंगलों के आयतन हैं, मद के विकारों के लिये ऊपर भूमि हैं, सन्मार्ग के प्रदर्शक हैं, सज्जनता के जन्म स्थान हैं, उत्साहरूपी चक्र की धुरी हैं, धैर्य या बल अथवा सत्त्वगुण के आश्रय हैं, कलिकाल के शत्रु हैं, तपस्या के कोष हैं, सत्य के सखा हैं, सरलता के क्षेत्र हैं, पुण्य-राशि के जन्म दाता हैं, मात्सर्य को अवसर न देने वाले हैं, विपत्ति के दुश्मन हैं, अनादर के पात्र नहीं हैं, अहंकार के प्रतिकूल हैं, दीनता को अप्रिय हैं, क्रोध के अधीन नहीं हैं और वैषयिक सुखों की ओर उन्मुख नहीं हैं। इन भगवान् जाबालि के प्रसाद से ही इस तपोवन में वैर और मात्सर्य का अभाव हो गया है। महात्माओं का प्रभाव आश्चर्यजनक होता है।

१ महामन्त्रः, २ भुजंगमस्य ३ नरकपुरद्वाराणाम्, ४ आदर्शः; सर्वविद्यानामुत्पत्तिः, ५ प्रसवः, प्रभावः, ६ अवशो विषयाणामनभिमुखः; अनवकाशो विषयाणामनभिमुखः, ७ प्रभावात्, ८ एतदपि,

महात्मनाम्। अत्र हि शाश्वतिकमपहाय विरोधमु[1]पशान्तात्मानस्तिर्यञ्चोऽपि तपोवन-वसतिसुखमनुभवन्ति। तथा हि—एष विकचोत्प[2]लवनरचनानुकारिणमुत्पतच्चारु-चन्द्रकशतं हरिणलोचनद्युतिशबलमभिनवशाद्वलमिव विश[3]ति शिखिनः [4]कलापमात-पाहतो निःशङ्कमहिः। अयमुत्सृज्य मातरम[5]जातकेसरैः केसरिशिशुभिः सहोपजात-परिचयः [6]क्षरत्क्षीरधारं [7]पिबति कुरङ्गशावकः सिंहीस्तनम्। एष [8]मृणालकलापा-शङ्किभिः [9]शशिकरधवलं [10]सटाभारमामीलितलोचनो बहु मन्यते द्विरद[11]कलभैरा-

---

मत्सरः परगुणोत्कर्षासहनं यस्मिन्नेवंभूतं तपोवनम्। वर्तत इति क्रियाध्याहारः। अत्रार्थे साधारणं कारणमाह—अहो इति। अहो इत्याश्चर्ये महात्मनां महानुभावानां प्रभावो माहात्म्यम्। एतदेव विशेषतो दर्शयन्नाह—अत्रेति। हि निश्चितम्। अत्र तपोवने शाश्वतिकं सनातनं विरोधं वैरमपहाय दूरीकृत्योपशान्तात्मानः प्रशान्तात्मानस्तिर्यञ्चोऽपि पशवोऽपि तपोवनवसतिसुखं मुनिस्थाननिवासतामनुभवन्त्यनुभवविषयीकुर्वन्ति। तदेव दर्शयन्नाह—तथेति। तथाहि। एषोऽहिः सर्पो विकचं विकसितं यदुत्पलं नीलकमलं तस्य वनं तस्य या रचना निर्मितिस्तदनुकरोत्येवंशीलं तत्तथा। उत्पतदिति। उत्पतदूर्ध्वं गच्छच्चारु मनोहारि चन्द्रकशतं मेचकशतं यस्मिन्। हरिणेति। हरिणस्य या लोचनद्युतिर्नेत्रकान्तिस्तद्वच्छबलं कर्बुरमेवंभूतं शिखिनो मयूरस्य कलापं प्रचालकमातपेन सूर्यालोकेनाहतः पीडितो निःशङ्कं निर्भयं विशति प्रविशति। कमिव। अभिनवः प्रत्यग्रः शादाः शष्पाणि सन्त्यत्रेति शाद्वलो हरितप्रदेशस्तमिव। अयमिति। अयं कुरङ्गशावको मातरमम्बामुत्सृज्य विहायाजातकेसरैरनुत्प-न्नसटैः केसरिशिशुभिरिभारिबालकैः सह समुपजातः समुत्पन्नः परिचयः संस्तवो यस्यैवंभूतः-सिंहीस्तनं पिबति पानं करोति। क्षरन्तीति। क्षरन्ती क्षीरधारा यस्मिन्। 'गोस्त्रियोरुपसर्ज-नस्य' इति ह्रस्वः। एषः इति। एष समीपवर्ती। मृणेति। मृणालानां बिसानां कलापं समूहमाशङ्कत इत्येवंशीलास्तैः। द्विरदेति। द्विरदा गजास्तेषां कलभा बालकास्तैराकृष्यमाण-

---

क्योंकि यहाँ पशु और पक्षी भी अपने जन्म जात विरोध को छोड़ कर शान्त चित्त हो तपोवन में निवास का सुखानुभव करते हैं। जैसा कि देखने में आता है कि आतप से आकुल सर्प मयूरों के उन पिच्छों के अन्दर निर्भय होकर प्रविष्ट हो जाते हैं जो (कलाप) उत्फुल्ल कमलवन की रचना का अनुकरण करने वाले हैं, जिनके ऊपर सैकड़ों चन्द्र के मनोहर चिह्न चिह्नित हैं, एवं मृगों के लोचन की आभा से मिश्रित नये नये घास के मैदान के समान जिनकी शोभा दीख रही है। यह मृग का छौना—जिनके कन्धे पर बाल नहीं उगे हैं ऐसे केसरी के शिशुओं से परिचित होने के कारण अपनी माँ को छोड़कर सिंही के दूध बहते हुये स्तन का पान कर रहा है। यह सिंह चन्द्र-किरणों के समान धवल अपने सटा (गर्दन के बाल) भार को मृणाल तन्तु की आशंका से हाथी के बच्चों द्वारा खींचे जाते हुये भी आँखों को मूँद कर प्रसन्नता का

---

१ उपशान्तान्तरात्मानः, २ उत्पलिनीवनानुकारि- ३ अधिवसति; आवसति, ४ कलापमाहतः, ५ अनुपजात, ६ प्रक्षरत्, ७ आपिबति, ८ मृणालशङ्किभिः, ९ शिशिरकर; शिशिरकलापकर, १० जटा, ११ कलभकैः,

कृष्यमाणं मृगपतिः । इदमिह कपिकुलमपगतचापलमुपनयति मुनिकु[1]मारकेभ्यः स्नातेभ्यः फलानि । एते च न निवारयन्ति मदान्धा अपि गण्डस्थलीभाञ्जि मदजल-पाननिश्चलानि मधुकरकुलानि [2]संजातदयाः कर्णतालैः करिणः । किं [3]बहुना, तापसाग्निहोत्रधूमलेखाभि[4]रुत्सर्पन्तीभिरनिशमुपपादितकृष्णाजिनोत्तरासङ्गशोभाः[5] फल-मूलभृतो [6]वल्कलिनो निश्चेतनास्तरवोऽपि सनियमा इव[7] लक्ष्यन्तेऽस्य भगवतः । किं पुनः सचेतनाः [8]प्राणिनः इति ।

मवकृष्यमाणं शशिकरश्चन्द्रस्तद्वद्धवलं शुभ्रं सटाभारं केसरकलापम् । आमीलीति । आ ईषन्मीलिते लोचने येनैवंभूतो बहुमन्यते सुखत्वेन जानातीत्यर्थः । इदमिति । इहास्मिंस्तपोवन इदम् । अपेति । अपगतं चापलं चाञ्चल्यं यस्यैवंभूतं कपिकुलं वानरयूथम् । स्नातेभ्यः कृताप्लवेभ्यः । मुनीति । मुनीनां तपस्विनां कुमारका बालास्तेभ्यः फलानि सस्यान्युपनयति ढौकयति । एते चेति । एते करिणो हस्तिनो मदान्धा अपि मदोन्मत्ता अपि गण्डस्थलीभाञ्जि करटस्थलभाञ्जि । मदेति । मदजलस्य दानवारिणः पानं प्राशनं तेन निश्चलानि स्थिराणि मधुकराणां भ्रमराणां कुलानि समूहान् संजातदयाः समुत्पन्नकरुणाः कर्णतालैः श्रवणचपेटैर्न निवारयन्ति न दूरीकुर्वन्ति । किं बहूविति । किं बहुना किं बहुजल्पितेन । स्तोकेनैवोच्यत इति भावः । तापसेति । उत्सर्पन्तीभिरूर्ध्वं व्रजन्तीभिस्तापसानां यदग्निहोत्रं तस्य या धूमलेखा दहनकेतनराजयस्ताभिरनिशं निरन्तरम् । उपेति । उपपादिता विहिता कृष्णं श्यामं यदजिनं चर्म तस्योत्तरासङ्गो वैकक्ष्यं तस्य शोभा येषां ते तथा फलमूलभृतो वल्कलिनो निश्चेतना ज्ञानरहिता अस्य भगवतस्तरवोऽपि वृक्षा अपि सनियमा इव व्रतिन इव लक्ष्यन्तेऽवलोक्यन्ते । सचेतना ये प्राणिनो मनुजादयस्तेषां किं पुनः किं भण्यते किं कथ्यते । ते त्वेतादृशा भवन्त्येवेति भावः ।

अनुभव कर रहा है। यहाँ के ये बन्दर अपनी सहज चंचलता को छोड़कर स्नान कर लेने वाले मुनिकुमारों को फलों का उपायन बाँट रहे हैं। ये मदान्ध भी हाथी मद जल को पीने के लिये निश्चल होकर कपोल पर बैठे हुये भ्रमरों को दयालुता के कारण कानों की फटकार से उड़ा नहीं रहे हैं। अधिक कुछ कहने की जरूरत नहीं है, भगवान् जाबालि के सन्निधान से जड़ पेड़ भी तपस्वियों द्वारा किये गये अग्निहोत्र से समुत्थित धूम-रेखाओं को—जो काले मृगों के चर्म के समान हैं उन्हें उत्तरीय के रूप में सदैव धारण करके सुशोभित हो रहे हैं फल और मूल धारण कर एवं वल्कल युक्त होकर तपस्वियों के समान लक्षित होते हैं, तपस्वी लोग कृष्ण मृगचर्म का दुपट्टा धारण करते हैं, फल मूल पर जीवित रहते हैं, बल्कल पहनते हैं। जहाँ जड़ की यह हालत है वहाँ सचेतन प्राणियों का कहना ही क्या ?

---

१ कुमारेभ्यः, २ जातदयाः, ३ तपसा, ४ उत्सर्पन्तीभिरुपपादित; सर्पन्तीभिरहर्निशमुपपादित, ५ शोभनाः, ६ वल्कलिनस्तरवः, ७ इवास्य भगवतः समीपवर्तिनोऽत्र लक्ष्यन्ते; इव लक्ष्यन्तेऽस्य भगवतः समीपवर्तिनः ८ प्राणिन एवम्,

एवं चिन्तयन्तमेव मां [1]तस्यामेवाशोकतरोरधश्छायायामेकदेशे स्थापयित्वा हारीतः पादावुपगृह्य कृताभिवादनः पितुरनतिसमीपवर्तिनि कुशासने समुपाविशत्। आलोक्य तु [2]मां सर्व[3] एव मुनयः 'कुतोऽयमासादितः शुकशिशुः' इति तमासीनमपृच्छन्। असौ तु तानब्रवीत् 'अयं मया स्नातुमितो गतेन कमलिनीस[4]रस्तीरतरुनी-[5]डनिपतितः शुकशिशुरातपजनितक्लान्तिरुत्तप्तपांसुपटलमध्यगतो दूरनिप[6]तनविह्वलतनुरल्पावशेषायुरासादितस्त[7]पस्विदुरारोहतया च तस्य वनस्पतेर्न शक्यते स्वनीडमारोपयितुमिति जातदयेनानीतः। तद्यावदयंप्ररूढपक्षतिरक्षमोऽन्त[8]रिक्षमुत्पतितुं

अथ हारीतः किं कृतवानित्याह—एवमिति। एवं पूर्वोक्तप्रकारेण चिन्तयन्तं विचारयन्तं मां तस्यामेवाशोकतरोरधश्छायायामेकदेश एकस्मिन्प्रदेशे स्थापयित्वा संस्थाप्य हारीतः हारीतनामा मुनिः। पादाविति। पादौ चरणावुपगृह्य पादयोः पतित्वा। कृतेति। कृतं विहितमभिवादनं येनैवंभूतः पितुर्जनकस्यानतिसमीपवर्तिनि नातिनिकटवर्तिनि कुशासने दर्भविष्टरे समुपाविशदुपविष्टवान्। आलोक्येति। आलोक्य निरीक्ष्य। तु पुनरर्थे। मां सर्वं एव समग्रा एव मुनयो ऋषयः कुतः कस्मात्प्रदेशादयं शुकशिशुरासादितः प्राप्त इति तमासीनमुपविष्टं हारीतं मुनिमपृच्छन्नप्राक्षुः। असौ हारीतः तु पुनरर्थे तान्मुनीनब्रवीदुवाचेत्यर्थः। किमुवाचेत्याह—अयमिति। अयं शुकशिशुर्मया स्नातुं स्नानार्थमितोऽस्मात् प्रदेशात् गतेन प्राप्तेन। कमलिनीति। कमलिनीसरः पद्मसरस्तस्य तीरतरुः प्रतीरवृक्षस्तस्मिन्यो नीडः कुलायस्तस्मान्निपतितः स्रस्तः। आतपेति। आतपेनालोकेन जनितोदिताः श्रमाधिक्यं यस्य स तथा। उत्तप्तेति। उत्तप्त उष्णीभूतो यः पांसुपटलो धूलीसमूहस्तस्य मध्यगतोऽभ्यन्तरवर्ती। दूरेति। दूराद्विप्रायन्निपतनमधःसंयोगफलिका क्रिया तेन विह्वला व्याकुला तनुर्देहो यस्य स तथा। अल्पेति। अल्पं स्वल्पमवशेषमायुर्जीवितं यस्यैवंभूत आसादितो लब्धः। तपस्वीति। तपस्विभिर्मुनिभिर्दुरारोहतया दुःखेनारोढुं शक्यतया तस्य वनस्पतेः शाल्मलीवृक्षस्य स्वनीडं स्वकुलायमारोपयितुं

इस तरह सोचते हुये ही मुझे उस अशोक तरुकी छाया के एक किनारे रखकर पिता के चरणों को पकड़कर प्रणाम करके पिता के पास ही रहने वाले कुश के आसन पर हारीत बैठ गये। और मुझे देखकर सभी मुनियों ने बैठे हुये हारीत से पूछना शुरू कर दिया कि यह तोते का बच्चा कहाँ से प्राप्त हो गया ! उस हारीत ने उन मुनियों से कहा कि जब मैं स्नान करने के लिये यहाँ से गया था तब कमलिनी सर के तीर पर स्थित तरु के घोंसले से गिरा हुआ यह तोते का बच्चा धूप से क्लान्त, तपे हुये धूलि पटल के बीच में पड़ा हुआ, दूरसे गिरने के कारण विह्वल एवं अल्पविशेष जीवन की दशा में मुझे तपस्वियों के लिये उस वृक्ष पर चढ़ सकना आसान नहीं था अतः इसे अपने घोंसले में पहुँचा सकने में असमर्थ मैं दया परवश होकर ले आया हूँ। इसलिये जब तक इसके पंख मजबूत नहीं हो जाते एवं आकाश में उड़ने

---

१ तस्यैव रक्ताशोकतरोश्छायायाम्, २ मां ते, ३ मुनयः सर्व एव, ४ शिरस्तरु; सरस्तीरतरु, ५ कोटरपतित, ६ निपतित, ७ तपस्विदुरारोहतया तस्य, ८ अन्तरिक्ष,

तावदत्रैव कस्मिंश्चिदाश्रमतरुकोटरे मुनिकुमारकैरस्माभिश्चोपनीतेन नीवारकणनिकरेण [1]फलरसेन च संवर्ध्यमानो धारयतु जीवितम्। अनाथपरिपालनं हि [2]धर्मोऽस्मद्विधानाम्। उद्भिन्नपक्षतिस्तु गगनतलसं[3]चरणसमर्थो यास्यति यत्रा[4]स्मै रोचिष्यते। इहैव वोप[5]जात[6]परिचयः स्थास्यति' इत्येवमादिकमस्म[7]त्संबद्धालापमाकर्ण्य किंचिदुपजातकु[8]तूहलो भगवाञ्जाबालिरीषदावलितकंधरः पुण्यजलैः प्रक्षालयन्निव मामतिप्रशान्तया दृ[9]ष्ट्या दृष्ट्वा सुचिरमुपजा[10]तप्रत्यभिज्ञान इव पुनः पुनर्विलोक्य 'स्वस्यैवाविनयस्य

स्थापयितुं न शक्यते न समर्थीभूयत इति हेतोः। जातदयेनेति। जातोत्पन्ना दया करुणा यस्यैवंभूतेनानीतोऽत्रानीतः। मयेति पूर्वोक्तमेवेति न पुनरुच्यते। तद्यावदिति। तदिति हेत्वर्थे। यावत् यावत्कालम्। अयमिति पूर्वोक्त; अप्ररूढेति। अप्ररूढाऽनुत्पन्ना पक्षतिः सक्षमूलं यस्य सः। अक्षमेति। अन्तरिक्षमाकांशमुत्पतितुमक्षमोऽसमर्थः। तावदिति। तावत्कालम्। अत्रैवेति। अत्रैवकारोऽन्ययोगव्यवच्छेदार्थः। कस्मिंश्चिदिति। कस्मिंश्चित् अनिर्दिष्टनामाश्रमतरुकोटरे मुनिवसतिवृक्षनिष्कुहे मुनिकुमारकैस्तापसशिशुभिरस्माभिश्चोपनीतेन आनीतेन। नीवारेति। नीवारो वनव्रीहिस्तस्य कणनिकरेण सस्यसमूहेन फलरसेन सस्यद्रवेण च संवर्ध्यमानो वृद्धिं प्राप्यमाणो धारयतु दधातु जीवितं प्राणितम्। अनाथेत्यादि। हि यस्माद्धेतोरस्मद्विधानां तपस्विनामनाथपरिपालनं दीनजनरक्षणं धर्म आचारः। तु पुनरर्थे। उद्भिन्नेति। उद्भिन्ना प्रकटीभूता पक्षतिर्यस्यैवंभूतः। गगनेति। गगनतलमाकाशतलं तत्र संचरणं गमनं तत्र समर्थः क्षमः। यत्रेति। यत्र यस्मिन्देशेऽस्मै शुकशिशवे रोचिष्यते रुचिरभिलाष उत्पत्स्यते तत्र यास्यति गमिष्यति। रुच्यर्थानां धातुभिर्योगे चतुर्थी। इहैवेत्यनास्थायाम्। उपजातपरिचयः संजातसंस्तवः स्थास्यत्यवस्थानं करिष्यति। इत्येवमादिकमस्मत्संबद्धमिति मद्विषयकमालापं प्रश्नोत्तररूपमाकर्ण्य श्रुत्वा। किंचिदिति। किंचिदीषदुपजातमुत्पन्नं कुतूहलमाश्चर्यं यस्य स तथा भगवान्माहात्म्यवान् जाबालिः जाबालिनामा मुनिः। ईषदिति। ईषत्किंचिदावलिता नमिता कंधरा ग्रीवा यस्य स तथा। इदं तु सावधानलक्षणम्। पुण्येति।

की क्षमता प्राप्त नहीं कर लेता तब तक इसी जगह आश्रम के किसी वृक्ष के कोटर में मुनिकुमारों तथा हम लोगों द्वारा लाये गये नीवार (मुन्यन्न) के दानों तथा फलों के रस से संवर्धित होता हुआ यह अपनी जिन्दगी सम्हाले। क्योंकि हम लोगों जैसे तपस्वियों को अनाथ का संरक्षण करना धर्म है। जब इसके पंख उत्पन्न हो जावेंगे एवं आकाश में संचार की शक्ति से युक्त हो जावेगा तब जहाँ चाहेगा चला जायेगा। अथवा सबसे परिचित होने के कारण यहीं रहने लगेगा—इस तरह मेरे (शुक के) विषय में होते हुये वार्तालाप को सुनकर थोड़े से कुतूहल के साथ भगवान् जाबालि गरदन को थोड़ा मोड़कर पुण्य जल से मुझे नहलाते हुये से अपनी अत्यन्त प्रशान्त दृष्टि से देखकर तथा बहुत दिनों के पहचाने हुये से मुझे बारम्बार देखकर बोले

---

१ विविधफलरसेन, २ धर्मोऽस्ति, ३. संचलन, ४. चास्मै, ५. समुपजात, ६. विस्रम्भ, ७. सम्बद्धमालापम्, ८. कौतूहलः, ९. दृष्ट्या सुचिर, १०. अभिजातप्रत्यभिज्ञः,

फलमनेनानुभूयते' इत्यवोचत्। स हि भगवान्का[1]लत्रयदर्शी तपःप्रभावाद्दिव्येन चक्षुषा सर्वमेव करतलगतमिव जगदव[2]लोकयति। वेत्ति[3] जन्मान्तराण्यतीतानि। कथयत्यागामिनमप्यर्थम्। ईक्षणगोचरगतानां च प्राणिनामायुषः [4]संख्यामावेदयति। [5]सर्वैव सा[6] तापसपरिषच्छ्रुत्वा विदिततत्प्रभावा 'कीदृशोऽनेनाविनयः कृतः, किमर्थं वा कृतः, क्व वा कृतः, [7]जन्मान्तरे वा कोऽयमासीत्' इति [8]कौतूहलिन्यभवत्। [9]उपनाथितवती च तं भगवन्तम् 'आवेदय, प्रसीद भगवन्, कीदृशस्याविनयस्य फलमनेनानु[10]भूयते।

पुण्यजलैः पवित्रपानीयैः प्रक्षालयन्निव धावयन्निव मामतिप्रशान्तयातिप्रसन्नया दृष्ट्या दृशा सुचिरं चिरकालं दृष्ट्वा विलोक्य। उपेति। उपजातं समुत्पन्नं प्रत्यभिज्ञानम् 'सोऽयं देवदत्तः' इत्याकारकं ज्ञानं यस्य स तथा तद्वदिव पुनःपुनर्वारंवारं विलोक्य निरीक्ष्य स्वस्यैवात्मन एवाविनयस्याशिष्टाचारस्य फलं भोगोऽनेन शुकशिशुनानुभूयते साक्षात्क्रियत इति तानवोचदब्रवीत्। कथं मुनिर्जानातीत्याशयेनाह—स हीति। यतः। हि निश्चितम्, स भगवान्। कालेति। कालत्रयस्यातीतानागतवर्तमानलक्षणस्य दर्शी पश्यकदर्शकः। तप इति। तपः प्रभावद्दिव्येन ज्ञानात्मकेन चक्षुषा दृष्ट्या सर्वमेव समग्रमेव जगत्करतलगतमिव हस्तन्यस्तमिवावलोकयति पश्यति। वेत्तीति। अतीतानि गतानि जन्मान्तराणि भवान्तराणि वेत्ति जानाति। कथयतीति। आगामिनं भाविनमर्थमपि कथयति ब्रवीति। ईक्षणेति। ईक्षणगोचरगतानां नयनपथप्राप्तानां प्राणिनां सत्त्वानामायुषो जीवितव्यस्य संख्यां परिमाणमावेदयति निवेदयति। सर्वैवेति। सर्वैव समग्रैव सा तापसपरिषन्मुनिसभा श्रुत्वाकर्ण्य। पूर्वोक्तमिति शेषः। विदितेति। विदितो ज्ञातस्तस्य जाबालिमुनेः प्रभावो महात्म्यं यया सा तथेति कौतूहलिनी कौतुकवत्यभवदित्यन्वयः। इति शब्दवाच्यमाह—कीदृश इति। कीदृशः कीदृगविनयोऽपराधविशेषोऽनेन शुकशिशुना कृतो विहितः। किमर्थं किंप्रयोजनं वा कृतः। क्व वा कस्मिन्प्रदेशे कृतः जन्मान्तरे भवान्तरेऽयं क आसीदभवत्। सर्वत्र वा शब्दो विकल्पार्थः। उपेति। उपनाथितवती। 'नाथृ याचने' इत्यस्य धातो रूपम्। याचिततवतीत्यर्थः। च पूर्वोक्तसमुच्चये। तं भगवन्तं जाबालिमुनिम्। किं याचितवतीत्याशयेनाह—आवेदयेति। हे भगवन्, आवेदय कथय। प्रसीद प्रसन्नो भव।

कि अपने ही अविनय का फल यह भोग रहा है'। वे त्रिकालदर्शी भगवान् जाबालि अपने तप के प्रभाव से उन्मिषित दिव्य दृष्टि द्वारा समस्त जगत् को करतल गत के समान देखते रहते हैं। बीते हुये दूसरे जन्मों को समझते हैं। भविष्य को बतलाते है। आँखोंके सामने आये हुये प्राणियो की आयु की गणना करके बतला देते हैं। महाराज जाबालि के प्रभाव को जानने वाली वह सम्पूर्ण मुनिमण्डली यह कहती हुई कौतूहल से युक्त हो गयी कि 'इसने कैसा अविनय किया है? क्यों किया है? और किस स्थान पर किया है तथा पूर्व जन्म में यह कौन था?' उस मुनिमण्डली ने भगवन् जाबालि से अभ्यर्थना की कि भगवान् कृपया बतलावें कि यह किस

१. त्रिकाल, २. आलोकयति, ३. वेत्ति च जन्मान्तराण्यपि, ४. प्रमाणम्, ५. यतः सर्वैव; ततः सर्वैव, ६. तापसपरिषत्, ७. जन्मान्तरे को, ८. कुतूहलिनी, ९. असकृदुपयाचितवती; इत्युपपनाथितवती; उपेत्याथितवती, १०. भुज्यते,

कश्चायमासीज्जन्मान्तरे। विहगजातौ[1] वा कथमस्य संभवः। किमभिधानो वायम्। अपनयतु नः कुतूहलम्। आश्चर्याणां हि सर्वेषां भगवान्प्रभवः'।

इत्येवमुप[2]याच्यमानस्तपोधनपरिषदा स महामुनिः [3]प्रत्यवदत्—'अतिमहदिदमाश्चर्यमाख्यातव्यम्। अल्पशेषमहः। प्रत्यासीदति च नः स्नानसमयः। भवतामप्यतिक्रामति [4]देवार्चनविधिवेला। तदुत्तिष्ठन्तु भवन्तः। सर्वे [5]एवाचरन्तु यथोचितं दिवसव्यापारम्। अपराह्णसमये भवतां पुनः [6]कृतमूलफलाशनानां विस्रब्धोपविष्टानामादितः प्रभृति सर्वमा[7]वेदयिष्यामि योऽयम्, य[8]च्चानेन कृतमपरस्मिञ्जन्मनि, इह

पूर्वोक्ताभिप्रायस्थप्रश्नावनुनदन्नाह—कीदृशस्येति। कीदृशस्य किंरूपस्याविनयस्य फलमनेनानुभूयते। कश्चेति। जन्मान्तरेऽयं क आसीत्। विहगेति। विहगजातौ पक्षिजातौ कथमिति केन प्रकारेण अस्य संभव उत्पत्तिः। किमिति। अयं किमभिधानः किंनामा। अपनयत्विति। नोऽस्माकं कुतूहलमाश्चर्यमपनयतु दूरीकरोतु। आश्चर्याणामिति। हि भगवान् सर्वेषां समग्राणामाश्चर्याणां कुतूहलानां प्रभव उत्पत्तिस्थानम्। अपूर्वार्थज्ञापक इति यावत्।

इत्येवमिति। इत्येवं अनेन प्रकारेण तपोधनपरिषदा मुनिसभयोपयाच्यमानः प्रार्थ्यमानः स महामुनिः प्रत्यवदत्प्रत्यवोचत्। अतीति। इदमाश्चर्यमतिमहदतिमहीयस्तयाख्यातव्यं कथनीयम्। मयेति शेषः। अल्पेति। अहर्दिनमल्पशेषमल्पावशिष्टम्। प्रत्येति। नोऽस्माकं स्नानसमय आप्लवकालः प्रत्यासीदति विलम्बितो भवति। भवतामिति। भवतामपि युष्माकमपि देवार्चनविधिवेला देवपूजाक्षणोऽतिक्रामत्युल्लंघिता भवति। तदिति हेत्वर्थे। उत्तिष्ठन्तूत्थानं कुर्वन्तु भवन्तो यूयम्। सर्वे एवेति। यथोचितं यथायोग्यं दिवसव्यापारं दिनकृत्यमाचरन्तु। अपराह्णेति। अपराह्णसमये भवतां युष्माकम्। पुनरिति। पुनः द्वितीयवारं कृतं विहितं मूलफलयोरशनं भक्षणं यैस्ते तथा तेषाम्। विस्रब्धेति। विस्रब्धं सावधानं यथा स्यात्तथोपविष्टानां। आदित इति। आदितः प्रारम्भतः प्रभृति सर्वं वृत्तान्तमावेदयिष्यामि। निवेद-

प्रकार के अविनय का फल भोग रहा है ? यह दूसरे जन्म में कौन था ? इसका जन्म पक्षिकुल में क्यों हो गया ? इसका नाम क्या है ? हमारे कुतूहल को दूर करें क्योंकि आप समस्त आश्चर्यों के मूलतः अभिज्ञ हैं।

इस तरह तपोधन परिषद् से सम्प्रार्थित होते हुये वे महामुनि बोले—यह आख्यान अत्यधिक आश्चर्य-जनक है। दिन अब थोड़ा ही रहगया है। हमारे स्नान का समय सन्निकट है। आप लोगों का भी देव पूजन का समय बीता जा रहा है। अतः आप लोग उठें। सभी लोग दिन के अनुरूप यथोचित कार्य करने में लग जावें। दोपहर के बाद फल मूल का भोजन कर लेने पर निश्चिंत होकर जब आप लोग पुनः उपस्थित होंगे तब मैं शुरूसे ही सारी बातें बताऊँगा कि यह कौन था ? इसने जन्मान्तर में क्या किया था ? इस लोक में किस तरह इसका जन्म

१. जातौ कथम्; जतौ च कथम्, २. उपयाच्यमानस्तु; उपयाचितः, ३. अवदत्, ४. देवार्चनवेला, ५. एव तावत्, ६. कृतफलमूलाशनानाम्, ७. आवेदयिष्यामः, ८. कृतमनेन,

च' लोके यथास्य संभूतिः। अयं च तावदपगतक्लमः क्रियतामाहारेण। नियतमयमप्यात्मनो ज'न्मान्तरोदन्तं स्वप्नोपलब्धमिव मयि कथयति सर्वमशेषतः स्मरिष्यति' इत्यभिदधदेवोत्थाय सह [3]मुनिभिः [4]स्नानादिकमुचितदिवसव्यापारमकरोत्।

[5]अनेन च समयेन परिणतो दिवसः। स्नानोत्थितेन मुनिजनेनार्घविधिमुपपादयता यः क्षितितले दत्त[6]स्तमम्ब[7]रतलगतः साक्षादिव रक्तचन्दनाङ्गरागं रविरुदवहत्। ऊर्ध्वमुखैरर्कबिम्बविनिहित[8]दृष्टिभिरू[9]ष्मपैस्तपोधनैरिव परिपीयमानतेजःप्रसरो विर-

यिष्यामि। योऽयमिति। यश्चायं पूर्वजन्मन्यासीत्। यच्चानेनपरस्मिञ्जन्मनि परभवे कृतम्। इह चेति। इह लोके यथा येन प्रकारेणास्य संभूतिरुत्पत्तिः। अयं चेति। तावदयं शुक आहारेणाशनेनापगतक्लमो व्यपगतपरिश्रमः क्रियतां विधीयताम्। नियतेति। नियतं निश्चितं मयि कथयत्ययं शुकः अपि आत्मनः स्वकीयस्य जन्मान्तरोदन्तं परभववृत्तान्तं स्वप्नोपलब्धमिव स्वप्नदृष्टमिव सर्वं समग्रमशेषत आमूलचूलतः स्मरणविषयीकरिष्यति। इतीति। इति पूर्वोक्तमभिदधदेव कथयन्नेवोत्थायोत्थानं कृत्वा। सहेति। सह समं मुनिभिस्तपस्विभिरुचितं योग्यं दिवसव्यापारं स्नानादिकमकरोन्निर्ममे।

अनेन चेति। अनेन समयेन मध्याह्नसमयकर्तव्यकर्मणा परिणत परिपाकं गतो दिवसः। परिणते दिवसे सूर्यस्य रक्तत्वात्तद्वर्णनमाह—स्नानोत्थितेनेति। अम्बरतलगतो रविस्तं रक्तचन्दनाङ्गरागं साक्षादिव प्रत्यक्षसिद्धमुनिप्रत्यर्पितमूर्तिरूपेणैवोदवहदधारयत्। तं कम्। यः स्नानोत्थितेन मुनिजनेन तपस्विवर्गेणार्घविधिं रक्तचन्दनरक्तपुष्पादिना पूजाविधिमुपादयता निष्पादयता क्षितितले दत्तोऽर्पितः। सूर्यायेति शेषः। सायंकाले सूर्यस्य रक्तत्वान्मुनिप्रदत्तो रागः किमनेन साक्षादिव गृहीत इत्युत्प्रेक्षा। ऊर्ध्वमुखैरिति। ऊर्ध्वमुखैरूर्ध्वाननैः। अर्केति। अर्कबिम्बे सूर्यबिम्बे विनिहिता स्थापिता दृष्टिर्यैस्ते तथा तैरूष्मपैरूष्मा वह्निज्वाला तस्यानुकारिभिस्तपोधनैरिव परिपीयमान आस्वाद्यमानस्तेजःप्रसरः कान्तिप्रचारो यस्य स तथा। विरलेति। विरलः स्वल्प आतप आलोको यस्य स तथा तनिमानं तनोर्भावस्तनिमा

हुआ? तत्काल इसकी भी क्लान्ति को खिला पिला कर दूर कीजिये। यह भी मेरे कथन काल में अपने दूसरे जन्म के वृत्तान्त को पूर्णतया स्वप्न में उपलब्ध की भाँति अवश्य याद करेगा। ऐसा कहते हुये वे उठकर मुनिजनों के साथ स्नान आदि उचित क्रिया-कलाप में संलग्न हो गये।

इसी तरह दिन बीतने को आ गया। सायं समय स्नान करके खड़े हुये मुनि जनों ने रक्त चन्दन मिश्रित जिस सूर्यार्घ को भूतल पर दिया उसे अम्बर गत सूर्य उसी रूप में स्वीकार कर रक्त चन्दन से अनुलिप्त होने के कारण मानो लाल हो गये। ऊपर मुँह किये, सूर्य बिम्ब पर अपनी निश्चल दृष्टि लगाये तथा आतप पायी तपस्वियों द्वारा फैले हुये तेज को पी लेने से

१. लोके च यथा; लोके यथा, २. जन्मान्तरवृत्तम्, ३. तैर्मुनिभिः, ४. स्नानादिकमुचितं दिवस; स्नानादिकं, ५. अनेन समयेन, ६. अधोदत्त, ७. अम्बरतलम्; अस्ताचल, ८ निहित, ९ ऊष्मपैः,

ला[1]तपस्तनिमानमभजत्। उद्यत्सप्तर्षि[2]सार्थस्पर्शपरिजिहीर्षयेव[3] संहृतपादः पारावत-पा[4]दपाटलरागो रविरम्बरतलाद[5]वालम्बत। आलोहितांशुजालं जलशयनम[6]ध्यगतस्य [7]मधुरिपोर्विगलन्मधुधारमिव [8]नाभिनलिनं प्रतिमागतमपरार्णवे सूर्यमण्डलमलक्ष्यत[9]। विहायाम्ब[10]रतलमु[11]न्मुच्य च कमलिनीवनानि[12] शकुनय इव दिवसावसाने[13] तरुशिख-रेषु पर्वताग्रेषु च रविकिरणाः स्थितिमकुर्वत। आलग्न[14]लोहितातपच्छेदा मुनिभि[15]-रालम्बि[16]तलोहितवल्कला इव [17]तरवः क्षणमदृश्यन्त[18]। अस्तमुपगते च भगवति सहस्रदीधितावपरार्ण[19]वतलादु[20]ल्लसन्ती विद्रुमलतेव पा[21]टला संध्या समदृश्यत।

तमभजत्। क्षीणत्वं प्रापेत्यर्थः। उद्यदिति। उद्यदुदयं प्राप्नुवन्यः सप्तर्षिसार्थः सप्तर्षिसमूहस्तेन यः स्पर्शः संबन्धस्तस्य या परिजिहीर्षा परिहर्तुमिच्छा तया संहृताः संकोचिताः पादा येन स तथा। पारावत इति। पारावतः कलरवस्तस्य पादौ चरणौ तद्वत्पाटलः श्वेतरक्तो रागो यस्मिन्नेवंविधो रविः सूर्य अम्बरतलादित्यवधौ पंचमी। अवालम्बताललम्बे। तदनन्तरमा-लोहितांशुजालमीषद्रक्तकिरणसमूहं सूर्यमण्डलं रविबिम्बमलक्ष्यतैक्ष्यत। कमिव। अपरेति। अपरार्णवे पश्चिमसमुद्रे प्रतिमागतं स्वमूर्तिरूपेणागतं बहिर्निःसृतं जलशयनमध्यगतस्य मधुरिपोः कृष्णस्य नाभिनलिनमिव नाभिपद्ममिव। तदेव विशिनष्टि-विगलदिति। विगलन्ती स्रवन्ती मधुधारा परागश्रेणिर्यस्मात्स तत् तथा। विहायेति। अम्बरतलमाकाशतलं विहाय त्यक्त्वा कमलिनीवनानि नलिनीखण्डान्युन्मुच्य च शकुनय इव पतत्रिण इव दिवसावसाने सायंकाले तरुशिखरेषु वृक्षाग्रेषु पर्वताग्रेषु च रविकिरणाः सूर्यरश्मयः स्थितिमवस्थानमकुर्वत कृतवन्तः। तत्कालीनतरुशोभामाह--आलग्नेति। आलग्नेपरसंबन्धं प्राप्ता लोहितातपस्य रक्तालोकस्य मध्ये मध्ये छेदा रचनाविशेषा येषां ते तथा। अत एव 'भक्तिच्छेदैरिव विरचितां भूतिमंगे गजस्य' इति। मुनिभिस्तपस्विभिरालम्बिता आश्रिता अत एव लोहितवल्कला इव तरवो

मानो विरल आतप होकर सूर्य क्षीण हो गये। उगते हुये सप्तर्षियों को कहीं पाद (किरण, चरण) स्पर्श न हो जाय इससे बचने के लिये ही मानो रवि ने अपने पाद (किरण, चरण) को समेट लिया हो, इस तरह कबूतरों के चरणों के समान पाटलवर्ण वाले सूर्य आकाश से लटक गये थे। ईषद् रक्त किरणों वाला सूर्य मण्डल पश्चिम सागर में प्रतिबिम्बित होने से ऐसा लग रहा था मानो समुद्रशायी भगवान् मुरारि के नाभि से निकला हुआ रक्त कमल मकरन्द की धारा को निष्यन्दित कर रहा हो। सूर्य की किरणें पक्षियों के समान आकाश को छोड़कर तथा कमलिनी के वनों को परित्याग कर दिनान्त में तरुशिखरों एवं पर्वत शृंगों पर अवस्थित हो गई थीं। आरक्त आतप के संश्लिष्ट हो जाने से तरुओं के शिखर ऐसे लग रहे थे कि मानो

---

१ विरलातपो दिवसः २ सार्थपरि, ३ एव, ४ चरण, ५ अलम्बत, ६ शयनगतस्य, ७ मधुभिदः, ८ नलिनम्, ९ आलक्ष्यत; अवैक्ष्यत; अदृक्ष्यत, १० धरणितलम्; धरातलम्, ११ उन्मुच्य कमलिनि, १२ वनानि च, १३ तपोवनतरु, १४ रक्तातपः; रक्तातपगभस्ति, १५ आलम्बिताः, १६ आलोहित, १७ आश्रमतरवः, १८ अशोभन्त; अलक्ष्यन्त, १९ तटात्, २० उपसर्पन्ती, २१ आपाटला,

यस्यामाबध्यमानध्यानम्, एकदेशदुह्यमानहोमधेनुदुग्धधाराध्वनितधन्यतरातिम[1]नोहरम्, [2]अग्निवेदिवि[3]कीर्यमाणहरित्कुशम्, ऋषिकुमारिकाभिरितस्ततो विक्षिप्यमाणदि[4]ग्देवताबलिसिक्थमाश्रमपदमभवत्। क्वापि [5]विहृत्य दिवसावसाने लोहिततारका तपोवनधेनुरिव कपिला परिवर्तमाना संध्या [6]तपोधनैरदृश्यत। अचिरप्रोषिते[7] सवितरि शोकविधुरा कमलमुकुलकमण्डलुधारिणी हंससितदुकूलपरिधाना मृणालध-

वृक्षाः क्षणं स्वल्पकालमदृश्यन्तावालोक्यन्त। संध्यावस्थां प्रदर्शयन्नाह—अस्तेति। अस्तमुपगतेऽदृश्यतां प्राप्ते भगवति सहस्रदीधितावपरार्णवतलात्पश्चिमसमुद्रतलादुल्लसन्त्यूर्ध्वमागच्छन्ती विद्रुमलतेव रक्तचन्दवल्लीव पाटला श्वेतरक्ता संध्या सायंकालः समदृश्यत समालोक्यत। यस्यामिति। यस्यां संध्यायामेवंविधमाश्रमपदमभवत्। बभूवेत्यर्थः। कीदृशम्। आबध्येति। आबध्यमानं क्रियमाणं ध्यानमेकप्रत्ययसंततिर्यस्मिन्। अनस्तं गत एव सूर्ये संध्यावन्दनार्घयोरुक्तत्वाद्ध्यानग्रहणम्। एकेति। एकदेश एकस्मिन्प्रदेशे दुह्यमाना या होमधेनवो होमार्थं गावस्तासां दुग्धधारा पयःश्रेणी तत्र यद्ध्वनितं शब्दितं तेन धन्यतरं सदतिमनोहरमतिचारु। अग्नीति। अग्निवेद्यां वह्निस्थापनचतुरस्रभूमिकायां विकीर्यमाणा विक्षिप्यमाणा हरित्कुशा नीलदर्भा यस्मिन्। ऋषीति। ऋषिकुमारिकाभिर्मुनिपुत्रीभिरितस्ततो विक्षिप्यमाणानि समन्ताद्विकीर्यमाणानि दिग्देवतानां बलिसिक्थानि बलिसंबन्धिसिद्धान्नानि यस्मिंस्तत्तथा। पुनरवस्थान्तरमाह–क्वापीति। क्वापि कुत्रचित्प्रदेशे विहृत्य पर्यटनं कृत्वा दिवसावसाने दिनपर्यन्ते कपिला तपोवनधेनुरिव लोहिततारका परिवर्तमाना तपोधनैः मुनिभिः संध्यादृश्यतालोक्यत। गौरपि कपिलत्वाल्लोहिततारका रक्तकनीनिका। संध्या तु लोहिततारका रक्तनक्षत्रा तत्कालीनोद्गतनक्षत्राणां रक्तत्वात्। अतः संध्याधेन्वोः सादृश्यादुपमानोपमेयभावः। कमलिनीसूर्ययोर्नायिकानायकत्वेन तौ वर्णयन्नाह—अचिरेति। अचिरप्रोषिते तत्कालीनप्रोषिते गते सवितरि श्रीसूर्ये शोकेन विरहेण विधुरा विह्वला कमलिनी दिनपतिसमागमार्थं स्वकीयनायकस्यागमनहेतोर्व्रतं नियमविशेषमाचरद्दिवाकरोदिव। कमलेति। संकुचितमुखसाम्यात्कमलमुकुलान्येव कमण्डलूनि तान्येव दधातीत्येवंशीला सा तथा।

मुनियों ने अपने लाल लाल वल्कलों को उन पर पसार दिया हो, भगवान् मरीचिमाली के अस्त हो जाने पर पश्चिम समुद्र के तट से उगती हुई विद्रुम (मूँगा लता) की भाँति पाटलवर्ण की सन्ध्या दिखाई देने लगी। उस सन्ध्या के समय वह आश्रम इस तरह हो गया कि कहीं मुनिजन ध्यान लगा रहे थे, कहीं होम धेनुओं के दुहते समय दूध की धार से निकलने वाली अति मनोहर ध्वनि उठ रही थी, अग्नि की वेदी पर हरे हरे कुश विछाये जा रहे थे, मुनियों की कन्यायें इधर उधर बलि वैश्वदेव तथा दिग्बलि के पदार्थों को फेंक रही थी, तपस्वियों ने लाल तारों से युक्त कपिल वर्ण वाली सन्ध्या को इस तरह देखा मानों कहीं से टहल कर सायं समय लौटने वाली आश्रम की कपिला गाय हो। सूर्य के तात्कालिक प्रस्थान के कारण शोक से व्याकुल

१ ध्वनितमनोहरम्; ध्वनिमनोहरम्, २ अग्निहोत्रवेदी, ३ विप्रकीर्यमाण ४ दिग्देवतार्चनबलिसिक्थकम्, ५ दिनावसाने, ६ मुनिभिः मुदितैस्तपोधनैः, ७ प्रोषिते च सवितरि,

वलय[2]ज्ञोपवीतिनी मधुकरमण्डलाक्षवलयमुद्वह[2]हन्ती कमलिनी दिन[3]पतिसमागम-व्रतमिवाचरत्। अपरसागराम्भसि पतिते दिव[4]सकरे वेगोत्थितम[5]म्भःसीकरनिकर-मिव तारागण[6]मम्बरमधारयत्। अचिराच्च सिद्धकन्यकाविक्षिप्तसंध्यार्चनकुसुमश-बलमिव [7]तारकितं वियदराजत। क्षणेन चोन्मुखेन मुनिजनेनोर्ध्वविप्रकीर्णैः प्रणा-माञ्जलिसलिलैः [8]क्षाल्यमान इवागलदखिलः सन्ध्यारागः।

क्षयमु[9]पागतायां संध्यायां तद्विनाशदुःखिता कृष्णाजिनमिव विभावरी

हंसेति। श्वेतसाम्याद्धंसा एव सितदुकूलानि परिधानमधोंऽशुकं यस्याः सा तथा। मृणालेति। श्वेततन्तुसारूप्यान्मृणालान्येव धवलं शुभ्रं यज्ञोपवीतं यज्ञसूत्रं यस्याः सा तथा। मधुकरेति। नीलतीक्ष्णमुखसाम्यान्मधुकराणां भ्रमराणां यन्मण्डलं तदेवाक्षवलयं रुद्राक्षजपमालिका तदुद्व-हन्ती धारयन्ती। अपरामवस्थां वर्णयन्नाह—अपरेति। अपरसागराम्भसि पश्चिमसमु-द्रपानीये पतिते दिवसकरे सूर्ये वेगेन रभसोत्थितं प्रादुर्भूतमम्भःसीकरनिकरं पानीयपृषत्समूहं तारागणमिव नक्षत्रवृन्दमिवाम्बरमाकाशमधारयद्दधार। अतिश्वेतरूपत्वसाम्यात्ताराजल-बिन्द्वोरुपमानोपमेयभावः। अचिराच्चेति। अचिरात् स्वल्पकालेन सिद्धा विद्यासिद्धास्तेषां कन्यकाः पुत्र्यस्ताभिर्विक्षिप्तानि विकीर्णानि यानि संध्यार्चनकुसुमानि सायंकाली-नपूजार्थमानीतानि पुष्पाणि तैः शबलमिव कर्बुरमिव तारकितम्। तारकादिभ्य इतच्'। संजाततारकोदयं वियदाकाशमराजताशोभत। अतीतसंध्यावस्थां प्रकटयन्नाह—क्षणेनेति। क्षणेन सपद्येव। च समुच्चये। उन्मुखेनोर्ध्वमुखेन मुनिजनेन तापसजनेनोर्ध्वविप्रकीर्णैरुर्ध्वं विक्षिप्तैः प्रमाणाञ्जलिसलिलैर्नमस्कृतिसमयाञ्जलिपानीयैः क्षाल्यमान इव प्रक्षाल्यमानोऽखिलः समग्रोऽपि संध्यारागोऽगलत्तत्स्थानात्प्रच्युतः।

क्षयमिति। संध्यायां क्षयमुपगतायां विनाशं प्राप्तायाम्। तदिति। तस्याः स्व-सांनिध्यात्सखीरूपायाः संध्याया विनाशो ध्वंसस्तेन दुःखिता कष्टं प्राप्ता विभावरी रज-

पद्मिनी मुकुलित कमल कोरक रूपी कमण्डलु को धारण कर, हंस रूपी धवल यह वस्त्र पहन कर मृणालतन्तुओं के उज्ज्वल यज्ञोपवीत धारण कर तथा भ्रमरमाला रूपी रुद्राक्ष की माला को लिये मानो दिनेश के समागमार्थ व्रत करने लगी। पश्चिम सागर में सूर्य के गिर पड़ने के कारण वेग से उठे हुये जलसीकर को मानो तारों के रूप में आकाश ने धारण कर लिया। उस समय तारकित नभ इस तरह सुशोभित हुआ जैसे सिद्ध कन्याओंने अभी अभी सायंकालिक पूजन के प्रसंग में पुष्पों को बिखेर कर नभको धवल पुष्पों से शबलित कर दिया हो। क्षणमात्र में ही सन्ध्या की रक्तिमा ऊर्ध्व मुख मुनियों द्वारा प्रणामाञ्जलि के रूप में ऊपर की ओर फेंके गये जल से धुल जाने के कारण मानो लुप्त हो गई हो।

सन्ध्या के विनष्ट हो जाने पर उसके विनाश से दुःख करने वाली निशा ने कृष्ण मृग

१ यज्ञोपवीता, २ अक्षमालावलयम्, ३ रवि, दिनकरे; ४ दिवाकरे षतन; तत्पतन, ५ पवनवेगोत्थितम्; पतङ्गवेगोत्थितम्; पतनवेगोत्थितम्, ६ अम्बरतलम्, ७ सतारम्, ८ प्रक्षाल्यमानः, ९ उपागतायां च संध्यायाम्; उपगतायां च संध्यायाम्,

तिमिरोद्गममभिनवमवहत्। [1]अपहाय [2]मुनिहृदयानि सर्वमन्यदन्धकारतां तिमिरमनयत्। क्रमेण च रविरस्तं गत[3] इत्युदन्तमुपलभ्य [4]जातवैराग्यो धौतदुकूलवल्कलधवलाम्बरः सतारा[5]न्तःपुरपर्यन्तस्थि[6]ततनुस्तिमिरतमालवृ[7]क्षलेखं सप्तर्षिमण्डला-

न्यभिनवं प्रत्यग्रं तिमिरोद्गमं ध्वान्तोदयं कृष्णाजिनमिवासितचर्मैवदवहत्। नीलसाम्यात्तिमिरोद्गमस्य कृष्णाजिनसाधर्म्यम्। तिमिरोद्गमस्य कृत्यं व्याख्यापयन्नाह—अपहेति। तिमिरं ध्वान्तं मुनिहृदयानि तपस्विचेतांसि स्वप्रकाशात्मकप्रकाशवन्तीत्यतस्तिमिरस्यावकाशाभावादन्यत्सर्वं प्रौढप्रकाशहीनं वस्तुजातमन्धकारतामचाक्षुषतामनयत्प्रापयत्। तदुत्तरकालं चन्द्रेऽपि मित्रवियोगावस्थां वर्णयन्नाह—क्रमेणेति। क्रमेण परिपाट्या रविः सूर्योऽस्तं गतोऽदृश्यतां प्राप्त इत्युदन्तमिति वृत्तान्तमुपलभ्य प्राप्तोऽमृतदीधितिश्चन्द्रः। अमरेति। अमरा वसिष्ठादयो मुनयस्तेषां लोकः समुदायस्तस्याश्रमो मुनिस्थानं तदिव गगनतलमम्बरतलमध्यतिष्ठदधितस्थौ। कीदृक्सूर्यः। जातेति। जातं समुत्पन्नं वैराग्यं विरक्तता यस्मिन्स तथा तम्। पक्षे विशिष्टो रागो विरागस्तस्य भावस्तत्त्वम्। धौतेति। धौतं क्षालितं दुकूलवल्कलमेव धवलं शुभ्रमम्बरं वस्त्रं यस्मिन्। पक्षे दुकूलवल्कलवत् धवलं शुभ्रमम्बरमाकाशं यस्मिन्। सतारेति। तारः शक्तिविशेषः प्रणवो ब्रह्म च। तदुक्तमन्यत्र 'इदं तारत्रयं प्रोक्तमगम्यामनादृते'। एतद्वृत्तौ 'तारत्रयं प्रणवशतत्रयम्' इत्याह विज्ञानेश्वरः। तया सह वर्तमानं यदन्तःपुरमिति पुरस्य शरीरस्यान्तर्मध्यं कुण्डलिनी नाडीविशेषः। 'क्वचिदमाद्यन्तस्य परत्वम्' इति पुरस्य परनिपातः। तस्याः पर्यन्तः सहस्रारं कमलं तत्र योगसामर्थ्यात्स्थितं लैङ्गिकं तनुर्यस्य स तथा। पक्षे तारा अश्विन्यादयस्ताभिः सह वर्तमानं यदन्तःपुरमवरोधस्तस्य पर्यन्तः संनिधिस्तत्र स्थिता तनुः शरीरं यस्य स तथा। अथाश्रमसाम्येन गगनतलं विशेषयन्नाह—तिमिरेति। श्यामत्वसाम्यात्तिमिरवच्छयामा ये तमालवृक्षास्तेषां लेखा पंक्तिर्यस्मिन्। पक्षे तिमिराण्येव

चर्म के समान तिमिर के अभिनव उद्गम को धारण कर लिया। अन्धकार ने मुनिजनों को छोड़कर शेष सभी पदार्थों को आँखों से ओझल कर दिया। धीरे धीरे सूर्य के अस्त हो जाने के समाचार को पाकर सुधांशु अमरलोक के आश्रम के समान गगनतल में अधिष्ठित हो गया क्योंकि अपने प्रकाशक रवि के अस्त हो जाने से विरक्त (लाली से मुक्त) होकर धुले हुये रेशमी वस्त्रोपम वल्कल के समान आकाश को उज्ज्वल बनाकर अपनी प्रिया तारा के सहित अन्तःपुर में विराजमान रहने वाला वह इस प्रकार आश्रम में चला गया जैसे प्रियजन वियुक्त व्यक्ति वैराग्य वश धुले हुये क्षौम वस्त्र के सदृश शुक्ल वल्कल को धारण कर योग बल से कुण्डलिनी के समीप सहस्त्र दल कमल में अवस्थित होकर किसी तपोवन में चला जाय। अमर लोक के आश्रम के समान वह गगनतल उस तरह व्याप्त था जैसे कोई आश्रम अन्धकार की राशि से तमाल वृक्ष की पंक्ति से व्याप्त हो, गगनतल सप्तर्षियों के मण्डल से अधिष्ठित है और

१ शापदग्धमिव भयाद्विहायेव २ मुनिजनहृदयानि, ३ उपगतः; उपागत, ४ समुपजात, ५ स्यन्तःपुर, ६ तनुतिमिर, ७ वन.

ध्युषितमरुन्धतीसंचरणपूत¹मुपहिताषाढमालक्ष्यमाणमूलमेकान्तस्थितचारुतारकामृग-ममरलोकाश्रममिव गगनतलममृतदीधितिरध्यतिष्ठत्। चन्द्राभरणभृतस्तारकाकपाल-शकलालंकृतादम्बरतलात्त्र्यम्बकोत्तमाङ्गादिव गङ्गा सागरानापूरयन्ती हंसधवला धरण्यामपतज्ज्योत्स्ना। हिमकरसरसि विकचपुण्डरीकसिते चन्द्रिकाजलपानलोभा-दवतीर्णो निश्चलमूर्तिरमृतपङ्कलग्न इवादृश्यत हरिणः। तिमिरजलधरसमयापग-

तमालवृक्षा इति विग्रहः। शेषं पूर्ववत्। सप्तर्षीति। सप्तर्षिसदृशा ये ऋषयो नारदाद्यास्तेषां मण्डलं समूहः। 'मण्डलं श्वसमूहयोः' इति धरणिः। तेनाध्युषितमाश्रितम्। पक्षे सप्तर्षयः सप्ततारकाः शेषं प्राग्वत्। अरुन्धतीति। अरुंधती वसिष्ठपत्नी तस्याः संचरणं परिभ्रमणं तेन पूतं पवित्रम्। पक्षेऽरुंधती ताराविशेषः। शेषं प्राग्वत्। उपहितेति। उपहितः संनिहित आषाढः पालाशदण्डो यस्मिन्। 'पालाशो दण्ड आषाढः' इत्यभिधानचिन्तामणिः। पक्ष आषाढा पूर्वाषाढानक्षत्रम्। आलक्ष्येति। आसमन्ताल्लक्ष्यमाणानि विलोक्यमानानि वसुधा-न्तर्गतवृक्षप्रदेशा यस्मिन्। पक्षे मूलं मूलनक्षत्रम्। शेषं प्राग्वत्। एकान्तेति। एकान्ते विजने स्थिताश्चारवो मनोहराकृतयस्तारकामृगा यस्मिन्। पक्षे तारकारूपं मृगो मृगनक्षत्रम्। तस्यामेव विभावर्यां चन्द्रे जातवैराग्योपमानमम्बरमण्डले चाश्रमरूपकमुक्त्वा ज्योत्स्नायां गङ्गारू-पकोपयोगिगगनतले त्र्यम्बकोत्तमाङ्गोपमानमाह—चन्द्रेति। चन्द्र एवाभरणं बिभर्तीति निश्चलेति। निश्चला निस्पन्दा मूर्तिर्यस्य स तथा। अमृतेति। कृष्णत्वसाम्यात्कलङ्क एवामृतपङ्कस्तत्र लग्न इवान्तर्निगीर्ण इव हरिणो मृगोऽदृश्यतालक्ष्यत। चन्द्रोदयजनितं शोभा-

आश्रम में प्रधान सात ऋषि विराजमान हैं, गगनतल अरुन्धती नामक तारा के संचार से पवित्र है और आश्रम वसिष्ठ पत्नी अरुन्धती के संचरण से पवित्र है, गगनतल में पूर्वाषाढ़, उत्तरा-षाढ़ नक्षत्रों का योग है और आश्रम में पलाश दण्ड रखे हुये रहते हैं, गगनतल में मूल नामक नक्षत्र लक्षित होता है और आश्रम में कन्द मूल के दर्शन होते रहते हैं, गगनतल के एक हिस्से में अत्यन्त सुन्दर मृगशिरा नामक तारा अवस्थित रहता है और आश्रम एकान्त में बैठे हुये सुन्दर पुतलियों वाले मृगों से सुशोभित है। जैसे चन्द्रमा को भूषण रूप में धारण करने वाले तथा तारों के समान शुक्ल कपाल खण्डों से अलंकृत त्रिलोचन केसर से प्रवाहित हंसों के समान धवलजल वाली गंगा समुद्र को परिपूर्ण बनाती हुई धरती पर उतरती है उसी तरह चन्द्रमा को भूषण रूप में धारण करने वाले तथा कपाल खण्डों के समान उज्ज्वल तारों से अलंकृत आकाश से मराल के सदृश धवल तथा समुद्र को उद्वेलित करती हुई चन्द्रिका धरती पर उतर आई। उत्फुल्ल श्वेत कमल के सदृश धवल हिमकर (चन्द्र) रूपी सरोवर में चाँदनी रूपी जल को पीने के लोभ से उतरा हुआ मृग मानो अमृत रूपी दलदल में फँस जाने से निश्चेष्ट सा दिखाई दे रहा था। अन्धकार रूपी वर्षाकाल के बीत जाने के पश्चात् हंसों के समान ताजे ताजे धवल

१ आलक्ष्यत, २ समयादनन्तरम्,

मानन्तरभिनवसितसिन्दुवारकुसुमपाण्डुरैरर्णवागतैरगाह्यन्त हंसैरिव कुमुदसरांसि चन्द्रपादैः। विगलितसकलोदयरागं रजनिकरबिम्बमम्बरापगावगाहधौतसिन्दूरमैरावतकुम्भस्थलमिव तत्क्षणमलक्ष्यत। शनैःशनैश्च दूरोदिते भगवति हिमततिस्रुतिसुधाधूलिपटलेनेव धवलीकृते चन्द्रातपेन जगति, अवश्यायजलबिन्दुमन्दगतिषु विघटमानकुमुदवनकषायपरिमलेषु समुपोढनिद्राभरालसतारकैरन्योन्यग्रथितपक्ष्मपु-

तिशयं वर्णयन्नाह—तिमिरेति। कृष्णत्वसाम्यात्तिमिरमेव जलधरसमयस्तस्यापगमानन्तरं निवृत्त्यनन्तरम्। अभीति। अभिनवानि प्रत्यग्राणि सितानि शुभ्राणि यानि सिन्दुवारस्य निर्गुण्ड्याः कुसुमानि पुष्पाणि तद्वत्पाण्डुरैः शुभ्रैरर्णवः समुद्रस्तस्मागतैः प्राप्तैश्चन्द्रपादैः शशिकिरणैर्हंसैरिव मरालैरिव कुमुदसरांसि कैरवोपलक्षितटाकान्यवागाह्यन्तालोड्यन्त। अतः श्वेतत्वसाधर्म्याद्धंसचन्द्रपादयोरुपमानोपमेयभावः। पुनरवस्थान्तरं वर्णयन्नाह—विगलीति। विगलितो विलयं प्राप्तो यः सकलः समग्रः उदयसंबन्ध्युद्गमनक्षणजन्मा रागो रक्तिमा यस्मिन्नेवंभूतं रजनिकरबिम्बं चन्द्रमण्डलं तत्क्षणमिव तत्काल इवालक्ष्यत जनैरैक्ष्यत। किमिव। अम्बरेति। अम्बरस्य व्योम्नो या आपगा नदी तस्या अवगाह आलोडनं तेन धौतं क्षालितं सिन्दूरं नागजं यस्यैवंविधं मदैरैरावतस्य हस्तिमल्लस्य कुम्भस्थलं तदिव। अतिवर्तुलत्वसाम्याच्चन्द्रबिम्बस्य कुम्भस्थलोपमानम्। अथ मुनिवृत्तं निरूपयन्नाह—शनैरिति। हारीतो मुनिः कृताहारं विहितभोजनं मां वैशम्पायनमादाय गृहीत्वा पितरं जाबालिमुनिमित्यवोचदित्यन्वयः। कस्मिन्सति। शनैः शनैः स्वल्पप्रयत्नेन दूरोदिते दूरं गते भगवति चन्द्रे। हिमेति। हिमं प्रालेयं तस्य ततिर्वीथी तस्याः स्रुति स्राविणि। चन्द्रस्य विशेषणम्। सुधेति। श्वेतत्वसाम्यात्सुधैव धूलिपटलं पांसुसमूहस्तेनेव चन्द्रातपेन शशिन आलोकेन जगति लोके धवलीकृते सति शुभ्रीकृते सति। पुनः केषु सत्सु। निशामुखसमीरणेषु प्रदोषकालीनवायुषु प्रवहत्सु वहमानेषु सत्सु। अथ वायुविशेषणानि—अवश्येति। अवश्यायो हिमं तस्य जलबिन्दवः पानीयविप्रुषस्तैर्मन्दा मन्थरा गतिर्गमनं येषां ते। विघटेति। विघटमानानि विकासं प्राप्यमाणानि यानि कुमुदवनानि तेषां कषायस्तुवरो गन्धो येषु ते। ह्यभिनन्दि-

सिन्दुवार के कुसुमों के सदृश उज्ज्वल चन्द्रमा की किरणों ने कुमुदवन से विभूषित सरोवर में अवगाहन किया। चन्द्रबिम्ब उदयकालिक सम्पूर्ण रक्तिमा के धुल जाने से ऐसा लगता था मानो स्वर्गंगा में अवगाहन करने से धुले हुये सिन्दूर वाला ऐरावत का कुम्भस्थल हो। धीरे धीरे जब तुषारवर्षी चन्द्रमा क्षितिज के काफी ऊपर उठ गया, चूने के चूर्ण पुंज के समान चाँदनी समूचे जग को धवलित कर चुकी, सान्ध्य पवन ओस के सीकरों से आर्द्र होकर जब मन्द मन्द चलने लगा, विकसित होने वाले कुमुद-वन के सौरभ से जब वह सुगन्धित हो गया, नींद के आ जाने से अलसाई पुतलियों वाले, परस्पर पलकों के संश्लिष्ट हो जाने वाले, जुगालियों को

१ सिन्धुवार, २ गगनागतैः, ३ अगाह्यन्त; अगृह्यन्त, ४ हिमस्रुति; हिमदीधितौ,
५ धवली[illegible]

टैरारब्धरोमन्थमन्थरमुखैः सुखासीनैराश्रममृगैरभिनन्दितागमनेषु [1]प्रवहत्सु निशामुखस[2]मीरणेषु, अर्धयाममात्रावखण्डितायां विभावर्यां हारीतः कृताहारं मामादाय स[3]र्वैस्तैर्महामुनिभिरुपसृत्य चन्द्रातपोद्धासिनि तपोवनैकदेशे वेत्रास[4]नोपविष्टमनति[5]-दूरवर्तिना जालपादनाम्ना शिष्येण [6]दर्भपवित्रधवित्रपाणिना म[7]न्दमुपवीज्यमानं पितरम[8]वोचत्-'हे[9]तात, सकलेयमाश्चर्यश्रवणकुतूहलाक[10]लितहृदया समुपस्थिता तापसपरिषदाबद्धमण्डला [11]प्रतीक्षते। व्यपनीतश्रमश्च कुतोऽयं पतत्रिपोतः। तदावेद्यतां

तमिति। अभिनन्दितं श्लाघितमागमनं येषां ते तथा। कैः। आश्रममृगैर्मुनिस्थानस्थहरिणैः। अथ च तेषां विशेषणानि—समुपोढेति। समुपोढा सम्यक्प्रकारेणोपोढा या निद्रा प्रमीला तस्या भरः संभारस्तेनालसा मन्थरा तारका कनीनिका येषां ते तथा तैः। अन्योन्येति। अन्योन्यं परस्परं ग्रथितानि मिलितानि पक्ष्म नेत्ररोम तेषां पुटानि येषां ते तथा तैः। आरब्ध इति। आरब्धो यो रोमन्थश्चर्वणं तेन मन्थराण्यलसानि मुखानि येषां ते तथा तैः। सुखेति। सुखेन यदृच्छयासीनैरुपविष्टैः। अर्धेति। त्रियामाशयेनार्धयाममात्रमर्धप्रहरमात्रमवखण्डितं खण्डनां प्राप्तं यस्याः सा तथा। तस्यामर्धप्रहरन्यूनायामित्यर्थः। एवंविधायां विभावर्यां रजन्यां सर्वैस्तैर्महामुनिभिर्महातपस्विभिरुपसृत्यागत्य। कस्मिन्। चन्द्रेति। चन्द्रातपेन निशापतिप्रकाशेनोद्भासत उत्प्राबल्येन शोभत इत्येवंशीलः स तथा तस्मिन्। तप इति। तपोवनस्य मुनिस्थानस्यैकदेशोऽन्यतरप्रदेशस्तस्मिन्नधिकरणीभूते। अथ जाबालिमुनिं विशेषयन्नाह—वेत्रेति। वेत्रासनमासन्दी. तत्रोपविष्टमासीनम्। अनतीति। अनतिदूरवर्तिना नातिसमीपवर्तिना। जालेति। जालपाद इति नाम यस्य स तथा तेन शिष्येण विनेयेन। दर्भेति। दर्भः कुशास्तद्वत्पवित्रं यद्धवित्रं मृगचर्मनिर्मितं तालवृन्तं पाणौ हस्ते यस्य स तथा तेन। 'धवित्रं मृगचर्मणः' इति कोशः। मन्दं यथा स्यात्तथोपवीज्यमानं दूरीक्रियमाणमक्षिकम् 'अन्वयस्तु पूर्वमुक्तः। तदनुसारेण किमुवाचेत्याह हे तात हे पितः, सकला समग्रेयं प्रत्यक्षगता तापसपरिषत्तपस्विसंसत्समुपस्थितागता। आश्चर्येति। आश्चर्यस्याद्भुतवस्तुनो यच्छ्रवणमाकर्णनं तत्र

आरम्भ कर देने से धीरे-धीरे हिलते हुये मुंह वाले, सुख पूर्वक बैठे हुये आश्रम मृगों से जिसके शुभागमन का अभिनन्दन किया जाने लगा था, आधे पहर तक की रात जब बीत चुकी थीं तब भोजन कर लेने वाले मुझे लेकर उन सभी महामुनियों के साथ हारीत चन्द्रिका से समुद्भासित तपोवन के एक हिस्से में बेंत के आसन पर बैठे हुये पिता जी के पास पहुँच कर बोले जब कि उस समय पिता जी के समीप में रहने वाले जालपाद नामक शिष्य कुश के सदृश पावन मृग चर्म के पंखे से धीरे हवा कर रहे थे। पिताजी, आश्चर्यमय वृत्तान्त सुनने के लिये उत्कण्ठापूर्ण हृदय से मण्डलाकार में बैठी हुई समस्त तपस्वियों की यह मण्डली उपस्थित होकर प्रतीक्षा कर रही है और यह पक्षी का बच्चा भी परेशानी से मुक्त कर दिया गया है इसलिये जो कुछ

१ आगमेषु, २ प्रवात्सु, ३ समीरेषु, ४ सह मुनिभिः, ५ वेत्रासने सुखोपविष्टम्, ६ नातिदूर, ७ पवित्रपाणिना, ८ मन्दमन्दम्, ९ उवाच, १० तात, ११ आकुलित, प्रतीक्ष्यते

य[1]दनेन कृतम्। अ[2]परस्मिञ्जन्मनि कोऽय[3]मभूद्भविष्यति च[4] इति। एवमुक्तस्तु स महामुनिरग्रतः स्थितं मामवलोक्य तांश्च सर्वानेकाग्राञ्छ्रवणपरान्मुनीन्बुद्ध्वा शनैःशनैरब्रवीत्-'श्रूयतां यदि कौतूहलम्'—

यत्कुतूहलं चित्तवृत्तिविशेषस्तेनाकलितं व्याप्तं हृदयं चेतो यस्याः सा। परिषद्विशेषणम्। आवद्धेति। आबद्धमारचितं मण्डलं यया सा। प्रतीक्षत इति। भवन्तमिति शेषः। भवद्विलम्बेन विलम्ब इत्यर्थः। कदाचिच्छुककृतोऽपि स्यादित्यत आह—व्यपनीतेति। अयं पतत्रिपोतः शुकशिशुर्व्यपनीतो दूरीकृतः श्रमो ग्लानिर्यस्यैवंभूतः कृतो विहितः। चेति पूर्वोक्तसमुच्चये। तदिति हेत्वर्थे। आवेद्यतामिति। यदनेन शुकेन कृतं विहितं तदावेद्यतां निवेद्यताम्। अस्माकमिति शेषः। अपरस्मिन्निति। एतद्भवापेक्षयापरजन्मनि भूते भविष्यति च कोऽयमभूत्कोऽयमग्रे भविष्यति चेति। एवमिति। एवं पूर्वोक्तप्रकारेणोक्तः प्रश्नविषयीकृतः। तु पुनरर्थे। स महामुनिः जाबालिर्मुनिरग्रतः पुरतः स्थितमासीनं मामवलोक्य निरीक्ष्य तान्सर्वान्समग्रानेकाग्रानेकतानान्। श्रवणेति। श्रवणमाकर्णनं तस्मिन्परान्मुनींस्तपस्विनो बुद्ध्वा ज्ञात्वा च अतिवृद्धत्वात्क्षीणत्वाच्च शनैः शनैर्मन्दस्वरेणाब्रवीदुवाच। किमुवाचेत्याह—श्रूयतामिति। यदि चेत्कौतूहलमाश्चर्यं तर्हि श्रूयतामाकर्ण्यताम्। अनेनात्यादरः सूचितः।

इसने किया है उसको कहें। गत जन्म में यह कौन था? और आगामी जन्म में क्या होगा? इस प्रकार निवेदन किये जाने पर वह महामुनि (जाबालि) सामने उपस्थित हुये मुझे देखकर तथा उन सभी मुनियों को एकाग्रता से सुनने के लिये तत्पर समझकर धीरे धीरे कहने लगे 'यदि कौतूहल है तुम लोगों को सुनने का—तो सुनो'।

---

१ किमनेन, २ अन्यस्मिन्, ३ को नायम्, ४ वा।
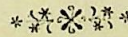
हर्षचरित (मोहनदेव पन्त)

ईसा की सातवीं शती के पूर्वार्ध में उत्तरी भारत में सार्वभौम नृपति हर्षवर्धन हुए जिनकी राजधानी स्थाण्वीश्वर (थानेसर) थी। प्रस्तुत कृति के रचयिता बाणभट्ट इन्हीं के आश्रय में रहे। इन्हीं का जीवन-चरित लिखकर बाणभट्ट ने धन-मान की प्राप्ति की।

यह ग्रन्थ आठ उच्छ्वासों में विभाजित है। पहले तीन में बाणभट्ट ने अपना जीवन-चरित दिया है। तीसरे के कुछ अंशों में हर्ष के पूर्वज पुष्पभूति का आख्यान है। चतुर्थ में राज्यवर्धन, हर्षवर्धन तथा राज्यश्री का चरित है। पंचम में राज्यवर्धन और हर्षवर्धन का उत्तर की ओर हूणों के विरुद्ध अभियान वर्णित है। षष्ठ में कुछ महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाएं हैं। सप्तम में विजय-अभियान तथा अन्तिम अष्टम उच्छ्वास में विन्ध्य सामन्त से भेंट, बौद्ध भिक्षु से मिलन और राज्यश्री को सती होने से रोकने का वर्णन है, जो तथ्य किसी अन्य स्रोत से उपलब्ध नहीं हैं।

प्रत्येक उच्छ्वास में मूलपाठ के साथ संस्कृत और हिन्दी टीका और पद-अन्वय भी हैं।

दशकुमारचरित (विश्वनाथ झा)

महाकवि दण्डी संस्कृत के मूर्धन्य गद्यकार माने जाते हैं। उनकी प्रस्तुत कृति में आनुप्रासिक पदविन्यास की छटा देखने योग्य है। ललित पदों की शृंखलाबद्ध रचना की विलक्षण कला से समस्त दशकुमारचरित ओत-प्रोत है। संस्कृत संसार में "दण्डिनः पदलालित्यम्" अत्यन्त प्रसिद्ध उक्ति है। इस ग्रन्थ की शैली सरल एवं प्रसादमयी है। भाषा में स्वाभाविक प्रवाह और यथास्थान मुहावरों का सन्निवेश है।

प्रत्येक उच्छ्वास में मूलपाठ के साथ संस्कृत टीका तथा हिन्दी अनुवाद दे दिए गए हैं। कई स्थलों पर टिप्पणियां भी हैं।

कादम्बरी-पूर्वार्द्धम् (श्री बाणभट्टप्रणीता)

संस्कृतटीकाः **भानुचन्द्र-सिद्धचन्द्र गणि** : हिन्दी·टीकाः **हरिश्चन्द्र विद्यालंकार**

सम्पादकः **मोहनदेव पन्त**

यह ग्रंथ संस्कृत के प्रख्यात गद्यलेखक बाणभट्ट की चूड़ान्त रचना है। इसमें वर्णन-शैली प्रधान है और घटना गौण। यह रोमानी प्रेमभाव से ओत-प्रोत है। कलाकार स्वतन्त्र होकर, पार्थिव बन्धनों से उन्मुक्ति पाकर कल्पना की ऐसी उड़ानें भरता है कि पृथ्वीलोक से परे दिव्य-लोकों तक जा पहुंचता है, द्यौ-भू को एकाकार करके मानव को अतिमानव से मिला देता है और आत्मा के शारीरिक आवरण हटाकर दो-दो, तीन-तीन जन्मों के जगतों का वृत्तान्त हमारे मानस-पटल पर अंकित कर देता है। वाक्य लम्बे-लम्बे समास-बहुल, पौराणिक संकेतों से भरे, अलंकारों का तांता लिए हैं। कहानी व कला समृद्ध, सशक्त, परिपक्व और उर्वर रूप में निखरी है।

मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स प्रा० लि०

मूल्यः रु० ३२